बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

अंक : 67 अक्टूबर-दिसंबर, 2020 UGC-CARE Listed, ISSN : 2348-4586

प्रधान संपादक
प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल

परामर्श
अधिष्ठाता, समस्त विद्यापीठ :
प्रो. हनुमानप्रसाद शुक्ल
प्रो. मनोज कुमार
प्रो. कृपाशंकर चौबे
प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
प्रो. अवधेश कुमार

संपादक मंडल
प्रो. हरमहेन्द्र सिंह बेदी
प्रो. जी. गोपीनाथन
प्रो. कुलदीप चंद अग्निहोत्री
डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी
प्रो. उदय प्रताप सिंह
प्रो. कृपाशंकर चौबे (समन्वयक संपादक)

सहायक संपादक
डॉ. अमित कुमार विश्वास

ज्ञान शांति मैत्री
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय
हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रभात
प्रकाशन

बहुवचन
अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक
अंक : 67 (अक्टूबर-दिसंबर 2020) UGC-CARE Listed, ISSN : 2348-4586

प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
सह-प्रकाशक एवं वितरक : प्रभात प्रकाशन प्रा.लि. 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
011-23289777, 7827007777, ई-मेल : prabhatbooks@gmail.com

संपादकीय संपर्क :
समन्वयक संपादक, बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 9970244359, ई-मेल : bahuvachan.wardha@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : डॉ. रामानुज अस्थाना
© संबंधित लेखकों द्वारा सुरक्षित
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। न्याय क्षेत्र : वर्धा।
बिक्री एवं प्रसार
प्रभारी : सूचना, संपर्क, प्रसार : डॉ. प्रकाश नारायण त्रिपाठी
प्रकाशन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र) भारत
फोन : 07152-232943, मोबाइल नं. (वाट्सएप सहित) 7278114912
ई-मेल : pub.mgahv@gmail.com वेबसाइट : www.hindivishwa.org
अक्षर-संयोजन एवं पृष्ठ-सज्जा
विजय खोब्रागडे
टंकण सहयोग
सुरेश यादव
आवरण पृष्ठ
राजेश आगरकर
आवरण चित्र
डॉ. राम अवध
वार्षिक सदस्यता के लिए केवल ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण निम्न है–
Finance Officer, Mahahtma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name : Bank of India, Wardha, Branch : Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Account No. : 972110210000005, IFSC Code No. : BKID0009721
सामान्य अंक : रु. 75/-, वार्षिक शुल्क रु. 300/-
विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 10 अमेरिकी डॉलर, 8 ब्रिटिश पाउंड
BAHUVACHAN
A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI
PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHI ANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA)
INDIA.

अनुक्रम

आरंभिक/रजनीश कुमार शुक्ल 5

अवदान-मूल्यांकन

ज्ञान और दर्शन का निकष/एच. बालसुब्रह्मण्यम 7

भारती के काव्य में राष्ट्रीय चेतना/वी. पद्मावती 25

भारती के काव्य में कृष्ण/एम. गोविंदराजन 31

कोयल गीत का वैशिष्ट्य/एस. विजया 45

राष्ट्रभक्ति की परिभाषा देता काव्य/रागिनी कपूर 49

देशभक्ति काव्य का प्रतिमान/दीपिका विजयवर्गीय 55

सुब्रह्मण्य भारती का भारत/कृष्ण कुमार सिंह 63

भारत-स्वाभिमान का कवि/अखिलेश कुमार दुबे 73

आत्मनिर्भर भारत के स्वप्नदर्शी कवि/रामानुज अस्थाना 81

गांधी दर्शन और भारती/ए. भवानी 89

भारतीयता के मुखर प्रवक्ता/एन. लावण्या 93

आधुनिक तमिल साहित्य के पुरोधा/कुमार निर्मलेन्दु 99

स्वतंत्रता संग्राम में भारती का योगदान/राजलक्ष्मी कृष्णन 125

भारती का गद्य साहित्य/कुमार निर्मलेन्दु, पी. के. बालसुब्रह्मण्यन्, एन. सुंदरम्, रमा लक्ष्मीनरसिंहन् 129

कविता

सुब्रह्मण्य भारती की तीन कविताएं/अनुवाद : एच. बालसुब्रह्मण्यम 137

बाल साहित्य

भारती का बाल साहित्य/पूर्णिमा श्रीनिवासन 141

पत्रकारिता

सुब्रह्मण्य भारती की पत्रकारिता/कृपाशंकर चौबे 151

विमर्श

स्वाधीनता और स्वाधिकार की उद्दाम आकांक्षा/प्रतापराव कदम 159
भारती के साहित्य की स्त्री संवेदना/के. वत्सला 'किरण' 165
भारत के नवनिर्माण का स्वप्न/एम. शेषन् 171

देशांतर

रूसी कलाकारों की दृष्टि में भारती/सेतुकुमार, रूपांतरकार : वी.के. बालसुब्रह्मण्य 174
फ्रांसीसी साहित्य से भारती का संवाद/मूल : पुगझेंधी कुमारासामी, अनु. : ज्योतिष पायेङ 180

भाषा चिंतन

तमिल नई चाल में चलने लगी/एम. शेषन् 186
हिंदी सेवा और लेखन के मेरे अनुभव/जी. गोपीनाथन 190
हिंदी भाषा-समुदाय में भाषा-द्वैध (हिंदी-अवधी युग्म का साक्ष्य)/हनुमानप्रसाद शुक्ल 194

आरंभिक

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' कहावत सुब्रह्मण्य भारती के जीवन पर सटीक बैठती है। जिस वृक्ष को बड़ा बनना होता है, पौधे वाली अवस्था में ही उसके पत्तों में चिकनाहट आनी आरंभ हो जाती है। उसी प्रकार प्रतिभाशाली व्यक्ति के लक्षण बचपन में ही दिखने लगते हैं। सुब्रह्मण्य भारती के कवि व्यक्तित्व के लक्षण उनकी बाल्यावस्था में ही प्रकट हो गए थे। तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के एट्टय्यपुरम् गांव में 11 दिसंबर, 1882 को जन्मे सुब्रह्मण्य भारती जब नन्हें थे तो प्यार से उन्हें सभी सुब्बैय्या कहकर बुलाते थे। सुब्बैय्या जब पांच वर्ष के थे, तभी मां की मृत्यु हो गई। पिता चाहते थे कि अंग्रेजी, गणित व विज्ञान की पढ़ाई कर सुब्बैय्या अधिकारी बने, किंतु सुब्बैय्या का मन गणित-विज्ञान में नहीं, साहित्य में लगता था। पिता से छिपकर सुब्बैय्या एक वृद्ध पंडित के यहां जाकर कंब रामायण पढ़ते, मंदिर के मंडप के पीछे बैठकर तमिल साहित्य और व्याकरण पढ़ते। सुब्बैय्या पांच-छह साल के थे, तभी से गीत गाने लगे थे और एट्टय्यपुरम् महाराज की सभा में जाने लगे थे, जहां तमिल के जाने-माने विद्वान जुटते और साहित्य चर्चा करते। सुब्बैय्या उन्हें मनोयोग से सुनते। एक बार एट्टय्यपुरम् महाराज की सभा में शिवज्ञान योगी जैसे प्रतिष्ठित तमिल विद्वान आए। उनकी ही अध्यक्षता में विद्वानों की सभा शुरू हुई। सुब्बैय्या तब ग्यारह साल के थे। वे भी सभा में चले गए। तमिल विद्वानों ने सुब्बैय्या से तमिल काव्य और व्याकरण संबंधी प्रश्न पूछे, यमक, त्रिपु की परिभाषा भी पूछी, सुब्बैय्या ने सबके सटीक उत्तर दिए। सुब्बैय्या से वेण्वा नामक छंद के अंतिम पद को सुनाकर उसे पूरा करने को कहा गया, सुब्बैय्या ने सुना दिया, विद्वानों ने भाव के आधार पर उसे छंद सुनाने को कहा, उसने वह भी सुना दिया। उससे प्रसन्न होकर उसी सभा में शिवज्ञान योगी ने कहा कि सुब्बैय्या की जिह्वा पर सरस्वती का वास है। यह सरस्वती का वरद पुत्र है, इसे मैं आज 'भारती' की उपाधि प्रदान करता हूं। उस दिन से सुब्बैय्या सुब्रह्मण्य भारती कहलाने लगे। सुब्रह्मण्य भारती जब महज 14 साल के थे तो सात वर्षीय चेल्लम्मा से उनका विवाह हो गया। अपनी पत्नी पर उन्होंने एक प्रेम कविता रच डाली। उसके अगले वर्ष सुब्रह्मण्य भारती के पिता की मृत्यु हो गई। मातृहीन-पितृहीन सुब्रह्मण्य भारती एट्टय्यपुरम् से सीधे बनारस बुआ कुप्पम्माल के पास चले गए। वहां जयनारायण व्यास कॉलेज में दाखिला लेकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा की तैयारी में जुट गए। पढ़ाई से अवकाश मिलने पर सुब्रह्मण्य भारती गंगा के घाटों पर चले जाते, नदी का प्राकृतिक सौंदर्य निहारते, मंदिरों में भी जाते और तिरुवेम्पाबै (भक्ति गीत) गाते और अंग्रेजी कवि शैली की कविता पढ़ने और स्वयं भी कविता रचने में लग जाते। उन्हें तिरुवेम्पाबै गाते हुए सुनकर बुआ प्रसन्न हो जातीं। भारती के फूफा हनुमान घाट स्थित शिवमठ के अध्यक्ष थे। वे प्रतिदिन मठ में शिव की पूजा करते थे। पूजा तिरुवेम्पाबै के गायन से समाप्त होती थी, जिसे एक पुजारी गाते थे। एक दिन वे पुजारी नहीं आए तो भारती के फूफा कृष्णशिवम् चिंता में पड़ गए कि पूजा कैसे पूरी होगी? उन्हें चिंतित देख उनकी पत्नी भारती को रेशमी साफा, रुद्राक्ष की माला पहनाकर और माथे पर भभूत लगाकर मठ में ले आईं और उनसे तिरुवेम्पाबै गाने को कहा। सुब्रह्मण्य भारती

ने भावुक स्वर में तिरुवेम्पावै गाया तो फूफा ने उन्हें गले लगा लिया। भारती ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की परीक्षा अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण की। उसी दौरान एट्टय्यपुरम् के महाराज बनारस आए। उन्होंने भारती को अपने यहां नौकरी का प्रस्ताव दिया। भारती का काम था महाराज के पास आनेवाली पत्रिकाओं को पढ़कर सुनाना। भारती एट्टय्यपुरम् चले गए। एक बार महाराज कहीं महल से निकल रहे थे और प्रथानुसार भारती ने खड़े होकर उनका सम्मान नहीं किया। उस समय यह प्रथा थी कि महाराज के सामने ऊपर के कपड़े नहीं पहने जाते थे और महाराज के सामने पड़ने पर ऊपर हाथ बांधकर खड़े होना पड़ता था। भारती इन दोनों नियमों के विरुद्ध थे। नियम नहीं मानने के कारण उनकी नौकरी गई, किंतु उन्हें मदुरै के सेतुपति उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में तीन महीने की अवकाश रिक्ति पर अध्यापक की नौकरी मिल गई। वह अवधि खत्म होनेवाली थी कि मद्रास (अब चेन्नई) के 'स्वदेशमित्रन्' के संपादक जी. सुब्रह्मण्य अय्यर ने भारती को अपने अखबार का उपसंपादक बना दिया। भारती बाद में 'चक्रवर्तिनी' के भी संपादक बने। उसके बाद मद्रास से प्रकाशित 'इंडिया' में पत्रकारिता प्रारंभ की। अंग्रेजों के दमन से बचने के लिए वे पांडिचेरी गए और वहीं से इसका संपादन आरंभ किया। बाद में वे 'बाल भारती', 'बाल भारत' और 'विजय' समाचार पत्रों से भी संबद्ध रहे। भारती ने अपनी पत्रकारिता का प्रत्यय बंकिमचंद्र चटर्जी, बाल गंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, सिस्टर निवेदिता, ऋषि अरविंद घोष और बाद में गांधी से जोड़ दिया था। स्वतंत्रता हासिल करने के लिए मिशन की पत्रकारिता करने के समानांतर भारती ने काव्य सृजन जारी रखा। उन्होंने 1912 में अपनी लंबी कविताओं के तीन संग्रह 'पांचाली शपथम्', 'कुयिल पाट्टु' और 'कण्णन पाट्टु' तैयार किए। द्रौपदी की प्रचलित कथा पर आधारित 'पांचाली शपथम्' में सुशासन के लक्षण, कुशासन व अन्याय का प्रतिरोध और देशभक्ति का मणिकांचन योग है। 'कुयिल पाट्टु' में कोयल के बहाने प्राकृतिक सौंदर्य को गीत में पिरोया गया है और 'कण्णन पाट्टु' भक्ति काव्य है। उसमें श्रीमद्भगवद् गीता का तमिल अनुवाद भी है। इन तीन काव्य ग्रंथों के अलावा भारती ने दो सौ से अधिक अन्य कविताएं रचीं। काव्य की भांति भारती ने तमिल गद्य को भी साधा। उनकी चालीस कहानियों का संग्रह 'ज्ञानरथ' और 'नवतंत्र' बेहद समादृत कृतियां हैं। उनकी कहानी 'स्वर्ण कुमारी' स्वदेशी आंदोलन और ब्रह्म समाज की गतिविधियों पर केंद्रित है। भारती की कहानी 'आरिल' और 'पंगु' 1911 में प्रतिबंधित कर दी गई थी। भारती के अपूर्ण उपन्यास 'चंद्रिका' की नायिका विशालाक्षी एक ब्राह्मण विधवा है। इस औपन्यासिक कृति को स्त्री स्वतंत्रता के लिए रचनात्मक संघर्ष के बतौर देखा जाता है। 'तंबिरान् वणवकम्' जैसे अनेक निबंध भी भारती के खाते में दर्ज हैं।

इस अंक में सुब्रह्मण्य भारती के साहित्य सृजन पर एम. गोविंदराजन, एच. बालसुब्रह्मण्यम, राजलक्ष्मी कृष्णन, एन. लावण्या, के. वत्सला 'किरण', एस. विजया, वी. पद्मावती, कुमार निर्मलेंदु, प्रतापराव कदम, एम. शेषन्, कृष्ण कुमार सिंह, रामानुज अस्थाना, अखिलेश कुमार दुबे आदि के समीक्षात्मक लेख दिए गए हैं। इन लेखों से पता चलता है कि भारती ने भारत की प्रकृति को राष्ट्रीयता की भावना से कैसे ओत-प्रोत किया। भारतीयता के गायक भारती की मेधा को अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति मिली थी, इसे सेतु कुमार और पुगझेंधी कुमारासामी के लेखों से बेहतर जाना जा सकता है। अंक पर आपकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

–रजनीश कुमार शुक्ल

ज्ञान और दर्शन का निकष

एच. बालसुब्रह्मण्यम

सुब्रह्मण्य भारती को तमिल भाषा के महाकवि या राष्ट्रकवि के दायरे में बांध नहीं सकते। वे मात्र महाकवि नहीं, तमिल भाषा के नूतन शिल्पी और आधुनिक तमिल साहित्य के प्रदीप्त सूर्य रहे। साहित्य की विविध विधाओं के पुरोधा भारती ने तमिल साहित्य में नव युग का शंखनाद किया। क्रांतदर्शी कवि होने के साथ सजग पत्रकार, पामरों की भी समझ में आने वाली शैली के गद्य लेखक, निज भाषा-उन्नयन के लिए समर्पित योद्धा, वेदकाल से लेकर अनस्यूत रूप से चली आ रही भारतीय संस्कृति के आराधक, भारतमाता की बेड़ियां काटने के लिए अपनी कविताओं के बल पर सियारों को भी सिंह-शावक जैसा बनाकर हजारों नौजवानों को स्वतंत्रता-संग्राम के क्षेत्र में उतारने वाले मनस्वी, अथक स्वतंत्रता सेनानी, 'अनाचार के अंबारों में अपना ज्वलित पलीता' धरने वाले समाज सुधारक, नारी उत्थान के प्रबल समर्थक, स्वप्नदर्शी योजनाकार के रूप में बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। मां पराशक्ति से सौ साल जीने का वरदान मांगने वाले इस शक्तिदास ने सौ साल में पूरा करने योग्य सारा कार्य अपने जीवन के कुल चार दशक में ही पूरा कर दिया, शायद इसी कारण वे मां पराशक्ति में विलीन हो गई हों। भारती शब्द का यह भी अर्थ बनता है, 'भा' प्रकाश में रत रहने वाला। ब्रिटिश शासन की क्रूरतापूर्ण गिद्ध दृष्टि से बचने के लिए फ्रेंच इंडिया पांडिचेरी में स्वयं स्वीकृत दस साल का आत्म निर्वासन, जीविका का कोई स्थायी प्रबंध न होने से आर्थिक कष्ट, यों विभिन्न सांसारिक कष्टों के अंधकार से घिरे रहने की स्थिति के चलते भारती अपने शरीर को ही ईंधन बनाकर जलाते रहे और इस प्रक्रिया में दूसरों को प्रकाश बांटते रहे और अचानक अपनी उनचालीस वर्ष की आयु में ही अमर हो गए। इस तरह भारती ने 'मूहूर्तम् ज्वलितं श्रेयः, न तु धूमायिनं चिरम्' की उक्ति को अन्वर्थ कर दिया।

भारती : जीवन परिक्रमा

वाग्देवी के वरद पुत्र सुब्रह्मण्य भारती का जन्म तत्कालीन मद्रास प्रेसिडेंसी के तिरुनेलवेली जिले के एट्टय्यपुरम् में 11 दिसंबर, 1882 को हुआ था। बचपन में लोग इन्हें प्यार से सुब्बैय्या कहकर बुलाते थे। पांच साल की अवस्था में बालक सुब्बैय्या की माता लक्ष्मी अम्मा चल बसीं। मां के वियोग से संतप्त बालक प्रकृति में मां की छवि देखता था और यही छवि कविता-सुंदरी के रूप में और आगे

चलकर मां पराशक्ति के रूप में विकसित हुई। यों सात साल की उम्र में भारती ने अपनी पहली कविता लिखी। उसके बाद इस आशुकवि को पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। पुत्र को इंजीनियर बनाने का स्वप्न पिता का था, सो कड़ाई से पेश आते थे, खेलने की अनुमति नहीं मिलती, फिर भी पिता की आंख बचाकर उद्यानों में विचरण और कविता सुंदरी से संवाद चलता रहा।

पिता इन्हें कभी-कभी राज दरबार ले जाते थे, जहां बालक सुब्बैय्या को कवियों का सत्संग मिलता था। सुब्बैय्या की काव्य-क्षमता पर राजा और कविगण मुग्ध थे। ग्यारह साल की अवस्था में विद्वानों ने इनकी काव्य चातुर्य की परीक्षा करके दरबार में 'भारती' की उपाधि प्रदान कर दी। सुब्बैय्या 'सुब्रह्मण्य भारती' बन गए। तिरुनेलवेली हिंदू कॉलेज में माध्यमिक शिक्षा पूरी की। बेटे की इच्छा के विरुद्ध पिता ने पंद्रह साल की अवस्था में ही सात साल की बच्ची चेल्लम्मा से उनका विवाह करा दिया। अगले साल पिता का देहांत होने पर पत्नी को मायके भेजकर आगे पढ़ने के लिए काशी में अपनी बुआ के घर चले गए। काशी हिंदू विश्वविद्यालय में संस्कृत, हिंदी का अध्ययन और इलाहाबाद विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। काशी-प्रवास के दौरान उनके व्यक्तित्व का विकास हुआ और दृष्टि व्यापक बन गई। चाल-ढाल में भी शालीनता आ गई, युवा भारती घनी मूंछें रखने लगे और सिर पर पगड़ी बांधते थे।

1902 में राजा साहब के निमंत्रण पर एट्टय्यपुरम् लौटकर एकाध साल राजा साहब के पास काम किया, फिर मदुरै के सेतुपति स्कूल में चार माह तक तमिल अध्यापक के रूप में सेवा करने के बाद भारती चेन्नई नगर पहुंच गए और 1904 'स्वदेशमित्रन्' दैनिक में उप-संपादक का कार्य संभाला। भारती देश-दुनिया की खबरों में रुचि लेते थे और उन्हें तत्काल सरल तमिल में अनूदित कर अपने पाठकों को परोसते थे। अंग्रेजी भाषा में अच्छी पकड़ और अनुवाद में असाधारण क्षमता के कारण समाचार-पत्र के स्तंभ के माध्यम से तमिल पाठकों को स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, अरविंद घोष आदि के लेखों से परिचित कराते थे। शीघ्र ही भारती के अंदर के विद्रोही ने उन्हें राजनीति के भंवर में डाल दिया। अब वे मां पराशक्ति में भारत माता को देखने लगे और उनका देशप्रेमी हृदय मां भारती को विदेशी शासन की गुलामी से मुक्त करने के लिए छटपटा उठा। पत्र का माध्यम तो हाथ में था ही, वे देशप्रेम की कविताएं छपवाकर युवा भारतीयों के हृदय में जोश और आक्रोश भर देते थे।

1905 में बंग-भंग आंदोलन के साथ भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया। कोलकाता कांग्रेस अधिवेशन में स्वदेशी अपनाने और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने का प्रस्ताव पारित हुआ। काशी में कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के दौरान स्वामी विवेकानंद की धर्म-पुत्री सिस्टर निवेदिता से मिलकर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। 'स्वदेशमित्रन्' समाचार-पत्र में भारती के उग्र विचारों को हजम नहीं कर पाई। फलस्वरूप भारती 'इंडिया' पत्रिका में लग गए, जहां उन्हें पूरी स्वतंत्रता मिलती थी। 'इंडिया' पत्र में छपे एक लेख के आधार पर भारती को कैद करने का वारंट निकला तो कैद से बचने के लिए वे उन दिनों फ्रेंच शासित प्रदेश रहे पांडिचेरी चले गए। कुछ समय बाद क्रांतिकारी अरविंद

घोष भी अंग्रेज सरकार की आंखों में धूल झोंककर पांडिचेरी पहुंच गए। लंदन से क्रांतिकारी वी.वी. एस. अय्यर का भी आगमन हुआ। जिस 'इंडिया' पत्र पर अंग्रेज सरकार ने पाबंदी लगाई थी, वही 'इंडिया' पत्र तोप बनकर दो साल तक पांडिचेरी से आग उगलता रहा। पांडिचेरी में इन क्रांतिकारियों का जीवन सरल नहीं था, ब्रिटिश सरकार के खुफिया और फ्रेंच सरकार की पुलिस उन पर सदा निगरानी रखती थी। इन सबके बावजूद महर्षि अरविंद के सत्संग ने भारती को सोने से कुंदन बना दिया।

सुब्रह्मण्य भारती का पांडिचेरी का प्रवास 1908 से लेकर दस साल तक रहा। क्रांतिकारी के रूप में पांडिचेरी में प्रवेश किए भारती 1918 को वेदांत में परिपक्व ज्ञानी के रूप में निकले। पांडिचेरी के प्रवास काल में 'पांचाली शपथम्', 'कण्णन पाट्टु' (कान्हा के गीत), 'कुयिल पाट्टु' (कोयल के गीत) जैसी महत्त्वपूर्ण कृतियां रची गईं। फ्रेंच प्रदेश से तमिलनाडु की सीमा में प्रवेश करते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 24 दिन तक पुलिस हिरासत में रखा गया। मद्रास के कुछ गणमान्य सज्जनों के प्रयास से उन्हें सशर्त मुक्त किया गया। मुक्त होने पर तिरुनेलवेली जिले में अपनी पत्नी के गांव कड़ैयम चले गए। दो साल तक वहां रहते हुए एट्टय्यपुरम् सहित कुछेक नगरों में घूमते रहे। एट्टय्यपुरम् के राजा ने आश्रय देने से इनकार कर दिया। इस बीच 1919 में चेन्नई घूमते हुए राजाजी के घर में उनकी मुलाकात महात्मा गांधीजी से हो गई।

1920 में जब पुनः अपनी पुरानी कर्मभूमि चेन्नई लौटे तो उन्हें 'स्वदेशमित्रन्' पत्र में फिर से उप-संपादक का पद मिल गया। इस दौरान भारती ने ढेर सारे लेख लिखे। चेन्नई समुद्र तट के पास तिरुनेलवेली में बस गए, यों आखिरकार अभाव से मुक्ति पाकर जीवन पटरी पर आ गया, लेकिन ये अच्छे दिन अधिक समय तक जारी नहीं रहे। पार्थसारथी (कृष्ण) मंदिर के हाथी के साथ उनकी मित्रता हो गई। जब वे भी मंदिर जाते, उसे केले, नारियल खिलाते और 'तुम गजराज, मैं कविराज' कहते हुए मस्ती से संलाप करते।

1921 में जुलाई का महीना। हाथी का मस्तक फूटा हुआ था। भारती को इसका पता नहीं था, रोज की तरह उससे मिलने गए तो हाथी ने उन्हें धकेल दिया। भारती हाथी के पैरों के नीचे गिर पड़े। सौभाग्य से मित्र कुवलै कण्णन ने लपककर बचा लिया। लेकिन अंदरूनी चोट ने उन्हें बीमार कर दिया। 12 सितंबर, 1921 की रात को, जबकि 39 वर्ष की आयु पूरी होने में तीन महीने शेष रहे थे, कालजयी कविताओं के रचयिता भारती काल कवलित हो गए।

जन साधारण के कवि

भारती आम आदमी के कवि हैं। भारती से पहले तमिल कविता गिने-चुने रजवाड़ों और पंडित मंडली में कैद रही और बहुधा आश्रयदाताओं की प्रशंसा करके धन अर्जित करने के लिए कविता का प्रयोग होता था। ब्रिटिश शासन की कड़ाई के उन दिनों में कविता और साहित्य का जन साधारण से कोई वास्ता नहीं था। हिंदी में भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी की भांति भारती ने कविता को पंडिताऊपन के बोझ से मुक्त किया और कविता के लिए जन साधारण की वाणी का प्रयोग किया। काव्यशास्त्र के गहन अध्ययन के फलस्वरूप पारंपरिक कविता रचने में सिद्धहस्त होने पर भी भारती ने अपनी कविता के लिए जन भाषा को स्वीकार किया, क्योंकि उन्हें जन साधारण

से ही संवाद करना था। अपने देशवासियों में व्याप्त अज्ञान और अंधविश्वासों को दूर करके उन्हें भयमुक्त करना और स्वतंत्रता के लिए तैयार करना उनका लक्ष्य था। 'विनायक स्तुतिमाला' शीर्षक कविता में वे कहते हैं :

मेरा काम है कविता रचना
आलस्य न करना कभी भी
निरंतर देश समाज की सेवा करना
उमा का प्रिय सुत गणनायक है
परिवार की रक्षा के लिए।

भारती ने काव्य-भाषा का एक मानदंड स्वीकार किया, जिसे अपने महाकाव्य 'पांचाली शपथम्' की भूमिका में यों व्यक्त किया–''आधुनिक युग में सरल शब्दों में प्रांजल शैली में सहज छंदों का प्रयोग करते हुए सामान्य जन के लिए बोधगम्य भाषा में लोकप्रिय काव्य का सृजन करने वाला कवि मातृभाषा में नई प्राणशक्ति का संचार करनेवाला होता है। उसकी कृति इतनी सरल होनी चाहिए कि एकाध साल का वाचन अनुभव रखनेवाले पाठक के लिए भी वह बोधगम्य हो, साथ ही उस कृति में काव्योचित कलात्मक सौंदर्य का अभाव नहीं होना चाहिए।'' भारती ने इस मानदंड का सदैव पालन किया, उनकी गद्य शैली तो एकदम बोलचाल की भाषा के अत्यंत निकट रही।

देशप्रेम और स्वतंत्रता का वैतालिक

कौमार्य और यौवन की प्रतिसंधि में पढ़ाई के निमित्त काशी में बिताए चार वर्ष भारती के जीवन में उल्लेखनीय रहे। एक विशाल भारतीय समाज में विभिन्न भाषा-भाषियों के साथ उठते-बैठते हुए उनकी दृष्टि विशाल हुई। संस्कृत और हिंदी भाषा के विशेष अध्ययन तथा काशी में विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं से संपर्क के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति को आत्मसात् करने का अवसर मिला। बंकिमचंद्र की कविता 'वंदे मातरम्' से युवा भारती के मन में भारत माता की छवि अंकित हो गई। स्वामी विवेकानंद की धर्म-पुत्री सिस्टर निवेदिता ने उनके सामने भारत माता का भव्य चित्र प्रस्तुत किया और भारती ने उसी क्षण सिस्टर निवेदिता देवी को अपना आध्यात्मिक गुरु मान लिया। लोकमान्य तिलक का आह्वान 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' तथा बंग-भंग आंदोलन के साथ उठे 'वंदे मातरम्' के नारे ने भारती के अंदर देशप्रेम और राष्ट्रानुराग का ज्वर-सा उत्पन्न कर दिया और वे गा उठे :

मां भारती की देह को सजा रही
मृदुल लता जब म्लान हो उठी
उज्जीवित करने के लिए उसे
समुदित हुआ
वंदे मातरम्।

इसी कविता में भारती दृढ़ता के साथ गाते हैं, 'कंधे से कंधा मिलाकर एकजुट खड़े होकर पाएंगे हम विजयश्री, भले ही प्राण चले जाएं, जोश-खरोश से गाएंगे...वंदे मातरम्।'

राष्ट्रीयता की पहली शर्त है–देशप्रेम की भावना। विद्वान टी. पी. मीनाक्षी सुंदरम् के शब्दों में, ''भारती ने कविता में एक नई रीत चलाई। उन्होंने 'राजभक्ति' की बजाय 'देशभक्ति' का प्रचलन किया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की तरह भारती देश की महिमा और वैभव का गान करते हुए कभी नहीं अघाते''–

जगतीतल में भव्य है भारत देश
हमारा भारत देश
महनीय ज्ञान में, परा मौन की गहनता में
मान-सम्मान में, अन्नदान की उदारता में
संगीत की मधुरिमा में, अमृतमयी काव्य-धारा में
प्रोन्नत है हमारा भारत देश
जगतीतल में भव्य है भारत देश।

'देश हमारा' नामक कविता में वे गर्व से कहते हैं, 'वीरों की यह जन्म भूमि है/ऋषियों की यह तपोभूमि है/पूर्ण ज्ञान से ज्योतित देश है यह/गौतम बुद्ध का जन्म देश'/'भारत माता' नामक कविता में भारत देवी की शक्ति और क्षमता का वर्णन करते हुए भारती विदेशी शासकों को परोक्ष रूप से चेतावनी देते हैं–

वह कंधा किसका था
जिसने धारण किया गांडीव
और जीत लिया निखिल विश्व को?
वह कंधा था
हमारी रक्षिका-पालिका-शासिका
भारत देवी का।

''स्वतंत्रता की पौध' नामक कविता में सर्वेश्वर से अवसाद के स्वर में पूछते हैं–

'हमने इसको थोड़े ही पाला है नीर सींचकर,
रक्षा की है इसकी हमने नयन नीर सींचकर,
हे सर्वेश, यही तुम्हारी मंशा है क्या, यह मुरझा जाए?'

तो कभी क्रोधोन्मत्त मां का चित्र खींचकर विदेशी सत्ता को धमकाते हैं–'क्रोध की अग्नि से धधकती रणचंडी भैरवी है हमारी मां, प्रकृति से उन्मत्त भी, करतल पर अग्नि धधकती है, सावधान!'

स्वतंत्रता के इस अमर गायक को भारत को आजादी मिलने का वह सुदिन देखने का सौभाग्य नहीं मिला, लेकिन वे इस उत्सव से वंचित नहीं रहे; आजादी के तीस साल पहले ही अपनी भावना में, अपने स्वप्न में इस आनंदोत्सव का जो गीत गाया, वही गीत 15 अगस्त, 1947 को तमिलनाडु के हर नगर और गांव-बस्ती में गूंज उठा–

गीत गाएंगे हम, गा-गाकर नाचेंगे हम
मिल गई हमें स्वतंत्रता इसी आनंद में

गीत गाएंगे हम, गा-गाकर नाचेंगे हम
लद गया वह जमाना
जब ब्राह्मण माना जाता था देवता तुल्य
लद गया वह जमाना
जब फिरंगी कहलाता था साहब और आका
इसी खुशी में गीत गाएंगे हम
गा-गाकर नाचेंगे हम।

स्वतंत्रता का यह गायक दीर्घदर्शी भी है : इस तरह मन की भावना में स्वतंत्रता का आनंदोत्सव मनाने मात्र से रुकते नहीं, बल्कि बड़ी दूरदर्शिता के साथ स्वतंत्र भारत की समृद्धि, तकनीकी उन्नति और आर्थिक विकास के लिए किए जाने योग्य योजनाओं को भी सूचीबद्ध करते हैं :

विचरण करेंगे हम रजतमय हिमगिरि पर
चलाएंगे जहाज हम समूचे पश्चिम सागर पर...
बंग भूमि में बह रहे अमित जल से
सींचेंगे मध्य देश को, उगाएंगे फसल...
निकालेंगे मोती गोता लगाकर दक्षिण सागर में
आएंगे इसके लिए वणिक जन पश्चिम देशों से...
मंजुल रेशम का पट और मृदुल सूती परिधान
निर्मित कर लगा देंगे अंबार पहाड़-सा...
खोलेंगे विशाल कारखाने और नए-नए विद्यालय...
बनाएंगे भूतल पर चलती गाड़ियां, नभ को चीरते वायुयान
और जग को कंपायमान करते जहाज भी...
काशी नगर के पंडितों का भाषण
कांची में सुनने के लिए बनाएंगे हम यंत्र...
कावेरी तट के मृदुल पान के पत्तों से
विनिमय करेंगे हम गंगा तट का सुनहला गेहूं।

व्यापारिक विनिमय के इस प्रसंग में राष्ट्रीय एकता जो ध्वनित होती है, वह आगे की पंक्तियों में मुखर होती है–

दुग्ध चंद्रिका स्नात रजनी में हम
सिंधु नदी पर नौका विहार करेंगे
केरल की रमणियों के संग
गीत गाते हुए मधुरिम तेलुगु में
करेंगे अठखेलियां आनंद से।

भारती का कवि हृदय कलाकारों का उचित सम्मान करना चाहता है। कहते हैं–

राजस्थान के रणबांकुरे वीरों को
उपहृत करेंगे हम कर्नाटक के सुवर्ण से
शौर्य वीर्य में सिंह सम मराठों को
उपहार में देंगे केरल का हाथीदांत।

भक्ति कविता में भी राष्ट्रोन्नति की अनुरक्ति

वैदिक साहित्य और उपनिषदों में गहन अवगाहन कर भारती अद्वैत के आत्मतत्त्व को तो मानते हैं, किंतु कर्मभूमि जगत् को मिथ्या नहीं मानते। विश्व का आदि कारण परम सत्ता पराशक्ति के रूप में विश्व का संचालन करती है। महात्मा गांधी की तरह भारती ने अनुभव किया कि देश की समस्याओं के लिए ब्रिटिश राज को दोषी मानने की बजाए जनता में जागरण पैदा करके लोगों की आत्म शक्ति को बढ़ाना और उन्हें शारीरिक एवं मानसिक रूप से बलिष्ठ बनाना आवश्यक है। भारती के लिए शक्ति का तात्पर्य है–'सृजन', 'गति' और 'ऊर्जा'। भारतीय परंपरा विद्या, ऐश्वर्य, शौर्य आदि तत्त्वों को देवता के रूप में मानती है। इसी भावना के साथ विभिन्न गुणों को आत्मसात् करने के लिए भारती गणेश, लक्ष्मी, शक्ति, विष्णु, सूर्य, शिव, कार्तिकेय आदि देवों का स्तुतिगान करके उन सभी से देश और समाज की उन्नति और समृद्धि का वरदान मांगते हैं। यह भी कामना करते हैं कि वे अपनी कवित्व शक्ति से विश्व का दुःख दूर कर सकें–

...गुहार करता हूं मैं वाणी से
कि अपने देशवासी यापन करें समृद्ध जीवन
प्रगति पर अग्रसर हो विश्व मानवता
मेरी कविता में एक विशिष्ट प्रभाव हो
और गीत मेरा भर दे जन-जन में आनंद।

भारती महत्त्वाकांक्षी हैं, उन्होंने अपने लिए नहीं, बल्कि समग्र भारत के सर्वांगीण विकास और समृद्धि के साथ इस धरणीतल में निर्वसित संपूर्ण मानवता के कल्याण के लिए मां काली से अधिकारपूर्वक मांग रहे हैं : 'प्रदान करेगी काली मां/अपार जनशक्ति का अंबार/प्रतिष्ठा के संग राजकीय वैभव/सूर्य बिंब का तेजोमय प्रकाश/उत्ताप, सशक्तता और प्रखर ज्ञान/शीतल चंद्रमा की शोभा/प्रदान करोगी मां काली मुझे आज ही/दूर कर दूंगा हरेक का दुःख दूर, जग से/मिटा दूंगा दरिद्रता धरणीतल से निःशेष।'

अशिक्षा ही तो अज्ञान और अंधविश्वासों का मूल कारण है। देश में ज्ञान का प्रसार होने के लिए भारती विद्या की अधिष्ठात्री देवी मां शारदा के सामने यही कामना प्रकट करते हैं–

घर-घर में हो कलाओं का प्रदर्शन
गली-गली में हो पाठशाला एक-दो
देश भर की गांव-बस्ती
नगर-नगर में हों विद्यालय अनेक।

ऐसा वरदान मांगते-मांगते भारती के मन में सहसा यह चिंता उत्पन्न होती है कि दरिद्र जन कैसे विद्यार्जन कर पाएंगे? यही सोचकर वे आगे सुझाते हैं–'मीठे फलों का उद्यान बनाना/शीतल जल के सोते खुदवाना/सहस्र धर्मशालाएं, अन्नदान सहित/निर्माण करना कोटि-कोटि मंदिर/ऐसे ही अनेक कर्म जग में/यश बढ़ाते हैं लोगों का निश्चित ही/किंतु इन सबसे पुण्य कोटिशः अधिक है/वहां एक गरीब को शिक्षा दान देने में।'

'विनायक स्तुतिमाला' शीर्षक कविता में गणेशजी से यही अनुग्रह मांगते हैं–

प्रदान करो मुझे विजय प्रदायक वीरता, ज्ञान और पौरुष
कि मैं कंकड़-पत्थर को हीरक मनकों में,
तांबे को सोना-कुंदन बना सकूं
निरी घास को धान्य कणों में परिवर्तित कर सकूं
नर-सूअर को सिंह बना सकूं
मिट्टी को शक्कर में बदल सकूं
ऐसे चमत्कारों के बल पर
मुक्त कर सकूं अपने देश को सारे कष्टों से।

देश और समाज में उन दिनों व्याप्त दरिद्रता, अशिक्षा, अंधविश्वास, रोग, शोक आदि को भारती कलियुग के अभिशाप के रूप में देखते हैं और सत्य, ज्ञान, शिक्षा, स्वच्छता, सदाचार के बल पर धरती पर कृत-युग लाना चाहते हैं–

आदिदेव की असीम कृपा से
दूर करूंगा मैं कुलबुला रही सकल चिंताएं
दृढ़ बनाकर पस्त हृदय को
सुदृढ़ बना लूंगा लौह सम निज देह को
संहार करूंगा झटिति में
असत्य दलदल में डूबे कलियुग को
और ला दूंगा सत्य-प्रेमोज्ज्वल कृत-युग।

नारी मुक्ति के पुरोधा

1907 में काशी में कांग्रेस अधिवेशन के दौरान भारती को स्वामी विवेकानंद की धर्म पुत्री सिस्टर निवेदिता के दर्शन का सौभाग्य मिला। यह मुलाकात आनंद कुमार बोस के घर में हुई थी। भारती की कविताएं सुनकर प्रसन्न हुई देवी निवेदिता ने पूछा, 'आपकी पत्नी कहां है?' भारती ने कहा कि हमारी कुल परंपरा के अनुसार महिलाएं घर से बाहर नहीं निकलतीं। यह सुनकर निवेदिता ने कहा कि 'जब आप लोग अपने नारी वर्ग को स्वतंत्रता नहीं देते तो देश की स्वतंत्रता के लिए किस आधार पर लड़ रहे हैं?' भारती ने तब सिस्टर निवेदिता में पराशक्ति के दर्शन किए और उन्हें अपना गुरु मान लिया। उसके बाद भारती नारी के समान अधिकार हेतु लड़ने के लिए कटिबद्ध हो गए। 'स्वतंत्रता' शीर्षक कविता में वे हुंकार भरते हैं–

नारी जाति को अपमानित करने की
मूढ़ता को जला डालें हम...
बदले दासता की रीत
नर-नारी की आपस में
विलसे समानता की भावना।

भारती की 'नूतन नारी' छाती तानकर चाल भरती है, वह विश्व में किसी से नहीं डरती, उसे अपने ज्ञान और विद्वता पर सहज गर्व है–

यात्रा करेगी वह स्वच्छंद रूप से
करेगी अध्ययन नव्य नूतन शास्त्रों की
सीखकर विज्ञान और तकनीकें
नवाचारों से सुगम बनाएगी जग जीवन।

'नारी मुक्ति पर कुम्मी नृत्य' करती ग्रामीण महिलाएं चुनौती दे रही हैं–

नारी को सतीत्व की सीख देने वालों!
समान हो यह शर्त नर-नारी दोनों के लिए
सावधान, नहीं चलेगी अब
बालिकाओं के जबरन परिणय की प्रथा।

पवित्र प्रेम के पक्षधर भारती समाज के लोगों के पाखंड और दोगलेपन को आड़े हाथों लेते हैं–

यदि प्रेम-प्रसंग आता है नाटक में, कविता में
विमुग्ध होकर देश के लोग सिर हिलाते हैं समर्थन में
और यही प्रेम आए माध्यमों में
घरों में, कुएं के समीप और गांव बस्ती में
गर्जन करते हैं लोग क्रोध से
उद्यत होते हैं उसे मारकर अर्थी उठाने के लिए।

भारती के संपूर्ण साहित्य में, चाहे वह देशभक्ति की कविता हो, ज्ञान या भक्तिपरक कविता हो या फिर गद्य कविता हो, जगह-जगह नारी को उदात्त स्थान दिया गया है। यहां तक कि वे 'कण्णन पाट्टु' में कान्हा को भी कण्णमा के रूप में चित्रित करते हैं। उनकी लंबी कविता 'कुयिल पाट्टु' की नायिका कोयलिया है। भारती का महाकाव्य 'पांचाली शपथम्' की द्रौपदी क्रुद्ध भारतीय नारी की प्रतिनिधि है, जो अपनी क्षमा-शक्ति की चरम सीमा पर पहुंचकर संहारक पराशक्ति का रूप ले लेती है।

ज्ञान और दर्शन के निकष पर

भारती के काव्य में दार्शनिक और आध्यात्मिक चिंतन प्रचुर मात्रा में मिलता है। महर्षि अरविंद के संसर्ग से उन्हें वैदिक साहित्य और उपनिषदों के गहन अध्ययन का अवसर मिला। उस ज्ञान में दक्षिण भारत में प्रचलित शैव सिद्धांत और अपनी निजी आस्था का संयोजन करके भारती ने अपनी एक दार्शनिक विचारधारा बना ली और उसके केंद्र में पराशक्ति को प्रतिष्ठित कर लिया।

आधुनिक विज्ञान भी समस्त विश्व में व्याप्त रहने वाली शक्ति ऊर्जा को मानता है। कर्मयोगी भारती के लिए देश और समाज की दुर्दशा सुधारने हेतु शक्ति यानी ऊर्जा की ही जरूरत थी, इसलिए शक्ति देवी ने उन्हें आकर्षित कर लिया। नर-नारी में, पशु-पक्षियों में, जड़-चेतन में और इस दृष्टि से समस्त देवी-देवताओं में भारती पराशक्ति यानी महाशक्ति के ही दर्शन करते हैं। 'महाशक्ति पंचकम्' शीर्षक कविता में पराशक्ति का यही रूप देखने को मिलता है–

अगणित ग्रह, अंड पिंड ब्रह्मांड
दिग्दिगंत के पार विस्तृत महाशून्य
सब कुछ बनकर व्यापी हो तुम
नमन है मां तुझे नमन है।

अपनी आत्मा का विस्तार करते हुए जड़-चेतन सभी में अपने को ही देखते हैं। 'मैं' शीर्षक कविता में घोषित करते हैं–

नभ में उड़ रहा पंछी हूं मैं
धरती पर घूम रहे सारे पशु हूं मैं
वन में मस्ती से झूम रहे वृक्ष हूं मैं
पवन, सरिता, सागर हूं मैं।

'स्पष्टता' शीर्षक कविता में वे कहते हैं–'जब समझ में आ जाए, सारा कुछ एक आत्मा है/चित्त में कोई उलझन रहेगा? बोल रे मन/जब उमड़ पड़ेगी दया और करुणा की बाढ़/तब कोई शोक रह पाएगा? बोल रे मन!'

इसी भावना के चलते वे सभी से प्रेम करने और दुश्मन पर भी दया दिखाने का संदेश देते हैं–

सघन धुएं के मध्य में रहती है आग
देखा हमने इसे जगत् में ओ भले हृदय!
घोर शत्रुता के मध्य में देव रहता है प्रेम रूप में
दया दिखाओ शत्रु पर, भले हृदय!

भारती का कहना है कि मृत्यु के बाद कोई शिवलोक या बैकुंठ मिलने वाला नहीं है। सत्य और धर्म मार्ग पर चलनेवालों को यहीं पर जो आनंद प्राप्त होता है, उसी का नाम है–मुक्ति। 'शंख' शीर्षक कविता में कवि यही कहता है–

इस धरती पर, इसी दिन/और अभी हम पाएंगे मुक्ति
जो विश्वास करते हैं इस शुद्ध तत्त्व पर/वही हैं पवित्र जन
यों कहते हुए फूंको रे शंख!

भारती पांडिचेरी में सिद्धों और योगियों के संपर्क में रहते थे। 'भारती छियासठ' कविता में सिद्ध योगी कुल्ला स्वामी 'तत्त्वमसि' का उपदेश देते हैं–

तत्त्वमसि ही तो है वेद वचन
यह है तुम्हारे सामने स्थित वस्तु का नाम
तुम उससे भिन्न नहीं कोई।

भारती का रचना संसार

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती का रचना संसार विशाल है। उन्होंने देशप्रेम, भक्ति, ज्ञान और दर्शन, तमिल भाषा, नारी उन्नयन, प्रकृति, समाज, पौराणिक प्रसंग अदि विभिन्न विषयों पर 250 से अधिक कविताएं रची हैं। उनमें से पांच गद्य काव्य, दो लघु नाटक, एक लंबी कविता और एक महाकाव्य शामिल हैं। इनमें से 'कण्णन पाट्टु' (कान्हा गीत), 'कुयिल पाट्टु' (कोयल गीत) और 'पांचाली शपथम्' (द्रौपदी की शपथ) महाकाव्य महत्त्वपूर्ण हैं। 'कान्हा पाट्टु' 23 कविताओं का समुच्चय है, जिसमें भारती अवतार पुरुष श्रीकृष्ण को दिव्यता से उतारकर आम आदमी के लिए सुलभ बनाते हैं। 'कुयिल पाट्टु' प्रेम-गाथा है, जिसकी नायिका मादा कोयल है। यह लंबी कविता है और यह स्वप्न, कल्पना और फंतासी का अद्‌भुत रसायन है। 'पांचाली शपथम्' महाभारत के द्यूत क्रीड़ा वाले प्रसंग पर आधारित है। अब इन तीनों यशस्वी कृतियों का संक्षिप्त परिचय पा लें।

कण्णन पाट्टु (कान्हा गीत)

जिस तरह भारती ने कविता की भाषा को आम आदमी के लिए बोधगम्य बनाया, उसी तरह उत्तुंग गोपुर के नीचे सुदीर्घ प्राचीरों से वलयित भव्य गर्भगृह से ईश्वर को उतार लाकर जन साधारण के बीच में चलने-फिरने दिया। आम आदमी कैलाश और वैकुंठ की संकल्पना नहीं कर सकता, उसके लिए अपने चारों तरफ के खेत-खलिहान, वन-उपवन, नदी-नाले ही पवित्र तीर्थ हैं। ताड़पत्र में उत्कीर्ण मंत्रों की भाषा उनकी समझ के बाहर है। उनका मन नारियों के गीतों में, बच्चों की क्रीड़ा में और मुहावरे-कहावतों से लदी लोकभाषा में रमता है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में ईश्वरीयता धरती के कण-कण में, वृक्ष-लता में, पशु-पक्षी में और नर-नारी में विद्यमान है और हम अपने दैनंदिन जीवन में अपने मित्र, गुरु, माता-पिता, प्रेमी और प्रेमिका को और यहां तक कि अपने सेवक को भी ईश्वर के रूप में देख सकते हैं। 'कण्णन पाट्टु' में कान्हा को मित्र और सखा के रूप में, माता और पिता के रूप में, गुरु और स्वामी के रूप में, प्रियतम और प्रिया के रूप में तथा सेवक के रूप में चित्रित करते हुए भारती ने जहां ईश्वर को जनसुलभ बना दिया, वहां धर्म का भी जनतांत्रीकरण कर दिया। 'कान्हा गीत' की रचना करते समय कवि के हृदय से प्रेम का उत्स फूट पड़ता है और कृष्ण विविध भूमिकाओं में अवतरित हो जाते हैं। उसकी लीलाओं की कवितामय बानगी देखें :

कान्हा मेरा सखा : आदर्श सखा के रूप में कान्हा बीहड़ कानन में भटकने के दिनों में मार्ग दिखाते हैं और हर विकट घड़ी में संबल देते हैं। जीविका चलाने का मार्ग पूछने पर क्षण भर में हल सुझा देते हैं–

वर्षा में छतरी, भूख के लिए अन्न और
जीवन में विश्वस्त साथी है हमारा कान्हा

जब भी बुलाएं आनाकानी किए बिना/
क्षण भर में भागा आता...
उमड़ पड़े यदि क्रोध मेरे मन में/
चुटकुला सुनाकर लोटपोट कर देता मुझे हंसी में
विषाद की घड़ियों को वह परिवर्तित कर देता आह्लाद में।

कान्हा मेरे पिता : भारती पिता के रूप में कान्हा का रहस्यमय ढंग से परिचय दे रहे हैं–

जन्म हुआ है उसका क्षत्रिय वंश में
पालन हुआ ग्वालों के कुल में
प्रशस्त हुआ वह ब्राह्मण-श्रेष्ठों में
घनिष्ठ परिचय है उसका श्रेष्ठियों से भी।

दरिदों के साथ मित्रता करनेवाले फुफकारते हैं गर्वीले श्रीमंतों को देखकर। पिता कान्हा प्रेम का मूर्त रूप हैं और नटखटपन में माहिर भी हैं। वयोवृद्ध और पुरातन होने पर भी पिता के बदन पर एक झुर्री तक नहीं है और यौवन उसका स्थायी है, चिरंतन है।

कान्हा मेरी माता : भारती के कान्हा यहां माता की भूमिका निभाते हैं–

मां का स्तन है जीवन का क्षेत्र
स्रवित होता है उनसे आनंदमय संचेतना का दुग्ध
करुणामयी है मां, कहते हैं उसका नाम हैं कान्हा
कान्हा माता कहानियां सुनाती है और
बिछा देती है मेरे सामने अद्‌भुत अनोखा गुड़ियों का संसार
चांद, सूरज और ग्रह-पिंड...

सज्जित किए हैं मां ने कोटि-कोटि कलाएं, विज्ञान और शास्त्र। प्रशस्ति गान करता रहूंगा मां का और वह प्रदान करेगी मुझे सुदीर्घ कीर्तिमंडित जीवन और अन्य सारी गौरव-गरिमाएं।

कान्हा मेरा सेवक : कवि अपने सेवक कान्हा का नाटकीय अवतरण कर रहा है–

जाने कहां से आया वह/बोला, मैं जाति का ग्वाला हूं
चरा लाऊंगा मवेशियां/ख्याल रखूंगा बच्चों का भी
मानूंगा आपका हर आदेश/नन्हें-मुन्ने को सुनाऊंगा मीठे गीत
रक्षा करूंगा आपकी भी/रंच मात्र भी आंच आए बिना
अनपढ़ हूं जंगली आदमी हूं/मगर थोड़ा बहुत जानता हूं पहलवानी/
लेश मात्र भी नहीं करूंगा विश्वासघात
पूछा मैंने, 'क्या नाम है तेरा'/'नाम कोई खास नहीं श्रीमन!
लोग कहते हैं मुझे कान्हा'।

जब से पदार्पण किया घर में कान्हा ने, सारी चिंताएं, विचार, परवाह उसी के जिम्मे हैं; संपदा, यौवन शक्ति, सम्मान, अध्ययन सब कुछ सिद्ध हो रहा है प्रशस्त ढंग से।

कान्हा मेरा सद्गुरु : कवि को बड़ी तलाश के बाद सद्गुरु की प्राप्ति हुई–

भटकता रहा मैं देश भर में/सद्गुरु की तलाश में
यमुना तट का योगी बोला/मार्गदर्शक की तलाश है तुझे
एक है उत्पन्न हुआ है राजकुल में/अधीश है उत्तर मथुरा नगरी का
झटिति में पहुंच गया मैं मथुरा नगरी
नृत्य गान का कोलाहल देख वहां उलझ गया मैं पशोपेश में
ले गया कान्हा मुझे एकांत स्थान पर/और अनुगृहीत किया उदात्त संदेश से
''सुनो वत्स ! प्रदान करूंगा मैं दिव्य ज्ञान
चिंताओं से मुक्त हृदय से चित्त को एकाग्र करते हुए
जब तुम निज को भूलकर/बनोगे आत्मजयी
तब पाओगे जगतीतल को नापने का ज्ञान''

कवि की भावना में 'प्रेमिका कण्णमा और लाडली बच्ची भी बन जाता है।

कण्णमा मेरी लाडली बच्ची : देखते-देखते कान्हा शिशु बन जाता है, कान्हा का यह रूप अत्यंत कमनीय है। कवि अपनी लाडली बच्ची को दोनों बांहों में भरने के लिए लालायित हो गया है–

अमिय सम लाडली, कण्णमा!/ओ सुनहली बोलती तस्वीर!
डगमग-डगमग आती है तू इसी भाव से/कि मैं भर लूं बांहों में तुझे
चुंबन देता हूं तेरे गालों पर
चढ़ जाता है चित्त में मद का नशा/जब आगोश में लेता हूं तुझे
उन्मत्त होता है री चित्त मेरा
आंसू छलके तेरे नयनों से लपकता है रक्त मेरे हिय में
तेरी तोतली बोली, कण्णमा!/घोल देती है मेरा दुःख दुरित सारा।

कुयिल पाट्टु (कोयल गीत)

'कोयल गीत' 750 पंक्तियों की लंबी कविता है। इस अदभुत प्रेम गीत की पात्र एक कोयल है, जो प्रेम के लिए तरसती-तड़पती है। इसे 'पंचतंत्र' सरीखा एक किस्सा भी कह सकते हैं, इसलिए कि इसमें कोयल के अतिरिक्त एक बंदर और बैल भी पात्र रूप में आते हैं और कई घटनाएं स्वप्न में घटती हैं। 'कोयल गीत' भारती की कल्पना में सृजित दुस्साहसपूर्ण, मौलिक एवं रमणीय कविता है। ललित-मधुर तमिल में स्वप्नों की शृंखला के रूप में रचित 'कोयल गीत' में न तो 'कान्हा गीत' की बहुमुखी प्रतिभा और आध्यात्मिक जोश है, न ही 'पांचाली शपथम्' का महाकाव्यात्मक प्रवाह और भावप्रवण गहनता है।

संक्षेप में कथा यों है–पांडिचेरी की एक अमराई, सुप्रभात की वेला। स्वप्न-चालित प्रतिमा सम वहां पहुंचा कवि कोयलिया के प्रेम गीत से आकर्षित होता है। जाने क्यों, कवि के मन में भी कोयलिया के प्रति अनुराग पैदा हो जाता है। कोयलिया उससे प्रणय निवेदन करती है और चौथे दिन पुनः आने का आग्रह करती है। मगर दूसरे दिन भी यंत्र-चालित जैसे कवि के पांव अपने आप

अमराई की ओर खिंचते चले जाते हैं। क्रोध और विस्मय के साथ देखता क्या है कि उस दिन कोयल किसी बंदर के साथ प्रेम-नाटक रच रही है, ईर्ष्यावश बंदर को मारने के लिए कटार की मूंठ पर हाथ जाने पर भी सब्र करते हुए रुक जाता है।

निराशा में खुद को कोसते हुए कवि घर लौटता है। किंतु तीसरे दिन भी नन्हीं कोयल के प्रति मोह उसे धकेलता हुआ उपवन में पहुंचा देता है। विचित्र विडंबना ही कहिए, आज कोयल किसी बूढ़े बैल को अपना प्रियतम बनाकर प्रेम गीत गा रही है। यह प्रेम नाटक देख, तैश में आकर कवि बैल पर कटार फेंकता है, पर वह बचकर भाग जाता है। कोयलिया भी तिरोहित हो गई, तो अपना-सा मुंह लेकर घर लौटना पड़ा। चौथे दिन भी कवि अमराई पहुंच जाता है, कोयल के अनुरोध का पालन करने के लिए नहीं, बल्कि उसकी लंपटता और विश्वासघात का प्रतिशोध लेने के संकल्प से। कोयलिया को देखने पर मन नियंत्रण में आ जाता है। उसकी रामकहानी मुग्ध करने वाली थी। पूर्व जन्म में वह एक व्याध-कन्या थी, गांव में रिश्ते का युवक उस पर फिदा था। वह एकांगी प्रेम था, जिसे वह अनमने ढंग से स्वीकार करती है। पड़ोस के गांव का मुखिया भी अपने बेटे के लिए व्याध-कन्या का हाथ मांगता है। कन्या का पिता स्वीकार भी करता है। विवाह अभी हुआ नहीं, व्याध-कन्या उपवन में सखियों के साथ क्रीड़ा कर रही है, जब चेर राजकुमार मृगया करते हुए भटककर वहां पहुंचता है और प्रणय निवेदन करता है। व्याध-कन्या भी मचल जाती है और दोनों की प्रेम केलि शुरू होती है। तभी एक ओर से पड़ोसी गांव का व्याध कुमार, जिसके साथ सगाई हुई थी, और दूसरी ओर से गांव का प्रेमी पहुंच, यह दृश्य देखकर भड़क उठते हैं। दोनों एक ही समय में राजकुमार पर वार करते हैं। घायल राजकुमार मरने से पहले वादा करता है कि उसका प्रेम अनश्वर है और अगले जन्म में वह परिणय करने आएगा। इधर दोनों युवक भी आपस में भिड़कर कट-मर जाते हैं। सो इस जन्म में वह अभिशापवश कोयल के रूप में जन्म लेती है और अपने प्रेमी की तलाश में भटकती है। बंदर और बैल पूर्व जन्म के युवक थे, जो उसका पीछा कर रहे हैं। अंत में यही निकलता है कि कवि पूर्व जन्म का प्रेमी राजकुमार है। यह सारा वृत्तांत कोयल-कन्या को एक सधूदय मुनि की कृपा से मालूम हुआ है, और वह निवेदन करती है, "हे प्राणप्रिय! मैंने मुनिवर की बातों को यथावत् सुना दिया, ना कुछ छोड़ा, ना कुछ जोड़ा। अब अनुगृहीत करो प्रेम से, अन्यथा मार डालो मुझे अपने हाथों से," यों कहकर हाथों में गिरी कोयल को कवि स्नेह से चूम लेता है और तब...

अहा आश्चर्य! अवर्णनीय आश्चर्य!/अभिलाषा के सागर का अमृत!

अद्‌भुत दृश्य खुल गया आंखों के सामने
दिव्य सौंदर्य में खड़ी है वहां इक ललना
एकटक देख रही है मुझे हर्ष-पूरित नयनों से
फिर तनिक झुका लिया निज वदन लज्जा से/
कैसे वर्णन करूं इस भंगिमा का?/
लगता है, कविता रूपी फल रस को/नृत्य गान में मिलाकर
प्राप्त अमृत रस को सुखाकर स्नेह की धूप में
सृजित किया होगा ऐसी लावण्य मूर्ति को ब्रह्मा ने।

फिर क्या था? आह्लाद की चरमसीमा में पहुंचकर ज्यों ही उसे आलिंगनपाश में लेता है और चुंबनों की वर्षा करता है, उसी आनंद मूर्च्छा में स्वयं को भूल जाता है, उस सौंदर्य प्रतिमा के साथ उपवन भी ओझल हो जाता है, इसी आघात में बेहोश होकर वहीं गिर जाता है। आंखें खुलने पर निज को अपने कमरे में पुराने अखबारों और पुरानी पुस्तकों के बीच में पाता है।

क्या इस कृति को महज फंतासी कहकर छोड़ सकते हैं? नहीं, एक दृष्टि से कोयल प्रेम का प्रतीक है और प्रेम अनश्वर है। असल में कोयल की असली पहचान अंत में जाकर ही खुलती है, काली पंछी के अंदर कैद रही सौंदर्यराशि उस कारागार से तभी मुक्त होती है, जब तक आराधक उपस्थित न हो, सारा सौंदर्य व्यर्थ ही है।

पांचाली शपथम् (द्रौपदी की शपथ)

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रारंभिक युग में भारती द्वारा रचित 'पांचाली शपथम्' निस्संदेह एक क्रांतिकारी महाकाव्य है। कृति के आमुख में भारती विनीत भाव से निवेदन करते हैं कि यह महाकाव्य व्यास कृत 'महाभारत' का अनुकरण मात्र है और मैं केवल तमिल शैली के लिए उत्तरदायी हूं। किंतु निश्चित रूप से उनका निहित उद्देश्य काव्य की ध्वनि को मूल महाभारत के परिवेश से आधुनिक युग के महाभारत, यानी स्वतंत्रता संग्राम के परिवेश में बदलने का था तथा प्रमुख पात्र पांचाली में भारत माता का अध्यारोपण करने का था। इस लक्ष्य में वे पूर्ण रूप से सफल भी हुए हैं। दुर्योधन और दुःशासन भारत माता को संत्रस्त और लांछित करने वाला ब्रिटिश शासन ही है। द्रौपदी रूपी भारत माता को दांव पर रखने वाले आधुनिक पांडव भारतीय रजवाड़ों के राजा हैं, जो अंग्रेजों की कूटनीति रूपी शकुनि की चाल से अपनी भूमि का अधिकार गंवाकर कौरव सभा में पांडवों की तरह निहत्थे और विवश विकल निरुपाय खड़े हैं। भीष्म पितामह मूक जनमत के प्रतीक हैं। इस तरह एक प्रच्छन्न क्रांति के बावजूद भारती अपनी शालीनता में दावा करते हैं कि उन्होंने कोई मौलिक प्रयोग नहीं किया है। कथन शैली, लोक में प्रचलित छंदों तथा सटीक अलंकारों का प्रयोग, चरित्र चित्रण, कथोपकथन में नाटकीयता, प्रकृति वर्णन आदि में उनकी मौलिकता स्पष्ट रूप से प्रकट हुई है।

यह महाकाव्य दो भागों में विभक्त है–प्रथम भाग में 'दुर्योधन का षड्यंत्र और द्यूत क्रीड़ा नाम से दो सर्ग हैं और द्वितीय भाग में 'दासता', 'राजसभा में अपमानित पांचाली' और 'द्रौपदी की शपथ' नाम से तीन सर्ग हैं। पहला भाग कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर के विस्तृत वर्णन से शुरू होता है। अकूत संपत्ति और राजवैभव के मध्य में भी दुर्योधन ईर्ष्या और असंतोष से कुढ़ रहा है; पांडवों के ऐश्वर्य और यश के प्रति उसकी ईर्ष्या द्वेष में बदलती है और वह मामा शकुनि की सलाह मांगता है कि किस तरह पांडवों की सारी संपदा, यश-वैभव को लील लिया जाए? युद्ध की बजाय द्यूत के छल से पांडवों को कंगाल बनाने की योजना बनती है, मगर इसके लिए पांडवों को हस्तिनापुर लाना होगा। महाराज धृतराष्ट्र द्वारा नूतन सभा मंडप देखने के लिए पांडवों को निमंत्रण भिजवाना होगा। मामा-भांजे दोनों महाराज को इसके लिए सहमत कराने के प्रयत्न में लगते हैं।

भारती ने अन्य महाभारत कथाओं के समान धृतराष्ट्र को कुटिल, पुत्र पर अंध स्नेह

रखनेवाले पात्र के रूप में नहीं, बल्कि व्यास कृत 'महाभारत' के अनुकरण में उसे उदात्त गुणों से युक्त, दुर्योधन से विमुख और पांडवों के प्रति स्नेहशील चरित्र के रूप में चित्रित किया है। मामा-भांजे के द्वय को देखते ही वे शकुनि पर बरस पड़ते हैं ''अरे तुम प्रकट हुए हो पिशाच सम/सत्यानाश करने के लिए मम पुत्र का/...क्या सहोदरों के बीच हो सकती है शत्रुता/...रे वत्स, तुम्हारे कंधों के समान हैं ये राजकुमार/उनका वध करने की सोच रहे हो क्या?'' शास्त्रों और नीति वाक्यों का उद्धरण देकर दुर्योधन के मन से पांडवों के प्रति विद्वेष को दूर करने का भरसक प्रयास करते हैं। अंत में दुर्योधन आत्महत्या की धमकी देता है तो उन्हें झुकना पड़ता है और वे पांडवों को निमंत्रण भेजने को सहमत होते हैं। उन्हें विदुर की भविष्यवाणी याद आती है कि नियति के खेल के अनुसार सत्यानाश होकर रहेगा। फिर तो अंत तक वे विधि के हाथों सबकुछ छोड़कर निष्क्रिय बन जाते हैं।

शकुनि भी खलनायक की भूमिका बखूबी निभाता है। प्रवंचक शकुनि महाराज के सामने अपने मन में निहित षड्यंत्र को सिद्ध करने के लिए नए-नए तर्कवाद बुनता है और दुर्योधन के लोभ को न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न करता है। राजसभा में पांडवों के प्रवेश पर चाटुकारिता पूर्ण शब्दों में धर्मराज को द्यूत के लिए आह्वान करता है–

''ओ धर्म के अवतार, पांडव श्रेष्ठ!
अनुपमेय है तुम्हारी वीरता रणांगण में
आओ, हम तनिक देखें आज
द्यूत विद्या में तुम्हारा शौर्य!''

शालीनता के नाम पर धर्मराज के मना करने पर दूसरा अस्त्र दाग देता है ''बोलो, द्यूत के लिए ललकारने पर भला, इनकार करता है उसे कोई नरेश?'' प्रत्येक बार धर्मराज द्वारा बाजी हारने पर अगली बाजी रखवाने के लिए चीनी-मिश्री में सने लुभावने शब्दों का प्रयोग करने में पटु है। सब कुछ हारकर जब सारे ही पांडव निरे कंगाल बन जाते हैं, तब भी शकुनि थकता नहीं–

''खेलेंगे हम बाजियां लगाकर आगे भी
दमकते अमृत जैसी है इनकी देवी/यदि रखा जाए उसे बाजी में
अनिषेध्य सौभाग्य की रानी वह/पा सकते हैं पांडव हारी हुई सारी चीजें।''

धर्मराज सत्य और धर्म की प्रतिमूर्ति तथा नीति और परंपरा को माननेवाले शालीन पुरुष हैं, किंतु सही समय पर सही निर्णय लेने में अक्सर चूक जाते हैं। जब विदुर के माध्यम से दुर्योधन की कूटनीति का पता चल जाता है, यदि भीम की सलाह मान ली होती तो हस्तिनापुर आकर द्यूत क्रीड़ा में फंसने की नौबत न आती। अनिष्ट की आशंका उठने पर भी विधि के हाथों की कठपुतली बन जाते हैं। उनकी सबसे बड़ी भूल द्रौपदी को दांव पर रखने की थी। कवि पूछता है–

''क्या कोई हत्या करेगा लाडले बच्चे की
जूते का चमड़ा पाने के लिए?
क्या द्यूत में बाजी रखने की वस्तु है पांचाली?''

इस अपराध पर भीमसेन के मुंह से दंड सुनाने की सीमा तक धर्मराज पर क्रोध उठता

है–''झेल नहीं सकते हम इसे ओ मेरे अनुज!/जलता अंगार ले आओ/दीप ज्योति को रखकर हारा/जला देंगे इस भैया का हाथ।''

दुर्योधन गदा-युद्ध में भीम के समान शक्तिशाली होने पर भी अविनीत, गर्वीला और कामी है, युद्ध में पांडवों को जीतने का साहस न होने से द्यूत में उन्हें जीतने का मामा का प्रस्ताव उसे भा जाता है। राजसूय यज्ञ में दुर्योधन की मूर्खता पर हंसने के अपराध पर द्रौपदी का अपमान करने पर तुला हुआ है।

द्रौपदी ही वास्तव में इस महाकाव्य की नायिका है। रामायण में सीता की तरह महाभारत की यह नायिका भी नारी उत्पीड़न की यातनाओं की चरम सीमा से गुजरी है। पुरुष वर्ग द्वारा जो अत्याचार नारी पर किए जाते हैं, वे आज तक कम-ज्यादा मात्रा में जारी रहते हैं। द्रौपदी स्वयंवर के समय से ही दुर्योधन उसे पाना चाहता था। द्यूत क्रीड़ा के आयोजन के पीछे दुर्योधन का उद्देश्य पांडवों की संपत्ति और राजवैभव हड़पना मात्र नहीं था, द्रौपदी को दासी बनाकर अपमानित करना भी था। तभी तो जुए में द्रौपदी को जीतने पर दुर्योधन उछल पड़ता है और मामा शकुनि को छाती से कसकर अभिनंदन कर रहा है–

''पोंछ दिया मेरा दुःख/मेरे प्राणप्रिय मामा तुमने/बदला होंगे उस अवहेलना का/उस दिन हंसी थी मुझपर मामा/दासी बना दिया उसे।''

विपत्तियों से घिर जाने पर भी द्रौपदी हार मानती नहीं, स्वाभिमान के लिए धीरता से लड़ती है। दुर्योधन के आदेश पर जब सूत उसे बुलाने आता है तो द्रौपदी उसे यह कहकर लौटा देती है– ''चलकर यही वृत्तांत पूछकर आओ/धूर्त शकुनि की चाल से/निज स्वतंत्रता और सम्मान खोए नायक/पहले मुझे रखकर हारे, या फिर/खुद को पहले हारने के बाद मुझे रखकर हारे?...जब वे खुद हार गए खुद बाजी में/मुझे दांव में रखने का उनका अधिकार नहीं है।''

दुष्टों की न्यायशून्य सभा में असहाय खड़ी द्रौपदी भीष्म सहित गुरुजनों और शास्त्रज्ञों को ललकारती है–

निष्कपट नृप पर जोर डालकर
बाध्य करना द्यूत खेलने को/क्या वह न्यायोचित था?
मंडप का निर्माण तुमने/हमारा राज्य हड़पने के लिए किया था/
इस सभा में विराजे हैं शास्त्रों में पारंगत/बहुश्रुत विद्वान, विश्व प्रसिद्ध ज्ञानीजन
जाने क्यों नहीं उठता नैतिक क्रोध उनके मन में?

"तब भीष्म यह तर्क देते हैं", नर-नारी की समानता के वैदिक कालीन नियम अब बदल गए हैं, वर्तमान नियम के अनुसार द्यूत में हारकर दास बनने के बाद भी पुरुष अपनी पत्नी को बेच सकता है, दांव में रख सकता है या पर पुरुष को भेंट में भी दे सकता है। इस विवेकहीन उत्तर पर द्रौपदी कटाक्ष करती है ''महामना!/अच्छी तरह समझा दी आपने धर्म नीति/पुरा युग में अपहरण किया रावण ने सीता का/फिर बुलाया सभा में मंत्रियों और शास्त्रज्ञों को/सुनाया लक्ष्मी सम सीता को बलात् लाने का समाचार/शास्त्रज्ञों ने प्रशंसा की तत्क्षण/उचित था आपका कार्य, सम्मत है यह धर्म नीति में/यदि पिशाच राज करे तो/शव का भोजन करेंगे शास्त्र भी।''

कर्ण के इशारे पर जब दुःशासन द्रौपदी का चीरहरण करने लगा तो पांचाली एकाग्र चित्त से ज्योति में विलीन हो जाती है और हरि की शरण लेती है। तब वह चमत्कार घटता है, दुःशासन के खींचते-खींचते नव-नव परिधान/रंग-बिरंगी साड़ियां बनकर/बढ़ता रहा निरंतर, बढ़ता ही रहा। बैठ गया दुःशासन बुरी तरह थककर/...धर्महंता सर्पध्वज दुर्योधन/लज्जा से अवनत सिर खड़ा रहा। पराशक्ति की कृपा से जब सत्य की जीत हुई तो भीम ने दुर्योधन और दुःशासन का वध करने की शपथ खाई और अर्जुन ने कर्ण की हत्या की शपथ खाई।

अंत में पांचाली ने दृढ़ स्वर में शपथ खाई ''देवी पराशक्ति की सौगंध! पापी दुःशासन का रक्त/और इस दुष्ट दुर्योधन की देह से फूटता रक्त/मिश्रित करके दोनों को/लेपन करूंगी अपनी वेणी पर/और सुगंध स्नान करूंगी जी भरकर/संवारूंगी अपना यह केश/तभी संवारूंगी अपना यह केश/नहीं संवारूंगी तब तक अपना केश!''

कौरवों की सभा में न्याय मांगती खड़ी द्रौपदी में भारती ने निरंकुश ब्रिटिश राज से प्रताड़ित भारत माता को पराशक्ति रूप में देखा, जो प्रतिशोध लेने के आक्रोश के साथ खड़ी है। इस दृश्य को पांडिचेरी में रात-रातभर चलने वाले वीथी नाटकों में अनेक बार देखकर उसी आवेश में भारती ने 'पांचाली शपथम्' की रचना की और संदेश दिया कि नारी शक्ति-स्वरूपिणी है और देवी ऊर्जा के साथ निरंतर छेड़छाड़ करोगे तो मां पराशक्ति मानवराशि से प्रतिशोध लेने को बाध्य हो जाएगी, जैसे कि द्रौपदी के आक्रोश ने महाभारत मचा दिया था।

विलक्षण व्यक्तित्व के धनी हैं महाकवि सुब्रह्मण्य भारती। निराला की भांति अपने अहित की चिंता न करते हुए स्पष्टवादिता पर दृढ़ रहनेवाले। ऐसा अद्वैतवादी, जो जगत् को मिथ्या नहीं मानता; ऐसा विशिष्टाद्वैतवादी, जो किसी एक देवता पर जोर नहीं देता; ऐसा शैव, जो शिव के अर्द्धनारी रूप में रमता है; ऐसा वैष्णव, जो कान्हा को कण्णमा के रूप में, प्रेयसी के रूप में देख सकता है; ऐसा क्रांतिकारी, जो पुरातनता की पूजा करता है; ऐसा परंपरावादी, जो नवीनता को प्रेम से अपनाता है; ऐसा समाजवादी, जो ईश्वर की व्याख्या करता है; ऐसा सिद्ध, जो जगत् से घृणा नहीं करता और ऐसा युग-पुरुष, जो जीते-जी विष पीता रहा और समाज को अमृत बांटता रहा।

□

भारती के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

वी. पद्मावती

तमिल साहित्य के युग प्रवर्तक सुब्रह्मण्य भारती ने विभिन्न क्षेत्रों में पुनरुत्थान का कार्य किया है। राजनीति के क्षेत्र में भी उन्होंने योगदान दिया है। जातिभेद की क्रूरता, नारी की गुलामी, आर्थिक असमानता आदि के विरोध में भारती ने बुलंद आवाज उठायी है। गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में भारती ने रचनाएं की हैं। कविता के साथ-साथ उन्होंने कहानी एवं निबंधों के क्षेत्र में भी योगदान दिया। उनकी 'नवतंत्र कहानियां', 'वेडिक्कै कदैगल', 'आरिल ओरु पंगु', 'पेयुक्कोट्टु' आदि प्रसिद्ध रचनाएं हैं–

विनायक की वंदना करते हुए भारती अपने जीवन के लक्ष्य की ओर संकेत करते हैं–

"हमारा उद्यम है कवि-कर्म के साथ देश-सेवा
पल भर भी न थकना-उमानंदन विनायक
गणनाथ हमारे कुल का संरक्षण करेगा"[2]

सुब्रह्मण्य भारती की भक्तिपरक कविताओं में भी उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और सामाजिक उन्नयन की भावना झलकती है–

"सहस्र अन्नशालाओं की स्थापना
सहस्रों मंदिरों का निर्माण करना
विविध हितकर धर्मकार्य में सतत् रहना
कीर्ति प्रशस्ति बढ़ाने हेतु
समस्त सद्कर्मों में प्रवृत्त होना
इन सबसे उत्तम उपकार है
सर्वाधिक पुण्य फलदायी है
दीन-साधनाहीन बालक को
सप्रेम शिक्षा-दान देना"[3]

भारती हिंदू ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने पर भी सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता एवं समन्वयात्मक भावना रखते थे। अपनी कविताओं में सभी हिंदू देवताओं के साथ-साथ अल्लाह और ईसामसीह का भी उन्होंने गुणगान किया है। अपनी 'अल्लाह' शीर्षक कविता में उन्होंने अपनी वंदना इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"अल्लाह...अल्लाह...अल्लाह!
अरबों-खरबों की तादाद में बिखरे ज्योति-खंड
हर दिशा में असीम अंतरिक्ष में
अविरत परिक्रमा करने का नियम बनाया तूने!
शब्द से, मन से अननुगम्य परमज्योति!"[4]

इस संसार की जनता को जीने के लिए सटीक मार्ग दिखाने हेतु कई अवतार पुरुषों का जन्म हुआ हैं। ईसामसीह का नाम इतना प्रसिद्ध है कि भारती उनका नमन भी करते हुए अपने श्रद्धा भाव को दिखाते हैं–

"ईसा अवतरित हुआ,
सूली पर प्राण त्याग
पुनर्जीवित हुआ तीसरे दिन ही
इस घटना की साक्षी थी
ममताशील मरिया आंदोलन।"[5]

भारती के जीवनकाल में उन्हें पराधीन वातावरण में ही सांस लेना पड़ा। अपने मन में उद्‌भूत स्वतंत्रता की ललक को वे अपनी जनता में पैदा करने के लिए निष्ठा के साथ काम करने लगे। युग-युगों से अपने प्रदेश में प्रचलित गुलामी की भावना, भय, अकेलापन, भेदभाव, स्वार्थपरकता, सामाजिक विद्रूपताओं आदि के स्थान पर रूढ़ियों का विरोध, स्वातंत्र्य भावना, भयहीनता, समाजवाद, एकता आदि पर भारती जोर देते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए शिक्षा, उद्योग, अर्थव्यवस्था, जीवन पद्धति में सुधार, सामाजिक व्यवस्था की स्थापना आदि को वे अत्यंत आवश्यक मानते थे। भारती जिस युग में रहते थे, उसमें अंग्रेजों के आधिपत्य में देश को संघर्ष करना पड़ता था तो उनका मुख्य लक्ष्य ही ऐसा हो गया कि देश को आजादी दिलाना है, विदेशियों के कब्जे से लोगों को स्वाधीनता मिलनी चाहिए। इसके लिए यह बात आवश्यक हो गई कि कई कारणों से बंटकर रहनेवाली जनता के मन में एकता की भावना और स्वतंत्रता की ललक पैदा करनी थी। उस काल के समाज में लोग धर्म एवं जाति के नाम पर खूब बंटे हुए थे। भारती को विश्वास था कि सभी जनता के एक साथ मिलकर लड़ने से ही आजादी संभव है; इसीलिए लोगों में भावात्मक परिवर्तन लाना जरूरी हो गया था। अलग-अलग रहनेवाली जनता को कभी-कभी फटकारते हुए उनके अपराध का बोध कराते थे। अपने जीवन के बुनियादी लक्ष्य के रूप में उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति को ही माना था। उनका मानना था कि लोगों को समय के साथ बदलना चाहिए। नवीन चेतनाओं को समाहित करते हुए चलने से ही समाज का विकास हो सकता है। अपनी कविताओं में वस्तुओं के उत्पाद, देश के लोगों के द्वारा पर्याप्त मात्रा में उपभोग तथा फिर विदेशों को निर्यात के द्वारा धनार्जन आदि कई विकास के मुद्दों पर भी भारती ने कविताएं लिखी हैं।

भारती ने अपने देश एवं भाषा की महानता, सांस्कृतिक उत्कृष्टता आदि को भूलकर निद्रामग्न जनता के बीच में उनकी कविताओं ने जागृति पैदा की थी। किसी भी राष्ट्र के उत्थान के लिए

वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास आवश्यक है। भारती ने उत्पादन और समुचित उपभोग के संदर्भ में कई उन्नत एवं श्रेष्ठ विचारों को व्यक्त किया है। उनकी कविताओं में उत्पादों की आत्मनिर्भरता की कामना दिखाई देती है–

"शस्त्र बनाएंगे, अच्छे कागज बनाएंगे
कारखाना बसाएंगे, विद्यालय बनाएंगे
न लेटेंगे, न विश्राम करेंगे
सदा महान कर्मरत होंगे।"

इसके साथ-साथ मंत्र, वैज्ञानिक विधि सीखना, आकाश की माप लेना, समुद्री मत्स्यों की गणना करना, चंद्रमंडल का विज्ञान समझना, गली-नुक्कड़ की सफाई के तरीके पढ़ना आदि कई बातों की भविष्यवाणी उनकी कविताओं में मिलती हैं। अपने देश को भारती विज्ञान, तकनीकी निपुणता, कार्य-कुशलता आदि में श्रेष्ठ देखना चाहते थे।

डॉ. शेषन भारती की आजादी आंदोलन से संबंधित कविताओं को मुख्यतया चार प्रकार की मानते हैं।[6] भारत की तत्कालीन दुर्दशा का शोक चित्र, नवजागृति की प्रेरणा, स्वतंत्र भारत की परिकल्पना, पतन के कारण उत्पन्न आत्महीनता की भावना आदि के चित्रण उनकी कविताओं में मिलते हैं। विश्व भर के देशों में कवि को अपना देश ही श्रेष्ठ लगता है–

"सारे जग में न्यारा देश हमारा - भारत देश
ज्ञान और ध्यान में
स्वाभिमान में अन्न-दान में
अमृत से भरे गीतों में - काव्य सृजन में
सारे जग में न्यारा देश हमारा"[7] (भारत महान)

किसी भी देश के गौरव के चिह्न के रूप में उसके ध्वज को देखा जाता है। अंग्रेजों के कारण देश में जो उथल-पुथल का वातावरण व्याप्त था, उसके लिए गांधीजी ने सत्याग्रह का हथियार अपनाया था। "सत्याग्रह ने आरंभ में ही सरकार-विरोधी एक ऐसे आंदोलन का रूप लिया, जो सविनय होने पर भी सरकार से एक तरह का दावा करता था। सरकार ने एक अन्यायपूर्ण कानून बनाया। सत्याग्रही प्रायः स्वयं ही कानून को मानकर चलते हैं, लेकिन इस अन्यायपूर्ण कानून की जोरदार अवहेलना करने के अलावा उनके पास दूसरा उपाय न था।" भारती भारत माता के ध्वज की वंदना करते हुए लिखते हैं कि–

"खंभे के नीचे खड़े उन वीरों को देखें
उनकी पावन विस्तृत सेना फैली है सर्वत्र
वे वीर-पुरुष हैं विश्वास-पात्र
अपने प्राण भी तजकर ध्वज की रक्षा करेंगे"[8]

सुब्रह्मण्य भारती विश्व भर के देशों में भारत को महान मानते हैं और उसके यशोगान में इस तरह लिखते हैं–

"साहस में, सैन्य-शौर्य में
जन-मन की करुणा में, परोपकार में,
कई सार भरे शास्त्रों की खोज में
सारे जग में न्यारा देश हमारा - इस (सारे जग में)''[9]

संपूर्ण भारत और उसके देशवासियों को एक समुदाय के रूप में देखते हुए उसे अनुपम मानकर पुलकित हो जाते हैं।

''भारत समुदाय की जय हो - जय-जय-जय
तीस कोटि जनता का संगम
सार्वजनीन समानाधिकार
अनुपम समुदाय है, यह
विश्व मंच में अभिनव है यह-जय हो॥ (भारत समुदाय)"[10]

अपने प्रदेश तमिलनाडु की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति देते हुए भारती लिखते हैं कि–

"त्रिविध तमिल ज्ञाता अगस्त्य मुनि के पर्वत से
रक्षित है यह तमिलनाडु
विश्वभर के सभी धन को
अपने में समाहित करता तमिलनाडु।"[11]

भारती ने अपनी कविता 'एक बीघा जमीन' में पराशक्ति से निवेदन करते हैं कि उन्हें एक बीघा जमीन दी जाए। उसके बीच में सुंदर स्तंभों सहित प्रकाशमान कंगूरों से युक्त एक रमणीय महल हो–

"उधर कुएं के समीप ही बगिया के आसपास
हरे पत्ते एवं मीठे जलवाले दस-बारह नारियल के पेड़ हों''[12]

उस शांत वातावरण में वन प्रदेश में सुंदर रमणी सहित वे सुरम्य गीतों की रचना चाहते हैं और चाहते हैं कि उनकी काव्य-क्षमता से समस्त लोक का संरक्षण हो।

अपनी भाषा के प्रति भारती को अत्यधिक गर्व है। वे चाहते हैं कि हर तरफ का प्रचार-प्रसार हो। बहुभाषाविद् होने के नाते वे अधिकारपूर्वक कहते हैं कि उन्हें जिनती भी भाषाएं मालूम हैं, उनमें तमिल ही श्रेष्ठ है।[13]

भारत को विश्व मंच में सुस्थापित करने का उनका अटूट सपना रहा। भारती के पास अपना सुदृढ दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि सबकुछ विरासत के रूप में मौजूद हैं, जिससे समस्त विश्व को लाभ हो सकता है। भारतीय दर्शन का प्रभाव भारती की कविताओं में बखूबी देखने को मिलता है। 'कोयल गीत' में वे पूर्णरूपेण प्रकृति की हर एक सनसनाहट के साथ मिल जाना चाहते हैं। अपने मानवीय रूप को तजकर वे कोयल का रूप लेना चाहते हैं–

"यह मनुज रूप तज कोयल रूप क्यों न पाऊं
इस मादा कोयल से कभी भी बिछुड़ न पाऊं

क्यों न हमेशा मैं प्रेम कर पाऊं
हाय! इस नादाग्नि में मैं मर क्यों न जाऊं?''[14]

स्वतंत्रता सेनानियों के त्याग और बलिदान को याद करते हुए भारती ने कविताएं लिखी हैं, जिनमें व.ऊ. चिदंबरम् पिल्लै, महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय, तिलक व दादाभाई नौरोजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महात्मा गांधी का गुणगान करते हुए वे लिखते हैं कि–

''युग युग जिओ! हमारे पथप्रदर्शक
विश्वभर के देशों में सबसे दीन-दलित यह भारत-देश
पराधीन पथभ्रष्ट स्थिति में यह भारत का देश
इसके उद्धार-नव्यप्राण-संचार हेतु तुम आए, धन्य हो!"[15]

किसी भी देश के नागरिक के रूप में स्त्री की भागीदारी पुरुष से कम नहीं है। फिर भी युग युगों से नारी जाति को परंपरा, रूढि, संस्कार आदि कई नामों को लेकर दबाया गया है। सुब्रह्मण्य भारती निवेदिता बहन से परिचित होने के बाद देश की प्रगति में नारी-शक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका के बारे में जान गए। नारी शक्ति को उन्होंने अपनी कविता में मुक्त कंठ से आह्वान दिया था–

''शक्ति ने नर-नारी की सृष्टि करके
समानाधिकार दिया है
बीच में यह अवस्थिति आयी
क्षमता से उन्नत स्तर तक पहुंचे
परंपरागत अपकीर्ति का उन्मूलन करेंगे" (नारी-मुक्ति)

अपने 'पांचाली शपथम्' काव्य में भारती ने द्रौपदी को भारत माता के प्रतीक के रूप में माना था। भरी सभा में परपुरुषों द्वारा अपमानित होनेवाली पांचाली की स्थिति में भारती ने भारत माता को देखा था। 'पांचाली शपथम्' में कृष्ण से द्रौपदी की प्रार्थना में परोक्ष रूप से भारत माता का स्वर सुनाई देता है–

''हरि हरि हरि हरि पुकारने लगी
'कान्हा बचा लो मुझे मैं तेरी शरण में हूं!
उस दिन मगरमच्छ का वध कर
गजेंद्र पर तुमने कृपा बरसायी"[16]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि तमिल साहित्य के लिए ही नहीं, वरन् भारतीय साहित्य के लिए सुब्रह्मण्य भारती की कविताएं एक अमूल्य निधि हैं। सत्य के पथ पर अग्रसर होते हुए भारती ने जितने भी प्रश्न भारतवासियों के समक्ष उठाए थे, उन्हें देशवासियों तक पहुंचाना आज के समय के लिए भी बहुत अनिवार्य है। भारती जैसे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कवि के काव्य में एक तरफ अरविंद जैसा अध्यात्म झलकता है, तो दूसरी ओर पूर्णरूपेण क्रांतिकारी मुद्रा के साथ उनकी कविताएं सब के दिल को हिला देती हैं। आज के संदर्भ में भी भारती की कविताएं अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती हैं, क्योंकि उनकी राष्ट्रीय चेतना सार्वकालिकता से ओत-प्रोत है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. बालसुब्रह्मण्य, सिर्पी. (लेख : सि. सुब्रह्मण्य भारती). *पुदिय तमिल इलक्किय वरलारू.* भाग-3. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी. पृ. 208
2. भारती, सुब्रह्मण्य. (2018). (अनु. पद्मावती, डॉ. वी.). *कालजयी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती.* कुरिंजिप्पाडी : तिस एट्टुम प्रकाशन. पृ. 18
3. वही, पृ. 20
4. वही, पृ. 27
5. वही, पृ. 28
6. शेषन, डॉ. एम. (2009). *तमिल नवजागरण और सुब्रह्मण्य भारती,* चेन्नई : मणिक्कम एवं चिन्नम्माल एजुकेशनल और चेरिटेबल ट्रस्ट. पृ. 30
7. भारती, सुब्रह्मण्य. (2018). (अनु. पद्मावती, डॉ.वी.). *कालजयी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती.* कुरिंजिप्पाडी : तिसै एट्टुम प्रकाशन. पृ. 30
8. वही, पृ. 29
9. वही, पृ. 30
10. भारती, सुब्रह्मण्य. (2018). (अनु. पद्मावती, डॉ.वी.). *कालजयी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती.* कुरिंजिप्पाडी : तिसै एट्टुम प्रकाशन. पृ. 35
11. वही, पृ. 39
12. वही, पृ. 47
13. वही, पृ. 38
14. वही, पृ. 71
15. वही, पृ. 40
16. वही, पृ. 57

□

भारतीय अनुवाद संघ

ज्ञान प्रीति मैत्री

भारतीय अनुवाद संघ (Indian Translation Consortium) की स्थापना का प्रयोजन महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के अधिनियम 1996 (1997 के क्रमांक 3) के अनुच्छेद 4 में संकल्पित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय अभिकरण के रूप में कार्य करना है। यह अभिकरण विश्वविद्यालय के उद्देश्य से सहमति रखने वाले और अनुवाद-कर्म के प्रति समर्पित अनुवादकों के एक राष्ट्रीय क्रियाशील समूह के रूप में कार्य करेगा। इस अभिकरण की प्राथमिकता संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान के साहित्य एवं सर्जनात्मक साहित्य को अनूदित कर हिंदी समुदाय को उपलब्ध कराना है।

भारतीय अनुवाद संघ सहयोग पर आधारित एक राष्ट्रीय कार्य-समूह होगा, जिसमें देश और दुनिया भर के भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के अनुवादक, विशेषतः हिंदी में अनुवाद करने वाले अनुवादक शामिल हो सकते हैं। भारतीय अनुवाद संघ में 64 भाषाओं के 1100 से अधिक ख्यातिलब्ध अनुवादक जुड़ चुके हैं।

संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं अथा अंग्रेजी एवं अन्य विदेशी भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करने में रुचि रखने वाले अध्येता, शिक्षक, अनुवादकर्मी इस अभिकरण में पंजीकरण कराने के लिए सादर आमंत्रित हैं, अनुरोध है कि स्वयं भी पंजीकरण कराएं और अन्य समानधर्मा मित्रों को प्रेरित करें।

पंजीकरण करने के लिए नीचे दिये गए 'लिंक' पर जाकर हिंदी अथवा अंग्रेजी में पंजीकरण-प्रपत्र को भरकर 'सबमिट' करें -

हिंदी के लिए लिंक : https://forms.gle/Am9GedTLLKF4Xeow7
अंग्रेजी के लिए लिंक : https://forms.gle/Kc8gZ3MFC1fAzBmA

किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी अभिकरण की ई-मेल : itc.mgahv@gmail.com पर मेल कर प्राप्त कर सकते हैं।

www.hindivishwa.org

भारती के काव्य में कृष्ण

एम. गोविंदराजन

''आडुवोमे पळ्ळु पाडुवोमे
आनंद सुतंदिरम् अडैंदु विट्टोम् ऐन्रू''

अर्थात् आओ, नाचें, गाएं, आनंददायक आजादी पा गए हम। यों कहकर स्वतंत्रता के कई दशक पहले ही कवि भारती ने भविष्यवाणी की थी। कवि भारती केवल स्रष्टा ही नहीं, बल्कि भविष्य के द्रष्टा भी थे।

कवि भारती की कविताओं में एक वीर का उत्साह था, जोश था। अपमान के विरुद्ध आक्रोश था, असीम साहस था। प्रेमी-प्रेमिका का कोमल भाव था, समर्पण का उत्सर्ग था, निष्कलंक शिशु की हंसी व खुशी थी, धरती व आकाश, सागर व वायु को नापने का शब्द-चमत्कार था। इसीलिए प्रसिद्ध तमिल साहित्यकार एवं स्वतंत्रता सेनानी परलि सु. नेल्लैयप्पर ने कवि भारती को 'तमिलनाडु का रवींद्रनाथ ठाकुर' कहा है।

भारती की अंतरात्मा को समझने का सामर्थ्य यदि किसी में हो तो वह वर्षा के संगीत में, वायु के नृत्य में, बादलों के संघर्ष में, विद्युत की चमक में, चंद्रमा की हंसी में, आग की गर्मी में, जल की ठंडाई में, पेड़ों की हरियाली में, सुमनों के सौंदर्य में, कच्चे फल की खटाई में, कोयल की कूक में, कौए के कालेपन में, खेत की महिला-श्रमिकों के आंसू में, कृषक के पसीने में और उनके हल चलाते उत्साह में, गरीब की वेदना में, प्रेम के लालित्य में भारती के कवि-हृदय को प्रतिबिंबित पाकर अवश्य विस्मित हो जाएगा।

पके फलों की मिठास, रोग की अशक्तता, व्रत की जीवन-देयता, दिशाओं का दर्शन बोध, कीचड़ की गंदगी, दीनों की रक्षा, दलितोद्धार, नारी उत्थान, आध्यात्मिक चिंतन, राष्ट्रीयता व भारतीय संस्कृति का अटल विश्वास, वेदांत से लेकर अनुवाद तक ऐसा कोई विषय उनकी लेखनी से अछूता नहीं रहा। निर्जीव देह में जीवंतता लाने की प्रतिभायुक्त महाकवि सुब्रह्मण्य भारती तमिल भाषा व तमिलनाडु का गौरव बनकर राष्ट्रकवि के रूप में उभरे थे।

भारती ने तिरुनेलवेली के 'इंदु कलासालै' में अपनी स्कूली जीवन पूरा किया। ग्यारह वर्ष की उम्र में ही सन् 1893 में ऐट्टय्यपुरम् के दरबारी कवियों द्वारा कवि को 'भारती' की उपाधि से नवाजा गया।

काशी से लौटने उपरांत उन्होंने ऐट्टय्यपुरम् जमींदार के यहां एक साल तक नौकरी की। फिर उन्होंने नौकरी छोड़कर मदुरै जाकर 'मदुरै सेतुपति स्कूल' में तमिल शिक्षक के पद पर तीन महीने

तक सेवा की। फिर वह नौकरी छोड़कर 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका के सह-संपादक का पद संभालने लगे।

सन् 1905 में विवेकानंद की शिष्या भगिनी निवेदिता को अपना ज्ञान गुरु स्वीकार किया। सन् 1906 में 'इंडिया' साप्ताहिक पत्रिका को आरंभ किया। सन् 1908 में कवि के स्वदेशी-गीतों का प्रथम संकलन प्रकाशित हुआ। कवि की राष्ट्रभक्ति रचनाओं के कारण लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ते देखकर ब्रिटिश सरकार ने कवि को कैद करना चाहा। तब अंग्रेजों से बचकर कवि पांडिचेरी में जाकर रहने लगा। पांडिचेरी उस समय फ्रांसीसियों के अधिकार में था।

पांडिचेरी में रहते हुए कवि ने 'कण्णन पाट्टु', 'कुयिल पाट्टु', 'पांचाली शपथम्' आदि तीन उत्कृष्ट काव्यों की रचना की। इन्हीं में से 'कण्णन् पाट्ड' (कृष्ण-गीत) पर 'भारती और कृष्ण' की चर्चा हम आगे करेंगे।

कुछ समय बाद जब भारती पांडिचेरी से मद्रास (चेन्नई) जा रहे थे, तब अंग्रेजों ने उनको 20 नवंबर, 1918 को बंदी बनाकर 34 दिनों के लिए जेल में रखा। 12 सितंबर, 1921 को सुबह 1.30 बजे कवि का स्वर्गवास हुआ।

कवि भारती अपने 'वेदांत गीत' में कहते हैं–

''काग-पंख में है नंदलाल-तेरा
कालापन दिखता है, हे नंदलाल,
दर्शित-वृक्षों में, हे नंदलाल-तेरी
हरियाली दिखती है, हे नंदलाला;
श्रुत ध्वनि सब हे, नंदलाल-तेरा
गीत सुनाती, हे नंदलाल;
अनल में तुंगुली रखे तो नंदलाल-तेरा
मधुर स्पर्श प्राप्त है, हे नंदलाल।''

पूर्णरूपेण रहस्यवादी बनकर उपस्थित होने वाला कवि भारती कण्णन पाट्टु (कान्हा के गीत) के द्वारा अपने को कृष्ण भक्त कवि प्रमाणित करते हैं। मगर प्राचीन परंपरा का अनुसरण करते हुए भी कवि भारती उससे हटकर एक क्रांतिकारी मार्ग को अपनाकर अपनी कृष्ण-भक्ति का एक नया रूप प्रकट करते हैं।

भारती के कृष्ण-गीत का सर्वप्रथम प्रकाशन कवि के शिष्य परलि सु. नेल्लैयप्पर् ने 1917 में किया। उन्होंने अपनी भूमिका में लिखा है–''भारती की कविताओं की विशेषता के बारे में यदि मैं कुछ कहना चाहूं तो लेख बहुत बढ़ जाएगा। एक ही शब्द में कहता हूं–मैं अभी इस दृश्य को देखता हूं कि कई सदियों के बाद भी उनकी कविताओं को तमिलनाडु के स्त्री-पुरुष बड़े उत्साह से पढ़कर खुशी का अनुभव करते हुए दिखते हैं।''

सन् 1919 में प्रकाशित भारती के कृष्ण-गीत के द्वितीय संस्करण में व.वे.सु. अय्यर ने अपनी भूमिका में लिखा है–''हम कृष्ण को वृंदावन के वंशी-कृष्ण के रूप में और महाभारत-युद्ध में गीतोपदेश करते हुए देखते हैं, पर भारती कुरुक्षेत्र के कृष्ण से ही सर्वप्रथम प्रभावित हुआ।''

विवेकानंद ने भी कहा था–''देश के लिए कुरुक्षेत्र में शंख ध्वनि करता हुआ कृष्ण ही चाहिए; न कि वंशी-कृष्ण।''

व.वे.सु. अय्यर ने इस ओर भी संकेत करते हुए कहा है–''काव्य सौंदर्य का अनुभव मात्र करके इस काव्य की गेयता को भूल न जाना चाहिए। ध्यान इस बात पर भी दें कि ये कविताएं गेय हैं और राग, ताल सहित गाने योग्य हैं।''

भारती के जीवन काल में उन्हें उतना प्रोत्साहन नहीं मिला, जितना मिलना चाहिए। उसके बारे में सेक्किळार् पदरज डॉ.टी.एन. रामचंद्रन अपनी 'वळ्ि-वळ्ि भारती' नामक पुस्तक में लिखते हैं–''पोप अय्यर रचित 'व्याकरण संक्षेप' उनके जीवन काल में ही लाखों की संख्या में बिकीं, पर भारती की कविताएं कुछ सैकड़ों की संख्या में भी नहीं बिकीं। आज पाई जाने वाली जागृति और क्रांति का मूल कारण भारती ही हैं, पर उनके जीवनकाल में उनका मान करनेवाले बहुत कम थे।''

प्राचीनकाल के माणिक्क वाचकर् जैसे शैव भक्त नायन्मार् हो या आंडाळ् जैसे वैष्णव भक्त आळ्वार हो या अन्य कोई संत कवि हो सब भगवान को नायक और अपने को नायिका मानकर पद्य रचना करते थे यानी परमात्मा एक है। जीवात्मा अनेक हैं। उस एक परमात्मा रूपी पुरुष को पाने के लिए सारे जीवात्मा रूपी स्त्रियों द्वारा नायक-नायिका के भाव से काव्य रचना की जाती थी। पर भारती ने प्राचीन परंपरा को मानते हुए भी उससे हटकर एक नए क्रांतिकारी मार्ग को अपनाया। कवि के इस क्रांतिकारी भावना के आधार पर उसके 'कण्णन पाट्टु' पर यानी 'भारती के कृष्ण-गीत' पर हम यहां संक्षेप में विचार करेंगे।

सामान्यतः भक्त भगवान को माता के रूप में, पिता के रूप में, पति या नायक-नायिका के रूप में उपासना करते पाया जाता है। इसी की परंपरा प्राचीन भक्ति साहित्य में भी हमें देखने को मिलती है। मगर भारती एक कदम आगे बढ़ जाते हैं। हां, कवि भारती अपने कृष्ण को प्रेमी के रूप में और प्रेमिका के रूप में ही नहीं, बल्कि सखा के रूप में, माता के रूप में, पिता के रूप में, राजा के रूप में, सेवक के रूप में, गुरु के रूप में, शिष्य के रूप में, मालिक के रूप में, नेता के रूप में, बचकाने स्वभाव के छोटे बालक के रूप में भी देखते हैं।

भारती के कृष्ण भक्ति-गीतों के संबंध में प्रसिद्ध विद्वान व.वे.सु. अय्यर का कथन है–

''हमारे भक्ति शास्त्र के अनुसार इष्ट देव की वंदना अनेक भावों में की जा सकती है। हमारे कविगण भी इसका अनुसरण करते हुए माता, पिता, गुरु, नायिका, मालिक और सखा के रूप में कृष्ण की स्तुति की है। इनमें नायक-नायिका भाव के संबंध में कुछ कहे बिना रहा नहीं जा सकता। इस भाव से भगवान की स्तुति करने की प्रणाली प्राचीन काल से भक्तों व कवियों में पायी जाती है। मगर इस भाव का प्रयोग करना तलवार की धार पर चलने का क्लिष्ट काम है। इसकी एक मर्यादा होती है। इसके उस तरफ इस तरफ थोड़ा-सा सरक गए, तो बस विरस हो जाएगा। मेरा नम्र अभिप्राय यह है कि 'श्रीमद्भागवत्' में भी गोपिका उपाख्यानों में भगवान शुकदेव जी ने इस मर्यादा का उल्लंघन कर दिया है।

हमारे कवि ने भी इस भाव का वर्णन करते समय भक्ति से बढ़कर दैहिक प्रेम का अधिक वर्णन किया है, पर जब शुकदेव ब्रह्म ही उस तराजू के पलड़ों को समावस्था में नहीं कर सके, तब हमारे कवि यह नहीं कर सके, तो उस पर क्यों दोष दें?

इन कीर्तनों को परभक्ति के लिए आवश्यक साहित्य मानना जरूरी नहीं है। हमें यही समझना चाहिए कि कवि हमारे सामने यहां एक कवि के रूप में ही आता है। इन कीर्तनों को,

कविता की दृष्टि से देखने पर, इनमें बहुत सारे कीर्तन मधु से भी बढ़कर अति मधुर होते हैं, जो भाव, राग, ताल व लय युक्त हैं।''

व.वे.सु. अय्यर की इस आलोचना को पढ़कर मेरे मन में यह जिज्ञासा हुई कि वे पंक्तियां कौन-सी हैं, जिनके कारण कवि भारती के संबंध में अय्यर के मुंह से ऐसे शब्द निकले?

'कण्णम्मा ऐन् कादलि' (कृष्ण मेरी प्रेयसी) वाली कविता में 'मुहत् तिरै कळैदल्' (मुख का पर्दा हटाना) वाली बात को लेकर जहां व.वे.सु. अय्यर ने उपर्युक्त अपना विचार प्रस्तुत किया है, वहां सिलंबुच् चेल्वर् म.पो.शि. ने उसे दूसरे दृष्टिकोण से देखा और अपना विचार इस तरह व्यक्त किया है—''इन कविताओं में तमिल साहित्य के 'अहम्' तिणै के नियमों का पालन हुआ है और 'अहम्' तिणै क्षेत्र के साथ-साथ 'मुहत्तिरै कळैदल्' (चेहरे का पर्दा हटाना) नामक एक नया क्षेत्र अपनाकर कवि ने अपनी नवीनता प्रस्तुत की है।''

कवि की पंक्तियां देखें–

''दिल्ली मुसलमानों का था यह काम - स्त्रियां
पर्दे से चेहरा ढकने का नाम
कौन शास्त्र कहता - लता सी कटि के ऊपर
उभरे उरोजों को ढके ही रखना,
लता सी कटि व उरोज द्वयों को
ढकने से सौंदर्य छिपता नहीं,
सिखाई न जाती मन्मथ कला - मुख
ज्योति छिपाके न होती प्रेम कला''

कौन-सा शास्त्र कहता है कि लता सी कटि के ऊपर उभरे उरोजों को (प्रेम करते समय) ढककर रखो? बेली सी कटि व दोनों उरोजों को वस्त्र से ढककर रखने से भी वह सौंदर्य तो छिपता नहीं, वस्त्र समेत उसका रूप सौंदर्य प्रकट होता ही है।

कवि की अन्य कुछ पंक्तियां देखिए–

''श्रेष्ट आर्य नीतियां कहते - क्या
पर्दे में थीं प्राचीन आर्य महिलाएं?
एक-दो बार दिखा चुकने पर - अब
पुनः दिखाने में लज्जा क्यों,
रोकने वाला कौन है यहां मुझे - बलपूर्वक
मुख का पर्दा यदि हटा दूं तो?
काम न बनता बहाने से - फल
पाकर भी न निकालूं छिलका?''

''पहले एक-दो बार देख तो चुका हूं, अब कुछ करना तो नहीं, केवल देखना है। अब दिखाने में लज्जा क्यों? बलपूर्वक मुख का पर्दा हटा दूं तो यहां मुझे रोकनेवाला कौन है? जब फल मेरे हाथ में है तो उसका छिलका क्यों नहीं निकालूं?''

कवि की अन्य कुछ पंक्तियों पर गौर करें–

'कण्णम्मा ऐनू कादलि' (कृष्ण मेरी प्रेयसी) वाली कविता का एक शीर्षक है–'कुऱिप्पिडम् तवऱियदु', अर्थात् 'संकेत स्थल नहीं आयी'।

पंक्तियां इस प्रकार हैं–

''बिछड़े बिना मिलकर - इक निशा भर
प्रेम क्रीड़ाएं करते-करते - तेरी देह से
कोटि-कोटि बार
प्रेमालिंगन करके - मन - क्लेश भगाकर
बृहदानंद पाकर
गाते, सुध खोते रहने का तप
किया नहीं री!''

कवि की उपर्युक्त पंक्तियों को लेकर ही व.वे.सु. अय्यर ने आलोचना की होगी। इसीलिए उन्होंने कहा कि भारती के कृष्ण-गीत में दैहिक प्रेम का पलड़ा भारी है। मेरा विचार है कि शृंगार रस की बात अलग है और भक्ति रस की बात अलग। कवि जहां प्रेम या शृंगार की बात करता है, वहीं वह पवित्र हृदय का प्रेम लेकर उभरता है और भक्ति की या आध्यात्मिक बात जहां करता है, वहां वह पावन आध्यात्मिक चिंतन में डूबा हुआ निर्मल रहस्यवादी बनकर उभरता है।

कवि भारती कृष्ण के प्रति अपनी अनुभूति को 23 शीर्षकों में अभिव्यक्त करता है। वे हैं–

1. 'कण्णन ऐनू तोळनू' - कृष्ण मेरा सखा - (पद्य सं. 10, पंक्तियां 80)
2. 'कण्णन ऐनू तायू' - कृष्ण मेरी माता - (पद्य सं. 10, पंक्तियां 80)
3. 'कण्णन ऐनू तदै' - कृष्ण मेरे तात - (पद्य सं. 10, पंक्तियां 80)
4. 'कण्णन ऐनू सेवहनू' - कृष्ण मेरा सेवक - (पंक्तियां 64)
5. 'कण्णन ऐनू अरसनू' - कृष्ण मेरा राजा - (पद्य सं. 14, पंक्तियां 56)
6. 'कण्णन ऐनू सीडनू' - कृष्ण मेरा शिष्य - (पंक्तियां 150)
7. 'कण्णन ऐनू सऩ्गुरु' - कृष्ण मेरे सद्गुरु - (पद्य सं. 12, पंक्तियां 96)
8. 'कण्णम्मा ऐनू कुऴ़ैदै' - कृष्ण मेरी पुत्री - (पद्य सं. 10, पंक्तियां 40)
9. 'कण्णन ऐनू विळैयाट्टुप् पिळ्ळै' -कृष्ण मेरा बचकाना बच्चा - (पद्य सं. 9, पंक्तियां 38)
10. 'कण्णन ऐनू कादलनू' - कृष्ण मेरा प्रेमी - 1 (पद्य सं. 7, पंक्तियां 56)
11. 'कण्णन ऐनू कादलनू' - कृष्ण मेरा प्रेमी - 2 (पद्य सं. 5, पंक्तियां 40)
12. 'कण्णन ऐनू कादलनू' - कृष्ण मेरा प्रेमी - 3 (पद्य सं.1 2, पंक्तियां 50)
13. 'कण्णन ऐनू कादलनू' - कृष्ण मेरा प्रेमी (शृंगार, रौद्र) - 4 (पद्य सं. 8, पंक्तियां 32)
14. 'कण्णन ऐनू कादलनू' - कृष्ण मेरा प्रेमी (शृंगार, रौद्र) - 5 (पद्य सं. 6, पंक्तियां 24)
15. 'कण्णन ऐनू कान्तनू' - कृष्ण मेरा नायक (पद्य सं. 3, पंक्तियां 24)
16. 'कण्णम्मा ऐनू कादलि' - कृष्ण मेरी प्रेमिका (शृंगार) - 1 (पद्य सं. 3, पंक्तियां 24)
17. 'कण्णम्मा ऐनू कादलि' - कृष्ण मेरी प्रेमिका (शृंगार) - 2 (पद्य सं. 4, पंक्तियां 32)
18. 'कण्णम्मा ऐनू कादलि' - कृष्ण मेरी प्रेमिका (शृंगार) - 3 (पद्य सं. 2, पंक्तियां 16)

19. 'कण्णम्मा ऐनू कादलि' - कृष्ण मेरी प्रेमिका (शृंगार) - 4 (पद्य सं. 5, पंक्तियां 40)

20. 'कण्णम्मा ऐनू कादलि' - कृष्ण मेरी प्रेमिका (शृंगार) - 5 (पद्य सं. 4, पंक्तियां 32)

21. 'कण्णम्मा ऐनू कादलि' - कृष्ण मेरी प्रेमिका - 6 (पद्य सं. 8, पंक्तियां 32)

22. 'कण्णनू ऐनू आण्डानू' - कृष्ण मेरा मालिक - (पद्य सं. 10, पंक्तियां 40)

23. 'कण्णम्मा ऐनू कुलदैवम्' - कृष्ण मेरी कुलदेवता - (पंक्तियां 12)

'कण्णम्मा ऐनू कुऴदै' - (कृष्ण मेरी पुत्री) वाली कविता में पराशक्ति बच्ची के रूप में वर्णित है। मगर कण्णम्मा ऐनू कादलि वाली कविताओं में यह भ्रम पैदा हो जाता है कि कवि यहां प्रेमिका के रूप में पराशक्ति को देखता है या कृष्ण को? निस्संदेह हम कृष्ण को ही मानकर चलते हैं।

'कण्णम्मा ऐनू कादलि' (कृष्ण मेरी प्रेयसी) के संबंध में कवि त्रिलोक सीताराम अपनी पुस्तक 'नव युग कवि' में कहते हैं–''यह कल्पना तमिल साहित्य के 'अहम्' (प्रेम) क्षेत्र के दृश्यों में और भक्ति साहित्य के संस्कार में 'अमिट महान कविता' है।...कण्णम्मा ऐनू कादलि (कृष्ण मेरी प्रेयसी) कहना भारती की पर-भक्ति अनुभूति की प्रौढ़ता माननी चाहिए।''

कृष्ण गीत के उपर्युक्त 23 शीर्षकों की कविताओं में कुल 1058 पंक्तियां हैं। कवि भारती के कृष्ण को पूर्ण रूप से समझने के लिए सारी कविताओं का गंभीर अध्ययन करना होगा। वह बड़ा विशाल व व्यापक कार्य हो जाएगा। अतः यहां संक्षेप में कुछ शीर्षकों की कुछ पंक्तियों पर मात्र विचार करेंगे–

'कण्णनू ऐनू तोऴनू' (कृष्ण मेरा सखा) : कवि भारती अपने सखा कृष्ण के स्वभाव का वर्णन यों करते हैं–

अर्जुन का सारथी बनकर गीतोपदेश करनेवाला एवं उसे जीवनमार्ग दर्शानेवाला वह कृष्ण, हमारे रोग से पीड़ित होने पर सही दवा बताएगा, चिंताओं से पीड़ित होने पर हृदय को शांति प्रदान करेगा, जरूरत के समय बुलाने पर आधे पल में दौड़ आएगा, वर्षा के समय छतरी की तरह, भूख के समय भोजन की तरह, हमारे जीवन के लिए हमारा नयन है। वह हमारी मांगी हुई चीज तुरंत देगा, मजाक करने पर उसे सह लेगा, हमारे दुःखी रहने पर नाच-गान कर हमारा दुःख दूर करेगा और हमारे मन का संकेत समझकर काम करेगा।

यदि हमारे मन में घमंड आ जाए तो वह वचन और कर्म से हम पर जोर का प्रहार करेगा। यदि हम में कपट या वंचकता पाए तो हम पर थूकेगा। शिशु की तरह हंसते-खेलते हर्षित रहेगा। उसके कथन के खिलाफ काम करने पर बस उसका उपद्रव असीम हो जाएगा। यदि उसकी दोस्ती न रही तो जगत् में हम जिएं कैसे? सत्य के विरुद्ध कर्म करनेवाले को कभी क्षमा नहीं करेगा। मगर दूसरों की भलाई के लिए वह झूठ बोलता रहेगा। दुर्जनों के लिए विष एवं अग्नि की तरह वह क्रूर है, पर सज्जनों के लिए रक्षक है। वेद एवं तप में श्रेष्ठ मुनियों के अंदर निवास करनेवाला परब्रह्म है। इस तरह कवि भारती अपने सखा कृष्ण के स्वभाव का वर्णन और जगह भी करता है।

'कृष्ण मेरा सखा' में कवि की सख्य भाव भक्ति प्रकट होती है। सुदामा के प्रति सच्ची मित्रता निभानेवाले कृष्ण को सामने खड़ा करके सच्चे मित्र के लक्षण समझाता है। कवि ने अस्सी पंक्तियों में कृष्ण के प्रति अपने सख्य भाव का सुंदर वर्णन किया है। उन्हीं में से केवल आठ पंक्तियों का सौंदर्य यहां देखेंगे–

''यदि मैं कुपित रहूं तो कृष्ण हास्य की बात कहकर मेरा क्रोध हंसी में बदलकर मुझे हंसाएगा। यदि मैं दुःखी रहा तो वह कुछ ऐसा करेगा, जिससे मैं अपना दुःख भूलकर खुश हो जाऊं। बड़ी आपत्ति के समय साथ रहकर वह आपत्ति दूर कर, रक्षा करेगा। दीये की ज्वाला पर आ पड़ने वाले पतंगों की तरह लगातार आने वाली बुराइयों व कठिनाइयों को नष्ट करेगा। कवि समझाता है कि यदि हम कृष्ण के प्रति सच्ची भक्ति करें तो कृष्ण की कृपा हम पर सदा बरसेगी।''

'कण्णन् ऐन् ताय्' (कृष्ण मेरी माता) : कण्णन् ऐन् ताय् यानी कृष्ण मेरी मां वाली कविता में कवि दस पद्यों में मां कृष्ण के गुणों की स्तुति करता है। प्रथम पद्य में कवि कहते हैं–

''कृष्ण मेरी मां बनकर आये। मां ने अपने शिशु रूपी मुझे आसमान रूपी हाथों से उठाकर धरती रूपी गोद में बिठाकर लोरियां सुनाती, जीवन रूपी कुच से श्रेष्ठ संस्कार रूपी दूध भरपेट पिलाया, 'कृष्ण' नाम वाली मेरी मां मनमोहक कहानियां सुनाकर मुझे आनंद देया।'' यहां आसमान को अपनी मां का हाथ और धरती को मां की गोद मानकर कवि कृष्ण के विराट विश्वरूप का दर्शन करता है।

वह कहते हैं–शिशु रूपी मुझ को कैसे-कैसे खेल दिखाती! चांद, सूरज, पर्वत समूह, जीवनदायी नदियां रूपी कई खिलौने दिये, सागर रूपी बड़ा खिलौना और उससे प्राप्त ओंकार नाद रूपी संगीत आदि के साथ अनेक प्रकार के खिलौनों से मुझे आनंद दिया। उसने अनेक उद्यान व वन बनाए, उनमें सुंदर पेड़, उनपर सुंदर फूल एवं मधुर फल आदि दिये। गगन में उड़ते खग, धरती पर के जीव-जंतु, समुद्र की मछलियां जैसे अनेक सखा मेरे लिए हैं।

जहां देखो वहां असीम सुख की वस्तुएं मेरे लिए बना दी हैं। कोटि-कोटि शास्त्र बनाए और उसे समझने का ज्ञान दिया है, कहने वाला कवि अंतिम पद्य में मां कृष्ण के विशेष गुणों का वर्णन यों करता है–''मेरी मां कृष्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी, जो मैं चाहूं, उसे मेरे चाहने से पहले ही दे देगी। आश्रय देकर रक्षा करेगी, बड़े भाई अर्जुन की तरह मुझे सक्षम बनाएगी। मैं उस माता की कृपा की स्तुति करता रहूंगा। मेरी वह मां यशस्वी जीवन और अनुपम श्रेय देती रहेगी।'' इस तरह कवि भारती कई प्रकार से माता कृष्ण की महिमा का गुण गाते हैं।

'कण्णन ऐन् तंदै' (कृष्ण मेरे तात) : कवि अपने तात कृष्ण के गुण का वर्णन दस पद्यों में करते हैं। हम यहां दो पद्यों का उदाहरण देखेंगे। कवि कहता है–''दीनों का साथ देगा और धन के घमंडियों के घमंड पर वार करेगा। दुःख के समय जो उन दुःखों से न डरकर अनवरत सामना करता रहता है, ऐसे साहसियों को अपार संपत्ति देगा। घड़ी-घड़ी में स्वभाव उसका बदल जाएगा। एक दिन जैसा रहा, वैसा दूसरे दिन नहीं रहेगा। सुनसान जगह में जा बैठेगा और संगीत व कथाओं में समय बिताएगा।'' इस पद्य में कवि संक्षेप में कृष्ण की दयालुता, अन्याय के प्रति उसका आक्रोश, स्वभाव में उसकी चंचलता, कलाओं में उसकी रसिकप्रियता आदि गुणों को प्रकट करता है।

कवि का कहना है–''मुझे इस धरती पर भेजने वाला मेरा तात कृष्ण है। इस प्रपंच के सारे ग्रह मेरे भाई हैं। मेरा तात बड़ा धनी है। विद्या में श्रेष्ठ है। वह असीम मधुर कविताओं का रचयिता है। उसका रंग श्याम है, पर वह गोरी नारियों के संग रहेगा। वह अनवरत अथक प्रयास करनेवालों पर सारी संपत्ति लुटा देगा। समय-समय पर उसकी बुद्धि बदल जाएगी। कभी सुनसान

जगह की खोज में भाग जाएगा। कहानी व गीत सुनने में समय बिताएगा। वह सुख-दुःख का भेद न देखता। वह सबका प्यारा है। जीवों के विवेकी होने में सहायक बनेगा। उसने वेद रूपी माला बनाई। उसने सद्विचार से चतुर्वर्ण का निर्माण किया, पर मूर्ख मानव ने उसका महत्त्व न समझकर उसको नष्ट कर दिया। शील और कर्म से ही मानव श्रेष्ठ होता है। ऊंच-नीच का भेद करनेवाले शास्त्रों को आग में जला दें तो सब का भला होगा।

कवि पद्य संख्या नौ में अपने तात के गुण का वर्णन यों करता है–''वय के बढ़ने पर भी युवा की क्रांति उसमें सदैव बनी रहती है। उसे न कोई दुःख है और न जरा है। उसे न थकान है और न कोई रोग। उसे न भय है और न पक्षपात। वह तटस्थ रहकर सब का कल्याण करता है। किसी के पक्ष में रहकर किसी दूसरे को दुःखी न करता। नियति के अनुसार जो कुछ होता है, उसका रस लेता हुआ आनंद का अनुभव करेगा।''

दुखियों को आश्रय देकर प्यार करेगा। वह सबको सिखाता है कि सबको प्यार करो, तेरा सारा दुःख दूर हो जाएगा।

सामान्यतः परमात्मा को नायक-नायिका, माता-पिता, गुरु आदि रूपों में देखना स्वाभाविक है। पर उस ब्रह्म को अपने सेवक के रूप में देखना कवि भारती की नई कल्पना है। इसलिए कवि को क्रांतिकारी माना जाता है।

'कण्णन ऐनू से वहनू' (कृष्ण मेरा सेवक) : 'कृष्ण मेरा सेवक' वाली कविता में कवि आरंभ में नौकरों के दुर्गुणों की सूची बनाकर हास्य रूप देता है। कवि कहता है ''ये नौकर लोग मजदूरी ज्यादा मांगते हैं, हम जितना भी दें वे तो संतुष्ट न होते। घर में जब काम ज्यादा हो, तब काम पर नहीं आते। 'कल काम पर क्यों नहीं आए' पूछने पर एक दिन बोलेंगे कि मटके के अंदर से बिच्छू ने डंक मार दिया; दूसरी बार बोलेंगे कि पत्नी पर भूत सवार हो गया; तीसरी बार बोलेंगे कि दादी की मृत्यु का बारहवां दिन था। इस तरह झूठ बोलते हैं। हम एक काम करने को कहें तो वे दूसरा काम कर बैठते हैं। हमारे घर का सारा भेद सगे-संबंधियों से कहते फिरते हैं। घर में तिल खत्म हो गया तो सारी बिरादरी में ढ़िढोरा पीटते हैं। नौकरों के कारण इस तरह बहुत तंग आ गया हूं; यदि नौकर नहीं रहा तो उससे और भी तंग हो जाता हूं।

इस तरह नौकरों से प्राप्त उपद्रवों का कवि वर्णन करते हुए कहता है कि ऐसी कठिन परिस्थिति के समय कृष्ण मेरा नौकर बनकर आया। अब कृष्ण नौकर बनकर कवि की सेवा किस तरह करता है, इसका विवरण नीचे कवि के मुंह से सुनें–

कृष्ण-गीत में कवि सरल शब्दों का प्रयोग करता है। पर हर शब्द का बहुत गंभीर अर्थ निकलता है। कृष्ण को कवि केवल उपासना की वस्तु न मानकर जीवानाधार का उपयोगी वस्तु मानता है। वह कहता है कि कृष्ण वर्षा के लिए छतरी है, भूख के लिए भोजन है और हमारे जीवनाधार हैं। इसी तरह वैष्णव भक्त नम्माळ्वार ने भी हमारा कृष्ण हमारे लिए 'भोजन, जल और पान' माना है।

शंख चक्रधारी विष्णु के अवतारी बने कृष्ण के हाथ में झाड़ू देकर सेवक के रूप में देखना भारती की नई क्रांतिकारी भावना है।

कवि कहता है–''एक दिन कृष्ण मेरे पास आया। उसने कहा कि मैं यादव कुल का हूं, गाय-बैल चराऊंगा, बच्चों की देख-भाल करूंगा। घर की सफाई करूंगा, घर में ही दिया जलाऊंगा,

आप के आदेशानुसार आपका सारा काम पूरा करूंगा। कपड़ों को धोकर, सुखाकर सुरक्षित रखूंगा। नाच-गान करके घर के छोटे बच्चों को खुश रखूंगा और उनकी रक्षा करूंगा। आप जब-जब गांव से बाहर जाते, तब दिन हो या रात या जंगली राह, मैं आपका साथ देकर आपकी रक्षा करूंगा। मैं अशिक्षित हूं, जंगली प्रदेश का आदमी हूं, पर मैं 'लट्ठ' चलाना और द्वंद्व युद्ध जानता हूं। कपट नहीं जानता हूं। यों कहता हुआ खड़ा था।'' कृष्ण की बातों से खुश होकर कवि ने पूछा–''ठीक है, तेरा नाम क्या है?''

''स्वामी! गांववाले मुझे कन्हैया कहेंगे।''

मैंने उसे देखा कि वह हट्टा-कट्टा था, गुण अच्छा था और मीठबोला था। उसे मेरे अनुकूल समझकर पूछा कि, ''बोलो, मजदूरी कितना चाहते हो?''

उसने कहा–''स्वामी! मैं शादीशुदा नहीं हूं, मेरा कोई बाल-बच्चा भी नहीं, आपसे पैसा ज्यादा नहीं चाहता, बस, आपका आश्रय मिले तो वही मेरे लिए बड़ी बात है।'' उसकी बात सुनकर मैंने उसे अपना सेवक रख लिया।

कवि कहता है–''कृष्ण सेवक बनकर घर के बाहर गली साफ करता है; घर की सफाई करता है; गलती करने वाली नौकरानियों को डांटकर नियंत्रण करता है; वह बच्चों का शिक्षक, दाई मां, वैद्य बनकर स्नेह दिखाता है। आवश्यक चीजों को एकत्रित करके रखता है। दूध, छाछ जो भी लाना हो, खरीद लाता है। इतना ही नहीं, घर की स्त्रियों को मां के समान स्नेह दिखाकर उनकी देखभाल करता है। वह दिखने में सेवक है, मगर वास्तव में एक सच्चा मित्र है, अच्छा मंत्री है, आदर्श शिक्षक है, गुण में ईश्वर है। वह कहीं से आया और ''बोला कि मैं यादव जाति का हूं''। ऐसे उत्तम सेवक को पाने के लिए मैंने बड़ा पुण्य किया है। अब कवि के शब्दों का रस लीजिए–

यह तो जानते ही हैं कि भगवान 'राम' भी अपने 'नाम' का सेवक होता है। जहां राम का 'नाम' लिया जाता है, वहां उस नाम के पीछे-पीछे स्वयं राम को दौड़ना पड़ता है। इसी भाव को कवि भारती अपनी पंक्तियों में व्यक्त करके समझाते हैं कि यदि हम मन लगाकर परमात्मा से भक्ति करें, तो वह सेवक बनकर हमारी हर दशा पर मदद व रक्षा करेगा।

'कण्णन ऐनू सीडनू' (कृष्ण मेरा शिष्य) : कवि भारती कहते हैं–''मायावी कृष्ण मेरे अंदर भी है, मेरे बाहर भी है। वह मूल में एक है। सर्वत्र व्याप्त प्रपंच में वह कोटि-कोटि जीव हैं। वह चोर अपने को कभी मुझसे कम बुद्धिवाले दिखाता हुआ, कभी मेरा उपदेश सुनने का बहाना करता हुआ या मेरी कविताओं को श्रेष्ठ कहता हुआ मेरा शिष्य बनकर आया। काश! उसके कपट-जाल में फंसकर मैंने बहुत उपद्रव झेला!

मैं अपने ही मन पर विजय पा न सका। पर मैंने दुनिया को बदलकर सुखी बनाने का विचार कर लिया था। शायद मेरे इसी 'अहं' पर दंड देने के लिए मायावी कृष्ण स्वयं मेरा शिष्य बनकर मेरे पांडित्य की प्रशंसा की। उससे प्रभावित होकर अपने अहं के कारण मैं उसको शिक्षा देने लगा और उसके उद्धार के लिए उपदेश देने लगा।''

अब देखें कि शिष्य कृष्ण के प्रति गुरु किस प्रकार व्यवहार करता है। कवि स्वयं अनुशासनप्रिय गुरु के रूप में सामने आता है। वह एक गुरु में होने वाले 'अहं' भाव से भरा हुआ दीखता है। गुरु के रूप में साम, दाम, दंड, भेद आदि सभी का प्रयोग करके शिष्य कृष्ण को सुधारकर

उसका उद्धार करना चाहता है, पर कृष्ण पर गुरु की सीख का कोई असर नहीं पड़ता। लाचारी से कवि क्रोधित हो उठता है। उसकी आंखें लाल हो जाती हैं, उसके ओंठ फड़कने लगते हैं और क्रोध से वह शाप देने लगता है–''छि! शैतान अब मेरी आंखों के सामने खड़ा न रह। चला जा कहीं। लौटकर मेरे पास न आना।''

कृष्ण भी उठकर लापरवाही से ऐसा चलने लगा, मानो आजकल का उद्दंड शिष्य गुरु का आदेश शिरोधार्य मानकर नौटंकी करते हुए 'क्लास' से बाहर जाता हो।

फिर कवि की मानसिकता एक सहृदय निःस्वार्थ गुरु का रूप धारण करती दिखाई देती है। कवि कहता है, ''बेटा, चलो। मैंने यह सब इसलिए किया कि किसी तरह तेरा उद्धार हो जाए। अब मैं हार गया। दूसरा कोई उपाय अब मेरे पास नहीं रहा। चलो, ईश्वर तेरी रक्षा करे। अब वापस मेरे पास न आओ।''

गुरु की निराशामय दशा देखकर शिष्य का मन बदल जाता है। वह कहता है–''हे गुरु जी! आप के कहे सारे मार्ग मैं अपनाऊंगा। अब मेरे कारण आपको कोई परेशानी नहीं होगी।'' यों कहकर कृष्ण गायब हो जाता है। कृष्ण का स्वभाव ही यही है कि अपने सामने हार माननेवालों की सहायता करना। हां, जब द्रौपदी ने अपनी हार मानकर दोनों हाथ फैलाए, तभी वह उसकी मदद करने लगा।

अब कवि के मन में प्रत्यक्ष होकर कृष्ण कहने लगे–''हे लाल! सत्य को समझो। किसी का निर्माण करना, किसी का परिवर्तन करना, किसी का नाश करना, यह सब तेरे वश की बात नहीं है। जब तुम अपनी हार मानते हो तभी तुम विजयी बनते हो। अब तुम जग में जो करना चाहो, करो और अनासक्त होकर जीते रहो।'' कृष्ण की यह बात सुनकर कवि सहर्ष कामना करता है कि कृष्ण की जय हो।

'कृष्ण मेरा शिष्य' की कविता द्वारा कवि भारती कहते हैं कि हमें अपना अहं त्यागकर उसकी शरण में जाना चाहिए। तभी हमें मुक्ति मिलेगी और उस ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार हमें मिलेगा।

कवि के शब्दों में देखिए–

''मैंने उसका उद्धार करने के विचार से उसे सिखाया कि यह काम बुरा है, यह न करना। यह आदमी बुरा है, इससे मित्रता न करना। यह अच्छी बात नहीं, ऐसा मत बोला करो। यह बात अच्छी नहीं, यह मत सीख। यह ग्रंथ उत्तम है, ऐसे ग्रंथों का अध्ययन करो। ये-ये आदमी अच्छे हैं, इन-इन से मित्रता बनाए रखो। ऐसे-ऐसे काम करना पसंद करो। इस तरह अनेक आदर्श की बातें सिखाते-सिखाते मेरे प्राण ही निकल गए।''

इस तरह कवि भारती गुरु के रूप में शिष्य कृष्ण को आदर्श की बातें सिखाते रहे। मगर शिष्य की क्या हालत थी, इसे कवि के मुंह से सुनिए–

''उसके उद्धार हेतु मैंने जितना प्रयास किया, उसके विपरीत उसके कार्य रहे। जैसे कहानियों में चित्रित कुछ स्त्रियां बात-बात पर अपने पति के विरुद्ध कार्य करती हैं, वैसे यह मेरी हर बात के विपरीत काम करने लगा।''

शिष्यों की उदंडता जब असह्य हो जाती है, तब अकसर यह देखा जाता है कि गुरु आपे

से बाहर होकर कभी-कभी उन्हें शाप भी दे बैठता है। वही दशा गुरु भारती और शिष्य कृष्ण के बीच रह गई है। शिष्य का उलटा स्वभाव देखकर गुरु की आंखें लाल हो जाती हैं, होंठ फड़कने लगते हैं। कवि कह बैठता है–''छिः-छिः! शैतान, अब पल भर के लिए भी मेरे सामने खड़ा मत रहो। इस जगत् में रहते कभी मेरे पास नहीं आना, चला जा! चला जा! चला जा!'', यों वज्रपात-सा कठोर शब्दों से कवि ने डांटा। अब कवि की वाणी देखिए–

''जब कोई शिक्षक गुस्से से किसी लड़के को कक्षा से बाहर करता है, तब वह बदमाश लड़का कक्षा से ही नहीं, बल्कि स्कूल के बाहर भी घूमने चला जाता हैं। वैसे ही कवि की बात सुनकर शिष्य कृष्ण भी 'अच्छा' कहकर चला जाता है।''

संत हृदयवाले सहृदयी गुरु का मन नवनीत से भी नरम होता है। शिष्य पर कुपित हुए तो दूसरे ही क्षण जैसे गुरु का दिल बदल जाता है, वैसे कवि का हृदय भी अपनी वेदना व्यक्त करता है। क्रोध जब वेदना में बदला, तब नयनों में आंसू भरकर कवि कहने लगा–''बेटा! चलो, कहीं भी रहो, तो सुखी रहो। ईश्वर तेरी रक्षा करे। तेरे उत्थान के लिए मैंने जो कुछ प्रयास किए, सब व्यर्थ हुआ और मैं हार गया। अब मेरे पास दूसरा कोई उपाय नहीं रहा। सुनो, वापस न आना, चलो, सुखी रहो।''

इस तरह कवि अपनी हार स्वयं मान गया और वेदना से विह्वल हो गया तो उसी क्षण गायब हुआ कृष्ण कवि के हृदय में प्रत्यक्ष हो जाता है और कवि को संबोधित करता है–''तात! किसी का निर्माण करना, किसी का परिवर्तन करना या किसी का नाश करना तेरे वश की बात नहीं, जानो कि जब तुम अपनी हार स्वीकार करते हो, तभी तुम्हारी जीत होती है। अब तुम इस जगत् में जो कुछ चाहो करो, इच्छा व दुःखरहित जीते रहो।'' कवि इन बातों को अपने शब्दों में कहता है–

''मनुष्य को 'मैं बदल दूंगा, मैं बना दूंगा, मैं नष्ट कर दूंगा' वाली अहं की भावना को त्याग देना चाहिए और मानना चाहिए कि जगत् में मेरे वश का कुछ नहीं है फिर विश्वास करना चहिए कि सबकुछ ऊपरवाले के हाथ में है। उसके सामने अपने को अशक्त एवं असहाय मानकर उसके चरणों पर शरणागत हो जाना चाहिए। तभी ईश्वर की कृपा पूर्ण रूप से हमें मिलेगी।''

कवि भारती कृष्ण को शिष्य बनाकर, अंत में उसी शिष्य के मुंह से गुरुर्रुपदेश सुनवाकर कृष्ण भक्ति-तत्त्व को समझाते हैं। इस कविता में कवि भारती और कृष्ण के बीच गुरु-शिष्य के रूप में जो वार्तालाप की पंक्तियां बनी हैं, वे मार्मिक हैं।

'कण्णन ऐनू सन्गुरु' (कृष्ण मेरे सद्गुरु) : कवि कहता है–''मैं ज्ञान की खोज में निकला। सत्य को जानने की जिज्ञासा मेरे मन में बनी रही। गुरु की खोज में कई देश घूमता रहा। यमुना नदी के किनारे मिले एक वृद्ध ने कहा कि भाई! तुम्हारे मनोनुकूल वाला एक आदमी है। वह मथुरा का राजा है, उनकी शरण में जाओ। वह तुम्हें सब कुछ समझाएगा। मैंने उसके पास जाकर 'सत्य का उपदेश' देने की प्रार्थना की, पर वह तो जवान था, सुंदर था, नाच-गान का रस ले रहा था, ऊपर से शासन की चिंता में डूबा था। मेरा मन बोला कि यह मेरे लिए क्या कर सकता है? श्रेष्ठ तपस्वी भी जिस सत्य का मर्म नहीं समझ सकते, उसका रहस्य यह कैसे बताएगा?

उसी समय वह मुझे एकांत में ले जाकर कहने लगा–''हे लाल! तुम गहराई से आत्मचिंतन करो। अपने को समझो। चित्त में कोई चिंता न रख। चित्त को ब्रह्म में स्थिर करो। ब्रह्म

में लीन रहते-रहते अपनी ही सुध जब खोओगे, तब आकाश को नापने का वह सत्य समझ में आएगा। वह चंद्रमा जैसी ज्योतिर्मय है। वही सत्य और नित्य है। इसका जब-जब तुम चिंतन-मनन करोगे, तब-तब उसकी कृपा तुम पर बरसेगी। उसकी मंत्र शक्ति से इस जगत् को असीम आनंद मिलेगा।''

वह और बोला–''विशाल सागर को परमात्मा को ज्ञान मानो तो उसमें पायी सारी बुलबुलें जीव हैं। आसमान में ज्योति स्वरूप में पाये सूरज को ज्ञान मानो तो उसके चारों ओर की किरणें जीव हैं। प्रपंच में दिखाई देनेवाले पदार्थ सब उस महान ज्ञान से उत्पन्न विभिन्न रंग हैं। इस सत्य को समझनेवाले सुखी होते हैं और वे अपने चित्त में ही शिव का दर्शन करते हैं। यहां घटित सारी क्रियाएं ईश्वर की कृपा है जो ज्ञान रूपी ज्योति का प्रकाश पाकर, मन में सुविचार दृढ कर, धर्म-पथ से विचलित न होकर जग में अपना कर्तव्य निभाते हैं और अपने धन व बुद्धि से परहित कर अन्यों पर अपना स्नेह बांटते हैं; ऐसे लोग जहां रहते हैं, वहीं ईश्वर का निवास है। तुम वह ज्ञान शीघ्र पाओ।'' कृष्ण की यह बात सुनकर ज्ञान की विशिष्ट ज्वाला देखी और समझ गया कि यह जगत् उसी की लीलाएं हैं।

'कण्णन-ऐनू विळैयाट्टुप् पिळ्ळै' (कन्हैया मेरा बचपना बालक) : 'कण्णन-ऐनू विळैयाट्टुप् पिळ्ळै' वाली कविता अद्भुत एवं शृंगार रस से भरी हुई है। यहां कवि की कल्पना चित्ताकर्षक है। इसे कल्पना के बजाय वास्तविक यथार्थता की प्रत्यक्ष अनुभूति की अभिव्यक्ति के मर्मस्पर्शी मधुर शब्द रूप कहा जा सकता है। हम अपने ही घर में अपने ही बच्चों के साथ ऐसा अनुभव करते हैं–

बच्चे के हाथ में मिठाई है।
हम मांगते हैं- ''मुन्ना! वह मिठाई मुझे दो।''
वह कहता- ''नहीं, नहीं दूंगा।''
हम कहते- ''आधा तो दो।''
वह कहता- ''काटकर दूंगा।''
हम कहते- ''वह तो जूठा पड़ेगा।''

वह कहता है–''मैं कागला काट काटकर दूंगा।'' कहकर अपने गंदे कपड़े के बीच रखकर कपड़े के ऊपर से दांतों से काटता है। मिठाई के दो टुकड़े हो जाते हैं। बच्चा पहले एक टुकड़ा अपने मुंह में डाल लेता है, दूसरा टुकड़ा हमारे सामने बढ़ाता है। हम हाथ बढ़ाते हैं–

वह कहता–''नहीं, मुंह खोलो।''
हम मुंह खोलते हैं।
वह कहता–''नहीं, आंख भी बंद करो।''
हम आंख बंद करने का बहाना करते हुए मुंह खोलते हैं।
वह–''यह लो, खालो, कहकर'' वह टुकड़ा भी अपने मुंह में डालकर भाग जाता है।

यदि बच्चा अपना होता तो उसके इस बचपना स्वभाव का रस लेते हुए, 'बदमाश कहीं का!' कहकर प्यार से उसे पुचकारते हैं। यदि वह बच्चा पड़ोसी का होता तो कहते–'देखो, अभी से कितनी चालाकी है! अपने मां-बाप के समान किसी को कुछ देने का नाम नहीं लेता।'

बच्चा अपना हो या पराया, बच्चे का 'बचपना' यही होता है। तमिल के प्रसिद्ध कवि तिरुवल्लुवर् कहते हैं–''वे ही लोग बंशी और वीणा का स्वर मधुर कहते हैं, जिन्होंने अपने संतानों की तुतली बोली की मधुरता का रस न लिया हो।''

बच्चों के साथ महिलाओं का स्नेह और संबंध ज्यादा है। महिलाएं छोटे बच्चों से छेड़छाड़ बहुत करती हैं। छोटे बच्चे भी महिलाओं के बीच का आकर्षण बना रहना बहुत पसंद करते हैं। बालक कन्हैया का स्वभाव भी तो यही है। अतः कवि भारती स्वयं गोपिका बनकर बालक कन्हैया की लीला का अनुभव करने लगते हैं।

कवि भारती का बाल कृष्ण गलियों में आती-जाती महिलाओं को अपने बचकाने स्वभाव की क्रीड़ाएं कर सुखद अनुभव देते हैं।

कृष्ण की क्रीडाएं अनंत हैं। महिलाओं के लिए कृष्ण के सुखद उपद्रव भी अनंत हैं। कवि का अनुभव देखिए। उस सुखद अनुभव का रस कवि के शब्दों में लीजिए–

''कृष्ण बड़ा ही चंचल और चपल रहता है। वह राह चलती महिलाओं के लिए बड़ा उपद्रवी बना रहता है। वह फल लाकर हमें खाने के लिए देता है, पर आधा खाते समय उसे छीन लेता है। 'हे तात्, हे नाथ, हे भैया, हे प्यारे' कहकर उसकी खुशामद करें तो उसे अपने मुंह से काटकर जूठा बनाकर देता है।''

''कृष्ण कभी मधु-सी मधुर पकवान लाकर ऐसी ऊंची जगह पर, जहां हमारा हाथ न पहुंचे रख देता है। हमें बुलाकर कहता है कि तुम हिरनी हो, सुंदर हो, तुम्हीं वह मिठाई लेकर खाओ। जब हम सहर्ष मिठाई लेने के लिए उछलते हैं, तब वह हमारी कमर पर नोचकर भाग जाता है।''

''कभी वह सुंदर फूल लाकर हमें रुला-रुलाकर कहता है कि तुम आंखें मूंद लो, मैं तुम्हारे सिर पर लगाऊंगा। हम आंखें मूंद लेते हैं। हमें अंधी बनाकर सखी के सिर पर फूल लगा देता है।''

''कभी पीछे से वेणी पकड़कर खींचता है और मुड़कर देखने से पहले गायब हो जाता है और कभी हमारी रंग-बिरंगी नई साड़ियों पर धूल और कीचड़ फेंककर हमें दुःखी बनाता है।''

''कन्हैया कभी अच्छा बालक बनकर आता है। बंशी से मधुर गीत सुनाकर मन बहलाता है। बंशी की मधुरता से हम अपनी सुध-बुध खोकर ऐसे बैठी रहती हैं, मानों हमने नशे का सेवन किया हो!''

''हम होश खोकर नयन बंद कर मुंह खोले उसके गीत में लीन रहती हैं। तब अचानक वह छह-सात चींटे पकड़कर हमारे मुंह में डालकर भाग जाता है। क्या कभी किसी ने देखा है ऐसा मजाक?''

''कृष्ण हमारे घर आकर हमें खेलने को बुलाता है। यदि हम कहें कि घर में काम है, नहीं आ सकतीं तो छोड़ता नहीं, हाथ पकड़कर खींच ले जाता है। क्रीड़ास्थल पहुंचने पर हमें छोड़कर हम जैसी छोटियों से खेलने लगता। इस बीच में खेल छोड़कर हमारे घर जाता और घरवालों से झूठ-मूठ हमारी शिकायत भी कर देता है।''

''घरवालों के साथ वह ऐसा व्यवहार करता है कि माता जी, पिता जी, चिड़चिड़ी बुआ जी सब के लिए वह अच्छा बच्चा बन जाता है और हम ही अकेली उनकी आंखों में बुरी साबित हो जाती हैं और उनकी झिड़की खाकर दुःखी हो जाती हैं।''

''झूठ-मूठ कहकर दूसरों के कान भरने में कृष्ण बड़ा समर्थ होता है। असत्य व दुःखदायी बातें करने में वह हिचकता नहीं। हर महिला के अनुसार वह नौटंकी कर बातें बदलने में बड़ा कुशल है। गलियों की सभी महिलाओं के बीच आपसी मतभेद पैदा करने में वह बड़ा खिलाड़ी है।''

इस तरह कृष्ण के बचकाने स्वभाव की लीलाएं अनंत हैं, जिसका सुखद एवं लाडला उपद्रव महिलाओं के लिए अनवरत होता है।

कवि भारती की 'कृष्ण मेरा बचपना-बालक' वाली कविता अद्‌भुत रस व शृंगार रस से परिपूर्ण है। साथ-साथ कृष्ण की चेष्टाओं से हमें हास्य रस की मधुर स्फुट भी मिल जाती है। अपना अहं छोड़कर, विनयी होकर एकाग्र मन से कृष्ण के चरणों में समर्पित हो जाएँ तो कृष्ण अपनी कृपा स्वयं हम पर बरसाएगा।

भक्ति साहित्य में तीन प्रकार के सिद्धांत पाए जाते हैं–1. सुख-भोग या मुक्ति हेतु भगवान के मंत्रों द्वारा स्तुति करना, 2. भव-रोग से बचकर मुक्ति पाने की इच्छा से ईश्वर की स्तुति करना और 3. ईश्वर को नायक और अपने को नायिका मानकर भक्ति में शृंगार रस द्वारा ईश्वर के चरण में पहुंचने की प्रार्थना करना। कवि भारती इन तीनों को पारकर ईश्वर के साथ अति निकट की घनिष्टता स्थापित करते हैं। इसके पीछे कवि की राष्ट्रीय एवं सामाजिक उत्थान की भावना निहित है। इसीलिए मां शक्ति की स्तुति की हर पंक्ति में राष्ट्र और स्वतंत्रता की बात रखते हैं। विनायक या कार्तिकेय की स्तुति में भी सामाजिक उत्थान की बात प्रस्तुत करते हैं। उनकी भक्ति स्वार्थ नहीं, परार्थ है। उसकी भक्ति ही राष्ट्रीयता है और राष्ट्रीयता ही उसकी भक्ति है। कवि की भक्ति ही सामाजिक चिंतन है और सामाजिक चिंतन ही उसकी भक्ति है। हास्ययुक्त आध्यात्मिक चिंतन भरी कवि की कृष्ण भक्ति समाज एवं राष्ट्र में नई जागृति पैदा करने वाली क्रांति है।

□

कोयल गीत का वैशिष्ट्य

एस. विजया

तमिलनाडु के दक्षिण छोर पर स्थित है–'तूत्तुक्कुडी'। इस जिले का एक पंचायती शहर 'एट्टय्यपुरम्' है। एट्टय्यपुरम् कई साहित्यकारों की जन्मस्थली है। उनमें प्रमुख हैं–राष्ट्रकवि 'चिन्नस्वामी सुब्रह्मण्य' भारती, मुत्तुस्वामी दीथितर[1] उमरुपुरलावर[2] (सीरापुरणम् के रचयिता)। सुब्रह्मण्य भारती बहुमुखी प्रतिभा संपन्न महान कवि हैं। कवि, लेखक, पत्रकार, संगीतज्ञ, बहुभाषाविद्, समाज सुधारक–इस तरह अनेक व्यक्तित्व उनके अंदर थे। यही नहीं, उनके हर पक्ष में अनेक विधाएं थीं, यानी उनकी कविताओं में हम समाजवाद, राष्ट्रवाद, भक्ति, प्रेम, करुणा, प्रकृति आदि अनेक बातें देखते हैं।

सुब्रह्मण्य भारती कौन हैं? तमिल भाषा, तमिल के आधुनिक साहित्य, तमिलनाडु के राष्ट्रीय चिंतन संबंधी साहित्य एवं राष्ट्रीय आंदोलनों में तमिलनाडु के योगदान आदि से परिचित न रहने वालों के मन में यह सवाल उठ सकता है, अगर सुब्रह्मण्य भारती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व संबंधी एक बिंब प्रस्तुत करना है तो हमें अनेक उदाहरणों का सहारा लेना पड़ेगा जैसे–भारती का आक्रोश वीर भगत सिंह के आक्रोश जैसा था।

भारती की कविता के लिए उदाहरण देना है तो हमें अनेक कवियों का नाम लेना पड़ेगा– प्रकृति संबंधी उनकी कविताएं कालिदास के मेघदूत, गुरुदेव की गीतांजली, जयशंकर प्रसाद की झरना और अंग्रेजी के विलियम वड्र्सवर्थ आदि की तरह थीं। देशभक्ति की कविताओं के लिए माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, बंकिम चंद्र चटर्जी आदि की कविताओं को उदाहरण के तौर पर कह सकते हैं। भारती की कृष्ण भक्ति भक्त सूरदास की भक्ति जैसी थी।

काली माता के प्रति उनकी आस्था के लिए उदाहरण देना लगभग असंभव है। 'देवी माहात्म्य' में देवी के जो वर्णन हैं, उन वर्णनों की विस्तारपूर्वक प्रस्तुति उनकी देवी संबंधी कविताओं में है।

एक देशभक्त में उपर्युक्त सारे गुण विद्यमान हैं तो वह सुब्रह्मण्य भारती हैं। उनकी रचनाओं में छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, भक्ति, राष्ट्रीय चेतना, नारी स्वतंत्रता आदि अनेक रूपों में व्यक्त हैं।

भारती की 'कुयिल पाट्टु', (कोयल के गीत) अन्य रचनाओं से अलग हैं। इसमें जीवात्मा, परमात्मा, सांसारिक अड़चनें आदि अनेक बातों का संकेत हुआ है। हम सोच सकते हैं कि जीवात्मा, परमात्मा संबंधी विचार को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने मनुष्य का सहारा न लेकर कोयल का सहारा लिया? भारती मनुष्य, पशु-पक्षी तथा सभी जीवराशियां, कीड़े आदि सबको एक समान मानते थे। वे सभी में उपस्थित ईश्वर शक्ति को महसूस करते थे।

'कोयल गीत' (यिल पाट्टु) को हम एक लघु काव्य के रूप में देख सकते हैं। भारती के सभी रचनाओं की तुलना में, यह अधिक लंबी है। इसमें कुल 9 भाग हैं। श्री सीनी विश्वनाथन नामक तमिल विद्वान का कहना है कि इस काव्य की रचना सन् 1914 या 1915 में हुई होगी। (महाकवि भारती - सिल उन्माइगल - कुछ सच्चाईयां, पृ. 129)

पुडुवई (पुदुचेरी या पांडिचेरी) में 'मूततीयालपेट नामक स्थान था। वहां एक आम्रवन था। वहां का प्रकृतिक सौंदर्य अद्वितीय था। भारती रोज वहां जाते थे। जन्म से ही प्रकृति के प्रति आसक्ति के कारण वहां का सौंदर्य उनको आत्मविभोर कर दिया करता था। आम्रवन की कोयलों की मधुर ध्वनि में वे लीन हो जाते थे, स्वयं गाने लगते थे। उस समय भारती का हाव भाव कैसा था–इसका वर्णन पुडुवई के श्री व. रा. रामस्वामी अयंगार के शब्दों में इस प्रकार है–

''उस आम्रवन की याद आते ही वे नाचते लगते थे। उनमें दीवानापन चढ़ जाता था। दोनों हाथों से 'ताल' करते हुए, गाने लगते थे। गाना समाप्त होते ही थककर गिर जाते थे।'' (महाकवि भारती, पृ. 87)

विद्वान कु. प. राजगोपालन 'कुयिल पाट्टु' के संबंध में कहते हैं–''नशे की अवस्था में जिस तरह शब्द टपकते हैं, उसी तरह भारती के मुंह से शब्द निकलते थे। ये शब्द स्वयं एकत्रित होकर काव्य बन गया था।'' (कण्णन एन कवि - कृष्ण मेरा कवि, पृ. 35)

उस वन में कोयलों का शिकार करने शिकारी लोग आते थे। एक दिन कोई शिकारी नहीं आया, तो कोयलों को बहुत आनंद हुआ। उनमें एक कोकिला कवि को देखकर आकृष्ट हुई। इतने दिन शिकारी के भय से वह खामोश रही। आज शिकारी न आने के कारण कवि को संबोधित करती हुई गाने लगी–

'प्यार प्यार प्यार,
प्यार नहीं तो
मार मार मार' (मार = मृत्यु)

कुयिल पाट्टु के पहले दो भागों में आम्रवन का सौंदर्य, कोयलिया के मन में छिपी रहनेवाली प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति आदि हैं।

आम्रवन के सौंदर्य का वर्णन सुब्रह्मण्य भारती के शब्दों में इस प्रकार है–''प्रातःकाल के उगते सूरज की वेला में प्रकाश छिटके हुए हैं। वहां नियमित रूप में वेद मंत्रोच्चारण करनेवाले लोग होम करते हैं। होम से निकलने वाला धुआं हर किसी को ही अपनी निशानी लगाती हैं।''

दूसरे भाग में कोयल के गीत गाने का वर्णन है। सुब्रह्मण्य भारती का संगीत ज्ञान अपार था। अपने हर एक गीत के लिए एक राग एवं ताल तय किया है। कोयल का 'कादल कादल कादल (प्यार प्यार प्यार) गीत को 'शंकराभरणम' एवं 'एकताल' में बनाया है। यही कारण है कि अनेक चलचित्रों में भारती के गीतों को बहुत आसानी से प्रयोग किया गया है।

तीसरे भाग में कवि और कोयल के बीच का संवाद है। कवि ने कोयल का गीत सुना और आह्लादित हुआ। उसके गीत में रहनेवाली पीड़ा कवि के मन को झंकृत करती है, तो कवि कोकिला से पूछता है कि वह क्यों दुःखी है? कोकिला कहती है, ''मैं मनुष्यों की भाषाएं जानती हूं। उनके गीतों ने मुझे आत्मविभोर कर लिया है। मैं प्रेम-पीड़ा से ग्रस्त हूं।'' कवि कोकिला से आकृष्ट हो जाता

है। कोयल कवि को संगीत के विभिन्न रूपों को बताती है–''गानेवाली पक्षियों के कलरव में, वन के पेड़ों के पत्तों से होनेवाली ध्वनि में, नदी के कलरव में, झरने की आवाज में, समुद्र के शोर में, स्त्रियों के प्यार भरे शब्दों से टपकनेवाले सुधा में, खेत में सिंचाई करते समय होनेवाली ध्वनि में संगीत हैं।''

भारती प्रकृति के हर क्रिया में संगीत के आभास को पहचानकर, इसे कोयल के मुंह से कहलवाते हैं।

दोनों के बीच में संवाद होता है। दोनों के बीच में वर्णनातीत आकर्षण पैदा होता है। इस बीच में वन की सभी पक्षियां आ जाती हैं। भीड़ में प्यार कैसा? तो अगले दिन मिलने का वादा करते हुए दोनों बिछुड़ जाते हैं।

कवि की पूरी रात बेसब्री से कटती है। अगले दिन जल्दी उठकर कोयल की तलाश करते हुए वन पहुंचते हैं। कोयल को देखते हैं। लेकिन कैसे? वहां का दृश्य कवि के मन को छिन्न-भिन्न कर देता है। कोयल एक वानर के सम्मुख बैठकर वानर के सौंदर्य का वर्णन करते रहती है, अपना प्यार अभिव्यक्त करती है। कवि का मन तड़प उठता है। यह दृश्य कवि के मन में संपूर्ण स्त्री जाति के प्रति घृणा पैदा कर देता है। कवि तलवार उठाकर उस वानर पर प्रहार करने जाते हैं, लेकिन वानर बचकर भाग जाता है। कोकिला वानर और नर के अंग लावण्य की तुलना करके बताती है कि वानर नर से उत्कृष्ट है। यह सुनकर कवि स्तंभित रह जाते हैं।

अगले दिन कवि फिर से वन जाते हैं। कोयल वहां एक बूढ़े बैल के सामने खड़ी होकर मीठे-मीठे शब्द बोलती रहती है, अपना प्यार अभिव्यक्त करती है। कवि का मन और भी खिन्न हो जाता है और फिर से तलवार उठाकर बैल को मारने जाते हैं, लेकिन वह बच जाता है।

अगले दिन फिर से कवि वन जाते हैं। वहां कोकिला अकेली बैठकर 'प्यार प्यार प्यार' गाती रहती है। कवि अत्यंत दुःख के साथ उसके पास जाते हैं। कवि को मनाने के लिए कोकिला अनेक बातें करती हैं। आखिर वह अपने पूर्व जन्म की कहानी बताती है–

चेर नाडु (तमिलनाडु पर चेर, चोल एवं पांडिया राजाओं ने शासन किया। अब का केरल तथा तमिलनाडु के कोयंबत्तुर के कुछ अंश पुराने समय के चेर नाडु में शामिल थे) के पहाड़ों में 'चिन्न कुईली नामक एक सुंदर लड़की थी। उसके मामा का एलएल पुत्र 'माडन' कुईली को बहुत चाहता था, लेकिन कुईली के मां-बाप ने उसका विवाह 'नेट्टई कुरंगन' नामक लड़के से तय किया था। चिन्न कुईली का मन उस पहाड़ी प्रदेश के युवराज से पराजित हो चुका था। युवराज अकसर वन आया करते थे। उस समय दोनों के मन में प्यार हुआ, लेकिन 'माड़न और नेट्टई कुरंगन' दोनों ने मिलकर युवराज को मार डाला। मरते-मरते युवराज ने कुईली से वादा किया कि दोनों अगले जन्म में मिलेंगे।

अगले जन्म में भी माड़न और नेट्टई कुरंगन, कुईली और युवराज के बीच में बाधा डालते हैं; अतः दोनों नहीं मिल पाए। दोनों मिलकर कुईली को एक कोयलिया बना देते हैं। इस तरह कोकिला अपने पूर्व जन्म की कहानी कवि से बताती है। कवि को आश्चर्य होता है कि पूर्व जन्मों के संबंध में उसे इतनी जानकारियां कैसे मिलीं! कोकिला कहती हैं कि 'पोदिगई पहाड़' के ऋषि ने उनकी सारी बातें बताईं। कोकिला आगे ऋषि द्वारा बताई गई भविष्यवाणी को भी सूचित करती हैं कि वह अपने प्रियतम से इस आम्रवन में मिलेगी।

कवि का भ्रम दूर हो जाता है। कवि कोकिला के प्यार को पहचानकर उसे चूमते हैं। कवि

का स्पर्श पाते ही कोकिला एक सुंदर लड़की बन जाती है। दोनों आत्मविभोर होकर एक हो जाते हैं। इतने में कवि की आंखें खुलती हैं और कवि वास्तविक संसार में आ जाते हैं।

कवि इस लघु काव्य को इन पंक्तियों के साथ पूर्ण करते हैं–''मैंने पहचाना कि यह मेरे कल्पना है। हे विद्वतजन तमिल के मनीषियों, मेरी इस कल्पना में जो वेदांत रहस्य निहित हैं, उसे पहचानकर बताने की कृपा करें।''

भारती का कहना है कि 'कुयिल पाट्टु' में वेदांत रहस्य छिपा है। वेदांत के अनुसार कोयल परमात्मा है। बंदर और बैल माया हैं–तलवार बुद्धि (ज्ञान) की सूचक है। कुछ लोग इस काव्य में निहित सिद्धांत को इस प्रकार बताते हैं–

कोयल - जीवात्मा, कवि - परमात्मा, बंदर - मन, बैल - पंचेंद्रिय। तलवार - ज्ञान, वन की अन्य पक्षियां - सांसारिक बातें, वन- प्रपंच, चार दिन (कवि चार दिन वन जाते हैं, चौथा दिन ही भ्रम दूर होता है) जीवात्मा परिपक्व होकर परमात्मा के पास जाने की अवधि।

कुछ लोग 'कुयिल पाट्टु' की व्याख्या 'शैव सिद्धांत' दृष्टि से भी देखते हैं। शैव सिद्धांत में तीन प्रकार की अशुद्धियों का उल्लेख है–

अहम की भावना (माड़न)
पूर्व कर्म (बंदर)
माया (आसक्ति प्रेम)

कोयल को आत्मा (जिसे तमिल में 'पसु' कहते हैं), चेर युवराज को 'परमात्मा' (तमिल में पति कहते हैं) के रूप में देखते हैं।

श्री कु.वे. बालसुब्रह्मण्य का कहना है कि–''जब भारती पांडिचेरी में रहते थे, श्री अरविंद के संपर्क में आए और उनके सिद्धांतों से प्रभावित हुए। देश स्वतंत्रता से भी ऊपर उठकर आत्म स्वतंत्रता के प्रयास में तत्पर हुए तो यह 'कुयिल पाट्टु' भारती के इस प्रयास का ही परिणाम है।''

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की रचनाओं में यह सबसे लंबी है। कुछ लोग कहते हैं कि अंग्रेजी कवि 'कीट्स' के 'नाइटिंगल सांग' (Nightingale Song) से प्रभावित होकर कवि ने इसकी रचना की होगी। लेकिन 'कुयिल पाट्टु' का विस्तार बहुत बड़ा है। बंदर, बैल, कोयल आदि सबको अपनी दुनिया में कवि ले आए हैं। यहां तक कि बंदर की पूंछ का भी वर्णन विस्तार से हुआ है। कोयल बंदर से कहती है, 'जल्दी से लांघने के लिए प्रयोग होनेवाली तुम्हारे पूंछ ईश्वर का वरदान है–तेरी पूंछ की बराबरी कोई नहीं कर सकता।'

हमारा विश्वास है कि प्रेम, दुःख, सुख, कर्म आदि सब जन्म-जन्म का फेर हैं। पूर्व जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में प्राप्त होता है। इस तथ्य का आभास इस काव्य में हमें मिलता है।

संदर्भ एवं टिप्पणियां :

1. आप कर्नाटक संगीत के त्रिमूर्ति कहे जानेवाले तीन संगीतज्ञों में से एक हैं। अन्य दो हैं–त्यागय्यर एवं श्यमाशास्त्री।
2. इस्लाम धर्म के संस्थापक हजरत मोहम्मद पर 'सीरापुरणम' नामक काव्य के रचयिता हैं।

□

राष्ट्रभक्ति की परिभाषा देता काव्य

रागिनी कपूर

सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921), जिन्हें केवल 'भारती' के रूप में भी जाना जाता है, एक असाधारण व भविष्यवक्ता कवि थे, जिन्हें भारत के लोग 'राष्ट्रवादी बार्ड (Bard/Poet)' के रूप में भी देखते हैं। तमिल भाषियों के बीच वे एक कवि लॉरेट के रूप में भी जाने जाते हैं। उन्हें 'भारती' का टाइटिल, जिसका अर्थ है–'learned one', एक असेंबली द्वारा अपने अनिश्चित उपहारों के कारण बारह वर्ष की आयु में एट्टय्यपुरम् में कवियों व विद्वानों के द्वारा दिया गया था। एट्टय्यपुरम् में वे रहते थे और यहीं उनके पिता लोकल चीफटेन भी थे। जन्म से वे एक ब्राह्मण थे और उन्हें हिंदू आध्यात्मिकता, वेदों और उपनिषदों का भी ज्ञान था। फिर भी कम उम्र में उन्हें तमिल कविताओं ने आकर्षित किया, जिन्हें वे अक्सर सरसरी तौर पर पढ़ते थे। नए तमिल साहित्यिक पुनर्जागरण में उन्होंने भाग भी लिया जिसे सावा सिद्धों द्वारा शुरू किया गया था।

जैसे-जैसे भारती के साहित्य का साहित्यिक विकास होता गया, उनके काव्य-विषय ने एक और महत्त्व प्राप्त कर लिया, वे भारत की भावना से सांस लेने और जीनेवाले व्यक्ति के रूप में जाने जाने लगे। भारती की गहन निष्ठा तमिल भाषा और तमिल धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति का हिस्सा था और भारत माता को पुनर्जीवित कर एक बड़ी दृष्टि देना था। उन्हें तमिल, संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं का भी ज्ञान था। उनका अधिकांश कामकाजी जीवन पत्रकारिता में बीता। वे गांधीजी के समर्थक भी रहे तथा प्रारंभिक क्रांतिकारी बयानबाजी, जो उनकी पहचान थी, उसी से सत्याग्रह के आंदोलनकर्मियों को काफी प्रोत्साहन भी मिला। दक्षिण भारत नमक आंदोलन में हिस्सा लेनेवालों के द्वारा उनके गीतों को गाया भी गया। उनके ब्राह्मण होने के बावजूद, उन्हें 'पीपल्स पोयट' के रूप में भी स्वीकार किया गया और द्रविड़ राष्ट्रवादी दलों द्वारा एक 'क्रांतिकारी सुधारक' के रूप में भी जाना गया। भारती की एक कविता एपिग्राफ के रूप में श्रीलंका के समाचार-पत्र 'द संडे लीडर' में भी प्रकाशित हो चुकी ह, और वह कविता श्रीलंकाई तमिलों के लिए 'काली स्वतंत्रता' (Black Independence) के उत्सव के रूप में वर्णित है–

एंडरू थानियुम इंथा सुथंथिरा थगाम?
एंडरू मडियम एंगल आदिमयिन मोगम?
अंतर्मठु अन्नै कै विलंगगल पोगुम?
एंद्रेमाथु इनगलगल थेरथु पोययगम?
अर्थात् आजादी की यह प्यास कब बुझेगी?

कब होगी यह बदनामी बंद?
हमारी मां की हथकड़ी कब हटेगी?
हमारी मुसीबतें कब खत्म होंगी और भ्रम कब मिटेगा?

देशभक्ति विषयों पर भारती की कविताएं उनके कुल रचनात्मक अवदान का लगभग छठा हिस्सा है; उन कविताओं का असाधारण प्रभाव आज भी है। उन्होंने राजनीतिक सिद्धांतवाद को एक अच्छी कला में बदल दिया था। यहां तक कि उनकी 'देशभक्ति' कविताएं अपने विषय को आगे बढ़ाने में सक्षम रहीं, क्योंकि ये कविताएं जिंगोइज्म से बचती हैं। उनकी राजनीतिक उच्छृंखलता व्यापक रूप से व्याप्त है व उनकी आध्यात्मिक दृष्टि ने भारत, श्रीलंका, सिंगापुर और मलेशिया के तमिल समुदायों में उनकी स्थायी लोकप्रियता को भी सुनिश्चित किया है।

भारती की सफलता की कुंजी भक्ति के मूल में निहित है, जिस पर उनकी कविताएं निर्भर करती हैं। जब औपनिवेशिक शासन के तहत भारत में आधुनिकता की शुरुआत हुई तो बहुत बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए और सभी भारतीय भाषाओं में गहरा बदलाव आया। इन परिवर्तनों ने हर भाषा में आकर्षक साहित्यिक आंकड़े दिए। हालांकि उनमें से कुछ की ही समकालीन प्रासंगिकता है। सुब्रह्मण्य भारती का असाधारण कवियों में से होने के कारण तमिल भाषा के आधुनिक लेखन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

उनकी रचनाएं देशभक्ति की भावना से भरी हुई तो थीं हीं और उन्हीं से प्रभावित होकर दक्षिण भारत में बड़ी संख्या में लोग आजादी की लड़ाई में शामिल भी हुए। उन्होंने अपनी पुस्तकों 'गीतांजलि', 'जन्मभूमि' और 'पांचाली शपथम्' में आधुनिक तमिल शैली का प्रयोग किया, जिससे उनकी भाषा जनसाधारण के लिए बेहद आसान हो गई। भारती कई भाषाओं के जानकार थे। उनकी पकड़ हिंदी, बंगाली, संस्कृत और अंग्रेजी सहित कई भारतीय भाषाओं पर थी। भारती का योगदान साहित्य के क्षेत्र में तो महत्त्वपूर्ण है ही, उन्होंने पत्रकारिता के लिए भी काफी काम और त्याग किया। उन्होंने 'इंडिया', 'विजय' और 'तमिल डेली' का संपादन किया। भारती देश के पहले ऐसे पत्रकार माने जाते हैं, जिन्होंने अपने अखबार में प्रहसन और राजनीतिक कार्टूनों को जगह दी।

भारती की कविताएं राष्ट्रीयता से लेकर अध्यात्म, महिला सशक्तीकरण से लेकर अस्पृश्यता तक कई विषयों पर आधारित हैं। उन्होंने 1909 में मार्ले-मिंटो सुधारों और 1910 में ब्रैकियन इंडियन प्रेस ऐक्ट के खिलाफ भी लिखा। ब्रिटिश सरकार ने उनके लेखन पर प्रतिबंध लगा दिया था, जिससे उन्हें फ्रांसीसी शासित पांडिचेरी में शरण लेनी पड़ी। इस निर्वासन के दौरान उन्होंने अपने सबसे प्रसिद्ध कार्यों का निर्माण किया, जैसे कि 'कण्णन पाट्टु', 'कुयिल पाट्टु' और 'पांचाली शपथम्'। यह उस समय के आसपास था जब वे दार्शनिक-आध्यात्मिक सुधारक, श्री अरविंद के करीबी परिचित बन गए, जिन्होंने पांडिचेरी में ही आधार स्थानांतरित कर दिया था। इसी दौरान भारती ने श्रीमद्भगवद्गीता और रवींद्रनाथ टैगोर की रचनाओं सहित महत्त्वपूर्ण कार्यों का अनुवाद करना भी शुरू किया। 1918 में उन्हें पांडिचेरी से बाहर निकलते समय गिरफ्तार कर लिया गया और अंग्रेजों को लिखित रूप में आश्वासन देने के बाद ही रिहा किया गया कि वे राजनीति से बाहर रहेंगे। वह अपनी गरिमा से समझौता किए बिना जीवन भर गरीबी में रहे। गौरतलब है कि तमिल साहित्य में एक नये युग की शुरुआत सुब्रह्मण्य भारती ने ही की थी। उनकी रचनाओं का अधिकांश

भाग देशभक्ति, भक्ति और रहस्यवादी विषयों पर संक्षिप्त गीतात्मक चौकी के रूप में वर्गीकृत किया गया है। देशभक्ति पर लिखीं गई कविताओं के कारण भारती को एक राष्ट्रीय कवि माना जाता है, जिसके माध्यम से उन्होंने लोगों को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने और देश की मुक्ति के लिए जोरदार काम करने के लिए प्रेरित किया। अपने देश पर गर्व करने के बजाय उन्होंने एक मुक्त भारत के लिए अपने दृष्टिकोण को रेखांकित किया। उन्होंने नवंबर 1904 में 'स्वदेशमित्रन्' में उप-संपादक के रूप में काम किया व सन् 1908 में सनसनी 'सुदेसा गीथंगल' प्रकाशित की। उन्होंने फ्रांसीसी क्रांति, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के तीन नारों को अपना आदर्श वाक्य घोषित किया। इससे तमिल पत्रकारिता ने एक नया मुकाम हासिल किया। अपने क्रांतिकारी अभिजन को प्रचारित करने के लिए भारती ने साप्ताहिक 'लाल कागज' में छापा था। राजनीतिक कार्टूनों को प्रकाशित करने के लिए उनके द्वारा संपादित 'इंडिया' तमिलनाडु का पहला पेपर था। उन्होंने 'विजया' जैसी कुछ अन्य पत्रिकाओं को भी प्रकाशित और संपादित किया। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जल्द ही एक वारंट पत्रिका के संपादक की गिरफ्तारी के लिए 'इंडिया' कार्यालय के दरवाजे पर इंतजार कर रहा था। यह 1908 में इस बिगड़ती स्थिति के कारण ही था कि भारती ने उस समय फ्रांसीसी क्षेत्र, पांडिचेरी, जाने का फैसला किया और 'इंडिया' पत्रिका प्रकाशित करना जारी रखा। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के प्रकोप से बचने के लिए ही भारती कुछ समय के लिए पांडिचेरी में रहे।

अपने निर्वासन के दौरान भारती को स्वतंत्रता आंदोलन के उग्रवादी दल के कई नेताओं जैसे अरविंद, लाजपत राय और वी.वी.एस. के साथ घुलने-मिलने का अवसर मिला। भारती के जीवन के सबसे लाभदायक वर्ष पांडिचेरी में बिताए दस वर्ष ही थे। पांडिचेरी से उन्होंने मद्रास के तमिल युवाओं को राष्ट्रवाद के मार्ग में चलने के लिए निर्देशित किया। इससे भारती के लेखन के प्रति अंग्रेजों का गुस्सा बढ़ गया, क्योंकि उन्हें लगा कि यह उन्हीं का लेखन है, जो तमिल युवाओं की देशभक्ति की भावना को प्रेरित और प्रभावित करता है। भारती ने 1919 में मद्रास में राजाजी के घर महात्मा गांधीजी से मुलाकात की। भारती ने नवंबर 1918 में कुड्डालोर के पास ब्रिटिश भारत में प्रवेश किया था और उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया था। जेल में भी उन्होंने अपना समय स्वतंत्रता, राष्ट्रवाद और देश के कल्याण पर कविताएं लिखने में बिताया।

युवावस्था के अपने शुरुआती दिनों में राष्ट्रवादी तमिल नेताओं जैसे व.अ. चिदंबरम्, सुब्रह्मण्य शिवा, मंडयम थिरुमलाचारी और श्रीनिवासचारी के साथ उनके अच्छे संबंध थे। इन नेताओं के साथ वे ब्रिटिश शासन के कारण देश के सामने आनेवाली समस्याओं पर चर्चा करते थे। भारती भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भाग लेते थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनारस सत्र (1905) और सूरत सत्र (1907) में उनकी भागीदारी और गतिविधियों ने उनके देशभक्ति के उत्साह ने कई राष्ट्रीय नेताओं को प्रभावित किया। भारती ने कुछ राष्ट्रीय नेताओं के साथ अच्छे संबंध बनाए रखे थे और राष्ट्र पर अपने विचारों को साझा किया व राष्ट्रवादी आंदोलन को मजबूत करने के लिए अपने सुझाव भी दिए। निस्संदेह, उनके इन्हीं सुझावों और राष्ट्रवाद के कारण कई राष्ट्रीय नेताओं का कायाकल्प किया। इस प्रकार उन्होंने भारत की स्वतंत्रता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारती जाति व्यवस्था के खिलाफ थे। अतः उन्होंने घोषित किया था कि केवल दो जातियां ही हैं–पुरुष व महिलाएं और इससे ज्यादा कुछ नहीं। उन्होंने खुद अपने पवित्र धागे को हटा दिया

था। उन्होंने कई दलितों को पवित्र धागे से भी सुशोभित किया था। उन्होंने दलितों के मंदिर प्रवेश की वकालत भी की थी। अपने सभी सुधार कार्यों के लिए उन्हें अकसर विरोध का सामना करना पड़ता था; लेकिन भारती बहुत स्पष्ट थे कि जब तक सभी भारतीय लोग भारत माता की संतान के रूप में एकजुट नहीं होंगे, वे स्वतंत्रता हासिल नहीं कर सकते। वह महिलाओं के अधिकारों, लैंगिक समानता और महिलाओं की मुक्ति में विश्वास करते थे। उन्होंने बाल विवाह व दहेज प्रथा का विरोध किया था और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन भी किया था।

एक कवि, पत्रकार, स्वतंत्रता सेनानी और समाज सुधारक के रूप में भारती ने न केवल तमिल समाज पर ही, बल्कि पूरे मानव समाज पर बहुत प्रभाव डाला। उन्होंने जो कुछ भी उपदेश दिया, उसका पालन भी किया और यहीं पर उसकी महानता प्रकट भी होती है। भारत की स्वतंत्रता के बारे में औपनिवेशिक काल के दौरान उनकी भविष्यवाणी उनके निधन के ढाई दशक बाद सच हुई। स्वतंत्रता के बाद के युग में एक गौरवशाली भारत के बारे में उनका दृष्टिकोण एक आकार लेता रहा है। भारती खुद के लिए नहीं, बल्कि लोगों और राष्ट्र के लिए जीते थे। इसीलिए उन्हें सम्मानपूर्वक 'भारती' कहा जाता है।

लेकिन भारती मूल रूप से एक साहित्यिक व्यक्ति थे। तमिल भाषा का एक लंबा साहित्यिक इतिहास रहा है, जिसमें महान काव्य समृद्धियां हैं। समकालीन चिंताओं को दूर करने के लिए परंपरा में डूबी एक पुरानी भाषा को स्थापित कराने में भारती की उपलब्धि है। भारती भूमि और भाषा के लेखन के लिए जाने जाते थे। उन्होंने पुराने गीतों से लोकप्रिय धुनों को नियोजित किया और उन्हें जनता के लिए नई सामग्री से भर दिया। उनके गीत देशभक्ति के विषयों से संबंधित हैं, जो हैं - मातृभूमि की महिमा और इसकी वर्तमान स्थिति, औपनिवेशिक शोषण व राष्ट्रवादी नेताओं को श्रद्धांजलि। भारती आजादी के बाद के दशकों में अधिक-से-अधिक लोकप्रिय हुए। एक सदी के बाद भी उनकी कविताओं की पंक्तियां और वाक्यांश आम भाषा में पारित हो गए हैं और उनका लेखन तब तक जीवित रहेगा, जब तक स्वतंत्रता की तलाश बनी रहेगी। उन्होंने कहा था कि सामाजिक सुधार के बिना राजनीतिक सुधार एक सपना ही बनकर रह जाएगा। कुछ शब्द जैसे pudmai kalam (नई पुदुमै कलाम महिला), puratchi (क्रांति), व पोडुवुडमै poduvudamai (साम्यवाद) तमिल भाषा में भारती के द्वारा ही लाए गए हैं। भारती की एक विस्तृत शृंखला थी। उन्होंने तमिल पत्रकारिता के लिए स्तंभ लेखन की शुरुआत की और समकालीन मामलों पर बड़े पैमाने पर टिप्पणी भी की। हास्य उनकी दूरदर्शिता थी—व्यंग्य, कटाक्ष, विडंबना और पैरोडी के साथ उन्होंने अपनी रचनाएं लिखीं। वह तमिल में आत्मकथात्मक रूप के अग्रदूत भी थे।

भारती की कविता ने एक प्रगतिशील, सुधारवादी आदर्श व्यक्त किया। उनकी कल्पना ही उनकी कविताओं की ताकत थी। विभिन्न पहलुओं में वे आधुनिक तमिल कविता के अग्रदूत थे। 'भारत हमारी भूमि' भारती की महत्त्वपूर्ण देशभक्ति कविताओं में से एक है, जो देशभक्ति को समृद्ध करती है। प्रतीकात्मक अर्थ और आध्यात्मिक सामग्री से परिपूर्ण है। यह पाठकों की कल्पना को पकड़ती है, बनाती है, श्रोता में मंत्रात्मक प्रभाव डालती है—

पराक्रमी हिमवंत हमारा है
उदार गंगा हमारी है

सेक्रेड उपनिषद हमारे हैं
पृथ्वी पर इनकी कहीं भी समानता नहीं है।

इस कविता में लयबद्ध प्रवाह ध्यान देने योग्य है। कविता को भारत के अतीत के गौरव और भारत की वर्तमान दृष्टि के साथ मिश्रित किया गया है।

वीर योद्धा यहां रहते हैं,
दिव्य संगीत यहां सुना गया है,
भारत की प्राचीन वस्तुओं का।

कविता कवि की भावनात्मक तीव्रता को खूबसूरती से प्रस्तुत करती है। कविता ही बता रही है कि अतीत कुछ बताना चाहता है।

अपनी मातृभूमि के बारे में इस प्रकार जब हम कविता पढ़ते हैं तो हम भारतीय होने पर गर्व महसूस करते हैं। 'भारत को प्रणाम' भारती द्वारा लिखित एक और प्रमुख देशभक्ति कविता है। स्वतंत्रता के कवि के रूप में उनकी क्षमताओं का सबसे बेहतरीन उदाहरण है। कविता में शब्द 'यह' एक प्रदर्शनकारी सर्वनाम है। भूमि की सुंदरता अद्‌भुत दिखती है। यह अपनी मातृभूमि के प्रति कवि के स्मरण पर केंद्रित है–

मां मैं आपको नमन करता हूं
मां मैं आपको नमन करता हूं।

भारती की कविताएं हमारा ध्यान उन अनगिनत महान पूर्वजों की ओर आकर्षित करती हैं, जिन्होंने अपने उत्कर्ष से भूमि को समृद्ध किया। विचार, मातृभूमि, लड़कपन, युवा महिला व आध्यात्मिक सत्य - ये सभी एक ही कविता में विलय हो गए हैं। उनकी कविताएं पढ़कर एक पाठक को संगीत, कविता, राग व गीत के आनंद पर विचार करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

यह, यह वह भूमि है जिसने हमें जन्म दिया है
और ज्ञान का प्रकाश दिया है
यह वह भूमि है जहां हमारी माताओं ने यह पहला शब्द लिखा है
और ज्ञान में वृद्धि हुई
मां मैं आपको नमन करता हूं
मां मैं आपको नमन करता हूं।

ऐसे समय में, जब देश विदेशी शासन की आड़ में पीड़ित था और केवल उम्मीद कर सकता था, उनकी कविताएं उनके पाठकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं। कविता में कवि इस भूमि का नागरिक होने पर गर्व महसूस करता है और कवि पूछता है कि क्या मैं इस भूमि की प्रशंसा नहीं कर सकता? यह देशभक्ति की भावनाओं की एक सुंदर अभिव्यक्ति है।

'जय भारत' एक और कविता है, जो देशभक्ति के आनंदमय और व्यस्त जीवन का जश्न मनाती है। निम्नलिखित पंक्तियां एक वास्तविक योद्धा की गुणवत्ता को दर्शाती हैं–

जीत हो
या हार और मौत

हम एकजुट खड़े हैं
और मंत्र जाप करते हैं, मां हम नमन करते हैं।

यह कविता अपनी सामग्री और रूप में अन्य कविताओं से अलग है, इस अर्थ में यह देशभक्ति से ओत-प्रोत और प्रतीकात्मक है। शब्द 'जीत' की पुनरावृत्ति स्वयं बताती है कि कवि इस कविता को जीत की प्यास में लिख रहा है। कविता संगीत की गुणवत्ता है। यह राजनीतिक मूल्यों को बढ़ाती है और एक पाठक के मस्तिष्क को मजबूत करती है। इस तरह कविता लिखना जब देश विदेशियों के चंगुल में पड़ा था, यह एक प्रोत्साहन गीत बन जाती है–

पुरुष, महिला, भगवान
आर्यावर्त के
कोरस में गाओ
यह उत्कृष्ट मंत्र, मां हम आपके सामने झुकते हैं।

हम देख सकते हैं कि कवि इन कविताओं को लिखते समय देशभक्ति की भावनाओं को उजागर कर रहे हैं–

स्वतंत्रता, स्वतंत्रता
हर कस्बे की बात है
यह अब निश्चित है
कि हम सब एक हैं
कोई भी अंतर्देशीय या समुद्र नहीं
जो हमें गुलामी में बांध सकेगा
केवल सर्वशक्तिमान ईश्वर को
हम नम्रतापूर्वक नमन करते हैं।

भारती ने महात्मा गांधीजी की प्रशंसा में एक कविता लिखी थी। गांधीजी को देखने के बाद उनके द्वारा बताया गया कि सुब्रह्मण्य भारती देश के एक रत्न हैं, जो सुरक्षित, संरक्षक और पोषित हैं। वे देशभक्त होने के साथ-साथ सार्वभौमिक पुरुष, भारत के उपासक व सर्वोच्च विश्व प्राणी थे। उनका मानना था कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता जीतना आत्मा की मुक्ति हासिल करने से कम नहीं है।

सुब्रह्मण्य भारती कहते थे कि किसी भी प्रकार के भय को दूर करो और एकल मन की भक्ति के साथ देश की सेवा करो और उसके प्रति पूर्ण समर्पण करो। उनके यही शब्द हम सभी को हमेशा प्रेरणा देते रहेंगे।

संदर्भ :

1. भारती, तमिल संगम. (Regd). (1970). *Essays on Bharathi.* कलकत्ता : ऐगल आर्ट प्रेस।
2. भारती, सुब्रह्मण्य एवं राजगोपालन, उषा. (2013). *Panchali's Pledge*. यू.के. : हेचेटी।
3. लाल, मोहन. (1992). *Encyclopaedia of Indian Literature: Sasay to Zorgot.* दिल्ली : साहित्य अकादेमी।
4. नटराजन, नलिनी एवं नेल्सन, इमानुएल समपथ. (eds.) (1996). *Handbook of Twentieth-century Litera tures of India.* कैलीफोर्निया : ग्रीनवुड पब्लिशिंग ग्रुप।

□

देशभक्ति काव्य का प्रतिमान

दीपिका विजयवर्गीय

भारतीय राष्ट्रीय चेतना के महानायक तथा हिंदी एवं तमिल के महाकवि व साहित्यकार सुब्रह्मण्य भारती बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। भारती एक स्वतः स्फूर्त कवि थे। उन्हें कागज, कलम या इस तरह के दूसरे तामझाम की जरूरत नहीं थी। उन्हें मिजाज की और शब्दों की भी दरकार नहीं थी। कविता में उनका मन रमता था। जहां चाहे, जब चाहे उनका मन गाने लगता था। ऐसा कोई भाव व रस नहीं, जिस पर उन्होंने लिखा न हो। भारती को नवरसों का नायक कहना ही ठीक होगा। प्रकृति, ज्ञान, वीरता, बालमन, स्त्री सौंदर्य, राष्ट्रप्रेम आदि अनेकानेक भावों को समेटे उनकी अनगिनत कविताएं मन को स्पर्श करती हैं।

भारतियार (भारती) को किसी एक पेशे या आयाम से नहीं जोड़ा जा सकता है। वे कवि, लेखक, संपादक, पत्रकार, समाज सुधारक, स्वतंत्रता सेनानी, मानवतावादी और एक सच्चे भक्त भी थे।

भारती उदार और विशाल हृदय के ऐसे देशभक्त थे, जिनके लिए देश का हित सर्वोपरि था। भारत मां की आजादी के लिए वह जुनून की हद तक भावुक थे। उनकी देशभक्ति और आजादी की प्यास से उत्पन्न उनकी कविताओं ने बच्चों, जवान, प्रौढ़ और महिलाओं में भी जोश भर दिया था–

"चमक रहा उतुंग हिमालय, यह नगराज हमारा ही है।
जोड़ नहीं धरती पर जिसका, वह नगराज हमारा ही है।

अमर ग्रंथ वे सभी हमारे, उपनिषदों का देश यही है।
गायेंगे यह हम सब इसका, यह है स्वर्णिम देश हमारा,
आगे कौन जगत् में हमसे, यह है भारत देश हमारा।

('यह है भारत देश हमारा', अनुवाद-अनिल 'जन विजय')

कविता की शक्ति उस बिजली की तरह थी, जो छूते ही झनझना देती है। इसी के माध्यम से जनसामान्य के बीच से वीर नायकों की उत्पत्ति हो सकती थी।

भारती के प्रभावशाली गीतों में (जिन्होंने भारत के भूगोल, उसकी संपन्न परंपराओं, वर्तमान

असंतोष और भव्य भविष्य का चित्रण किया था) निमिष मात्र में सबको मंत्रमुग्ध करने की क्षमता थी। जनमानस में ऊर्जा का संचार करने के उद्देश्य से राजनीतिक सभा को भारती के एक या दो गीतों से ही शुरू करना अनिवार्य हो गया था। अकसर ही भारती उन गीतों को खुद ही गाते और इसके कारण उनमें अद्भुत जीवंतता आ जाती। 1907 में वी. कृष्णस्वामी अय्यर ने भारती के देशभक्ति के तीन गीतों की 15 हजार प्रतियां मुद्रित कराकर बंटवाई। भारती की कविताएं सबको पसंद आईं। उसके बाद उनके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए और तत्काल ही बिक गए। 'स्वदेश गीतांजलि' में 14 गीत थे। संग्रह को प्रस्तुत करते हुए कवि ने लिखा–

''मैं इन पुष्पों को उस भारतमाता के चरणों में निवेदित करता हूं, जो शक्ति और एकता की प्रतीक है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि इन पुष्पों में सुगंध नहीं है। लेकिन क्या भगवान शिव ने निम्न जाति के एक व्यक्ति द्वारा फेंके गए पत्थरों को स्वीकार नहीं किया था? चाहे जो हो, भारतमाता मेरे इन पुष्पों की कृपापूर्वक स्वीकार करें।''[1]

भारती ने 1909 में 'जन्मभूमि' का प्रकाशन कराया। प्राक्कथन में उन्होंने लिखा–

''स्वतंत्रता के प्रकाश के प्रति अपने प्यास के कारण मैंने माता के चरणों में कुछ काव्य पुष्प समर्पित किये। यह मेरे लिए सुखद आश्चर्य की बात है कि भक्तों को वे अच्छे लगे। माता ने मेरी पूजा स्वीकार की। इसी वजह से मुझमें जो विश्वास पैदा हुआ है, उसी के नाते माता के चरणों में समर्पित करने के लिए कुछ फूल और लाया हूं।''[2]

भारती देशभक्ति की कविताएं अंतिम समय तक लिखते रहे। संभव है कि उनमें से कुछ कविताएं खो गई हों और कुछ ऐसी भी हों, जो आज तक प्रकाश में नहीं आ सकी हैं, लेकिन इसके बावजूद हमारे सम्मुख भारती की देशभक्ति की कविताओं का एक बड़ा संग्रह है, उनमें कुछ वर्णनात्मक हैं, कुछ व्यंग्यात्मक, कुछ आदर्शवादी और कुछ ऐसी भी हैं, जिनमें पीड़ा और पश्चाताप है। इस प्रकार उनमें पर्याप्त विविधता है, लेकिन हर कविता में भारती का स्पर्श स्पष्ट है–ऐसा स्पर्श, जिसमें आए दिन की सामान्य स्तर की बाजारू राजनीति अमर काव्य के चमकदार स्वर्ण में रूपांतरित हो गई है।

स्वतंत्रता उनके लिए एक स्वाभाविक प्यास, एक प्रारंभिक प्रेरणा और मनुष्य की आत्मिक आवश्यकता थी। भारती का धर्म देशभक्ति का वह धर्म था, जिसका समर्थन तिलक और श्री अरविंद जैसे देवात्माओं ने किया। वह धर्म सारे संसार के भ्रातरूप में समेटने की अस्पष्ट धारणा मात्र नहीं था। वह धर्म प्रतिबद्धता की एक स्थिति थी, जो मनुष्य में स्वाभिमान और चीजों को संपृक्त होने का बोध पैदा करके उसके व्यक्तित्व को विकसित करती है। 'वंदे मातरम्' और 'जयभारत' मंत्रों की तरह है, जिन्हें बेड़ियों में जकड़े एक वीर पुरुष ने अपनी पूरी शक्ति के साथ गाया था। 'वंदे मातरम्' घनीभूत आवेग और काव्यात्मक उत्कृष्टता का उदाहरण है–

आओ गाएं वंदे मातरम्
भारत मां की वंदना करें हम।

सुब्रह्मण्य भारती ने तमिलवासियों के हृदय में देशप्रेम की अलख जगाने का दायित्व लिया था। इस काम को उन्होंने तीन दिशाओं से शुरू किया।

उन्होंने भारत की भौगोलिक और आध्यात्मिक महानता का इस रूप में वर्णन किया कि लोग उसकी तरफ अनचाहे ही आकर्षित हुए। उनमें स्वतंत्रता के आदर्श की धारणा को इस प्रकार गुंफित कर दिया जाए, जिससे हर व्यक्ति निर्भीक हो जाए। भारत के महान पुरुषों के कार्यों को इस रूप में रखा जाए, ताकि लोग उन्हें जीवंत आदर्श के रूप में अपने सामने रखकर अपने दायित्व के प्रति सक्रिय हो सकें। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर भारती ने वर्णनात्मक कविताएं भी लिखीं। सुझावात्मक भी (जिनमें 'चाहिए' पर बल था), और ऐसी भी जिनमें शौर्य और वीरता का चित्रण था।

अपनी एक प्रारंभिक कविता में भारती ने भारतीयता के बोध का सफल अहसास करते हुए उन कारणों की ओर इशारा किया है, जो भारतमाता के प्रति उनके मन में प्रेम जगाते हैं–

यही है वह धरती जिसने देखा था
माता को, पिता को
उल्लास का जीवन बिताते
यही है वह धरती जहां अनगिनत पूर्वजों ने
जीवन को अंत तक जिया और विदा हुए।
जन्मे यहीं पर हजारों विचार
और पनपे और बढ़े इसी धरती पर।
इन सबको करते हुए स्मरण।

क्यों न प्रशंसा करूं मैं इस धरती की
और गाता रहूं बार-बार
मां तुम्हें प्रणाम है।
मां तुम्हें प्रणाम है।

देश के अपने अन्य बंधुओं के साथ भारती ने भी भारत की महानता और भारत के प्रति श्रद्धा और प्यार की भावना को अनुभूत किया। उनके शब्दों में इस विश्व में निश्चय ही भारत सबसे अच्छा देश है–

भारत सर्वोत्कृष्ट देश है।
निखिल विश्व में, अपना सर्वोत्कृष्ट देश है।
भारत सर्वोत्कृष्ट देश है।
नेकी में, तन की क्षमता में
स्वर्ण-मयूरी पतिव्रता में
भारत सर्वोत्कृष्ट देश है।

(अनूदित)(मूल शीर्षक- भारत नाडु)

जिन दिनों भारती अपने गीत लिख रहे थे, भारत के लोग दास वृत्ति के प्रभाव में न केवल

विदेशी माल के इस्तेमाल के आदी हो चुके थे, वरन् भारतमाता के प्रति भी यह सोचकर लोगों ने दुर्भाव पाल लिया था कि वह दुर्बल और पिछड़ी हुई है। मगर इसके बावजूद भारती ने भारतमाता का गुणगान कर देशवासियों में प्रेम जागृत करने का प्रयास किया–

यहां पर हो चुके हैं निर्भीक योद्धा
अनेक संतों ने इस धरती को पावन किया
यहीं पर सुना गया उत्कृष्टतम देवी संगीत
यहां उपलब्ध रही है सारी पावन वस्तुएं
इसी धरती से फूटा था ब्रह्मज्ञान का सोना
और यही पर दिया था बुद्ध ने धर्म का उपदेश
प्राचीन भव्यता का प्रतीक है भारत
अतुलनीय
आओ, हम करें उसका गुणगान।

भारती को पूर्ण विश्वास था कि जब कभी भारतमाता को आहत किया जाएगा, भारतवर्ष के लाखों-करोड़ों लोग एक स्वर में उत्तर देंगे। अपनी विभिन्नताओं में भी संयुक्त भारत के लिए स्वतंत्रता एक स्वर्णपुंज थी। बाधाएं और कठिनाइयां चाहे जितनी भी हों, एकता की रक्षा होनी चाहिए। राजनीति के क्षेत्र में उग्रपंथी वे जरूर थे, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने सामान्य रूप से प्रचलित उन विचारधाराओं के सामने कभी भी समर्पण नहीं किया, जिनका उद्देश्य विनाश था। उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति की उस कटु और विनाशकारी राह को पसंद नहीं किया। उन्होंने हमेशा एकता के भाव पर जोर दिया। यदि हम सब एक हैं तो जीत हमारी निश्चित होगी–

हम से है ताकत हमारी, विभिन्नता में एकता
शत्रु भय खाता है हमसे, एकजुटता हमारी देखता।

भारती अपने शत्रु तक से प्यार कर सकते थे। घृणा शब्द उनके लिए था ही नहीं। वे ईश्वर से यह प्रार्थना भी करते थे कि उनके शत्रुओं का हृदय परिवर्तन हो जाए। लेकिन वे उनसे घृणा नहीं करते थे। इस दृष्टि से वे गांधी के सिद्धांतों के सच्चे संदेशवाहक थे। यह ईश्वर के प्रति भारती की संपूर्ण आस्था ही थी, जिसने उन्हें घृणा के रोग और पाप से मुक्त रखा। वे अपने ईश्वर को तरह-तरह से प्रसन्न करने की कोशिश करते हैं, ताकि ईश्वर उनके देश को स्वतंत्र कर दे। देशभक्ति के अपने गीतों में वे जिस ईश्वर को बार-बार संबोधित करते हैं, वह कृष्ण है। वही देवपुरुष, जो कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में कौरवों और पांडवों की सेना के बीच खड़े हैं। सिर्फ वही भारत को बेड़ियों से मुक्त कर सकते हैं।

लेकिन भारती के स्वतंत्र भारत का निर्माण रक्तपात से नहीं शांतिपूर्ण तरीकों से ही होना था। वे साधन जनतांत्रिक थे, जिनका विकास सचेत इच्छा और काम करने के निश्चय से उद्भूत होने वाला था। उसके लिए लोगों को समझा-बुझाकर तैयार करने और एक अनुशासनबद्ध संगठन की जरूरत थी। भारती को अपने देश से बहुत प्यार था। इसीलिए वे कभी उस स्थिति को स्वीकार

नहीं कर सकते थे, जिसमें रक्तपात की गुंजाइश हो। 'भारतमाता नवरत्न मलई' में उनके क्रमबद्ध रूप में लिखे गए नवगीत हैं। उन गीतों में उन्होंने उस शांतिपूर्ण क्रांति की कल्पना की है, जो गांधीजी द्वारा शुरू की जाने वाली थी–

अभी तक युद्ध के प्यासे गलत लोग
पाप के चमकते मुकुट पहनकर
निर्लज्जता से कहते रहे कि
'शक्ति ही सही है'
शक्ति के कानून के पालन के लिए
युद्ध के उन स्वामियों ने हत्यारी सेवाएं रखीं।
आज भारत दूसरे देशों को
एक नयी राह दिखा रहा है
कवियों के राजा
विश्वप्रसिद्ध रवींद्र
मधु स्वर में कहते हैं
इस व्यापक विश्व में
धर्म के प्रतीक मोहनदास गांधी
सभी मनुष्यों के नेता हैं।
उनके नेतृत्व में हम भी
यह सिद्ध करने को तैयार है
कि हर क्षेत्र की तरह राजनीति में भी
धर्म की ही विजय होगी
तुरही से जय की धुन बजाओ।

यह सौभाग्य की बात है कि भारती की उस ऊर्जावान आवाज को हिंसक राजनीति के विरुद्ध उठाया गया। हिंसा को बढ़ावा देनेवाले वर्ग के आग्रह का मद्रास के लोगों पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। जिलाधीश ऐश की हत्या जैसी कुछ छुटपुट घटनाएं जरूर हुईं, लेकिन वहां के लोगों ने बंगाल और महाराष्ट्र की तरह व्यापक पैमाने पर संगठित ढंग से आतंक फैलाकर अपने को संतोष नहीं दिया। कट्टर उग्रपंथी होने के बावजूद भारती ने आतंकवादी कार्यक्रमों को बढ़ावा नहीं दिया। उन्होंने यही ज्यादा अच्छा समझा कि लोगों को भारत के गौरवशाली अतीत के बारे में आश्वस्त किया जाए, ताकि वे वर्तमान को एक स्वर्णयुग के रूप में पुनर्निर्मित करने की प्रेरणा पा सकें। लेकिन उस समय की स्थिति बहुत निराशाजनक थी, क्योंकि जनता के अधिसंख्य लोग या तो इसके प्रति उदासीन थे या विदेशी भाषा और विदेशी रहन-सहन के गुलाम हो चुके थे। भारती ने उन्हें उठाने की कोशिश की, ताकि वे पुनः अपना स्वाभिमान प्राप्त कर सकें। श्री ए. श्रीनिवास राघवन ने भी कहा है–

''भारत के स्वतंत्रता संग्राम में राजनीति के लोग विदेशी नियम और कानून तथा उसकी

अस्त्र शक्ति से लड़ रहे थे तो भारती दूसरे मोर्चे पर थे। उनकी लड़ाई अधिक भयंकर थी; क्योंकि वह आत्मा के शुद्धिकरण की थी। उन्होंने अपने बंधुओं को ऐसी दृष्टि दी जिसके अभाव में लोग बरबाद हो जाते हैं। उन्होंने उनके मन में एक आकांक्षा भी जगाई, जिसमें हर दृष्टि सक्रियता का रूप लेती है, क्योंकि इच्छा के बिना दृष्टि एक निष्क्रिय स्वप्न के सिवा और कुछ नहीं होती।'' भारती के शब्दों में–

हृदय अब अधिक सह नहीं सकता
देखो।
इच्छाहीन यह जन-समूह
भयाक्रांत।
आह! ऐसा कुछ भी नहीं
जिससे के भयभीत न हों
उन्हें लगता है
उस पेड़ पर, इस ताल में
हिल रही है एक शक्ल भूत की
चीखते, चिल्लाते हैं
भय की अपनी धारणा से
मरते हैं ये कौन?

स्वाधीन भारत की कल्पना उन्होंने एक ऐसे जनतांत्रिक देश के रूप में की थी, जो अपने आप में समर्थ उत्तरदायी तथा विवेकशील व्यक्तियों से बनता है। इस विषय पर उनकी सर्वोत्कृष्ट कविता है–'भारत : भविष्य की एक दृष्टि', इसमें आह्वान है कि देशवासियों को घृणा, पराजय और भय का विनाश करके एक नये भारत का निर्माण करना है–

हम घूमेंगे चांद से दिखते हिमशिखरों पर
जाएंगे हमारे पोत सारे समुद्रों में
लाकर पानी बंगाल की खाड़ी से
सीचेंगे हम दक्षिण भारत की धरती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती महज कल्पनालोक में विचरण करनेवाले कवि ही नहीं, बल्कि निर्माण में विश्वास करनेवाले देशभक्त भी थे।

भारती ने भारत के अतीत की भव्यता की बात अपने श्रोताओं से निरंतर की–कभी उनके कानों में फुसफुसाकर और कभी जोर से सुनाकर। देश को उन्होंने उनके सामने अनुभवों की एक समग्र इकाई के रूप में, मानव और देवता के एक संयुक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया, लेकिन इसी के साथ उन्होंने अपने बंधुओं को स्वाधीनता और स्वतंत्रता के अर्थ का अंतर समझने और उसकी गुत्थियों को सुलझाने की चेष्टा की। भारती के लिए 'स्वतंत्रता' एक पवित्र और प्रकाशमान शब्द है। उनकी स्वतंत्रता अपने आप में संपूर्ण है। उसके साथ राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जैसे

विशेषण नहीं जोड़ना है। वह स्वतंत्रता है सारे बंधनों से मुक्त होने की आंतरिक स्वतंत्रता। जैसे पक्षियों को स्वतंत्रता, लहरों की स्वतंत्रता। उससे बढ़कर कोई चीज नहीं है। व्यक्ति के लिए बड़े से बड़ा बलिदान उसके उपयुक्त है। राजनीतिक स्वतंत्रता तो एक तात्कालिक कदम था। उसका अंतिम आदर्श था–'मनुष्य' को स्वतंत्र करना। देशभक्ति की भावना का प्रयोग जब किसी स्थानिक परिस्थिति पर विजय पाने के लिए भोंड़े ढंग से किया जाता है, तब वह कभी-कभी आत्मघातक अवज्ञा का भी रूप ले लेता है, लेकिन जब उस भाव या आवेग का उपयोग निरंतरता के साथ किसी व्यापक परिस्थिति पर काबू पाने के लिए होता है, तब वह स्वतंत्रता की वास्तविक स्थिति के पास पहुंचाता है। स्थानिक देशभक्ति ही विकसित होकर सार्वदेशिक स्वतंत्रता के आदर्श का रूप लेती है। इसीलिए वह माता से स्वतंत्रता की प्रार्थना करते हैं–

अंगीठी के पास बैठने के सुख से
वंचित करके

मुझे छोड़ दिया गया है गहरे अंधकार में
माता, मुझे विवश किया गया लेने को
खुशी के एक क्षण के बदले
उदासी के पहाड़-से दिन

माना, करोड़ों विपत्तियों ने
मुझे क्षत-विक्षत करके नष्ट कर दिया
पर, ओ मेरी माता स्वतंत्रता,
मैं, छोडूंगा नहीं तुम्हें पूजना।

एक कवि की अंतर्दृष्टि से भारती ने गांधी की शक्ति को समय से पहले ही देख लिया। पांच पदों में लिखी गई गांधी संबंधी उनकी कविता में महात्मा की बाद की उपलब्धियों का उल्लेखनीय पूर्वानुमान है। यह कविता भारती की देशभक्ति की कविताओं में मोती की तरह विशिष्ट है–

तुम्हारे पास ऐसी जड़ी-बूटियां हैं
कि गेहुंअन के काटे का जहर
उतर जाता है।

तुम एक ढाल हो किसी भी आक्रमण के विरुद्ध।
किन शब्दों में प्रशंसा करें तुम्हारी?
महान पुरुषों और अकिंचन भक्तों ने
स्वतंत्रता के धार्मिक तरीकों का जो
उपदेश दिया,

उसके वास्तविक मूल्य का बोध करके
तुमने युद्ध और हत्या के रास्ते
को वर्जित किया।

भारती एक संयुक्त भारतीय संघ में विश्वास करते थे। स्वतंत्रता के प्रति उनमें एक नशा था। आजादी मिलने से पहले ही सुब्रह्मण्य भारती ने अपनी कविता में घोषणा की–

आओ नाचें, गाएं हम
यों कहकर गाएं गीत
कि आनंदमय स्वतंत्रता मिल गई।

सच्चे देशभक्त, कवि, पत्रकार, लेखक, स्वतंत्रता सेनानी सुब्रह्मण्य भारती का जीवन व काव्य प्रेरणा स्रोत रहेंगे। उनकी कविताएं हमारे मानस पटल पर सदैव अंकित रहेंगी।

संदर्भ ग्रंथ :

1. पांडेय, विनोद चंद्र एवं सुंदरम्, डॉ. एन. (संपादक). (1992). *सुब्रह्मण्य भारती.* लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान. पृ. 33
2. कुमार, प्रेमानंद. (1997). (अनुवाद–रमेश बक्षी). *सुब्रह्मण्य भारती.* नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया. पृ. 60

□

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

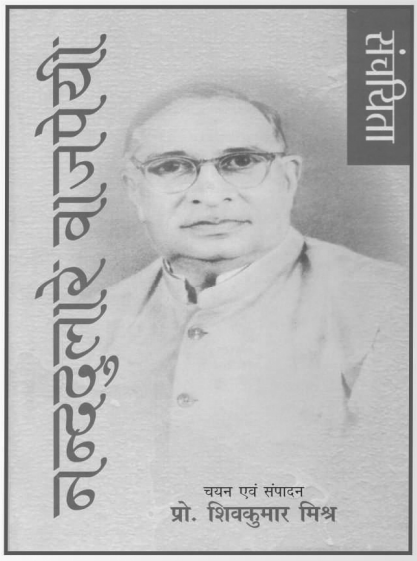

मूल्य : 1500

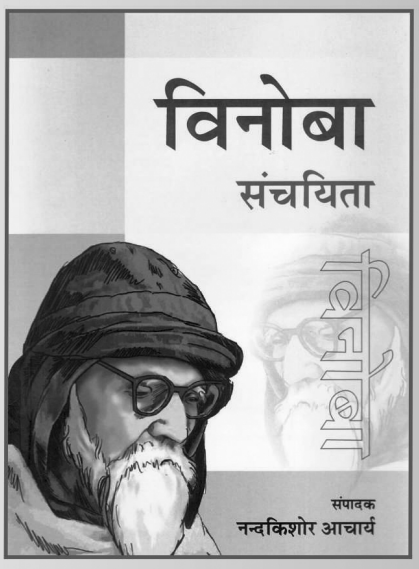

मूल्य : 900

सुब्रह्मण्य भारती का भारत

कृष्ण कुमार सिंह

तमिल साहित्य में आधुनिक चेतना से संपन्न काव्य के प्रणेता के रूप में सुब्रह्मण्य भारती अप्रतिम हैं। भारती के मानस में कई तरह की पीड़ा है। वह कवि ही क्या, जो अपने आसपास के सामाजिक जीवन में व्याप्त दुःखों से दुःखी न हो और जो उनसे मुक्ति के मार्ग की खोज न करे! लेकिन मार्ग की खोज से पहले सामाजिक जीवन के दुःख के स्वरूप को, उसकी प्रकृति को और उसके कारणों को जानना आवश्यक है। स्मरणीय है कि सुब्रह्मण्य भारती का समय भारत पर औपनिवेशिक सत्ता की जकड़बंदी का समय है। उसके अंतर्गत चौतरफा शोषण-उत्पीड़न के भंवरजाल में जकड़ा जन अपने को बेबस पाता था। ऐसे में उसका जीवन-बोध सहज नहीं रह गया था। गहरी समाज-चिंता से प्रेरित कवि का दायित्व निभाते हुए सुब्रह्मण्य भारती इस दौर में जिन गीतों-कविताओं की रचना करते हैं, उनमें उनका देशानुराग सतह पर तैरता नहीं दिखता, गहरी अंतर्धारा के रूप में उपस्थित रहा है। उनकी निगाह में जो भारत है, उसकी झलक 'वर्तमान भारतीय' नामक कविता में कुछ इस प्रकार मिलती है–

देख सिपाही, चौकीदार, दिल धड़क-धड़क जाएंगे।
कोई ले बंदूक चले तो घर में छिप जाएंगे।
देखें यदि अति दूर सुसज्जित किसी व्यक्ति को आते।
भय के मारे हाथ जोड़कर स्वयं खड़े हो जाते।
सबके आगे भीगी बिल्ली बन जाया करता है।
देख आज के जन की हालत, हृदय फटा जाता है।[1]

देखा जाना चाहिए कि वे कौन लोग हैं, जो इस तरह डरे हुए हैं और किससे डरे हुए हैं? इतना डरा-सहमा समाज वास्तविक है या कवि कल्पना की उपज मात्र? इसका कोई संबंध तत्कालीन समाज और व्यवस्था से है या नहीं, है तो किस तरह का है?

अंग्रेजी उपनिवेशवादी व्यवस्था में हर तरह से पिसती-कराहती जनता का प्रामाणिक चित्र उक्त कविता में अंकित करने में कवि सफल रहा है। सिपाही, चौकीदार और सुसज्जित व्यक्ति को देखकर दिल क्यों धड़कने लगता है? बंदूक किस बात का सूचक है? अंग्रेजी राज में दमनकारी अमला तंत्र का यही रुतबा था। गौरतलब है कि यह केवल गांवों के निवासियों की फटेहाल जिंदगी का चित्रण नहीं, सामान्य भारतीय जन की स्थिति का दारुण यथार्थ है, जो कवि के मन में करुणा और

विक्षोभ उत्पन्न करता है। कवि यहीं रुक नहीं जाता, वह कुछ और निकट जाकर देखता है–

हृदय फटा जाता है, पर मैं घृणा नहीं कर पाता।
हाय! अभागों को न अन्न, भरपेट कभी मिल पाता।
ये कारण जानने के लिए यत्न नहीं करते हैं
जहां देखिए है अकाल, सब तड़प-तड़प मरते हैं।
उनके कष्ट-हरण का पथ ही दृष्टि नहीं आता है।
देख आज के जन की हालत, हृदय फटा जाता है।[2]

भरपेट भोजन नहीं पानेवाले भूखे-नंगे लोग किसी भी तरह से सामान्य जीवन नहीं जी पाते हैं। तत्कालीन बहुसंख्यक भारतीय जन की यह व्यथा-कथा अत्यंत मर्मस्पर्शी है। ऐसे अभागे लोगों को कुछ बोध तक नहीं कि उनकी गरीबी और जहालत का कारण क्या है, यह सोचकर कवि और व्याकुल होता है। 'जहां देखिए है अकाल' से स्थिति की भयावहता मूर्त रूप में सामने आती है। तुलसी की पंक्ति अनायास याद आती है- 'कलि बारहिं बार अकाल परै, बिन अन्न दुःखी सब लोग मरै।' कवि के निकट अतीत के संवेदनशील और जागरूक कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र की अनेक काव्य-पंक्तियां भारती की कविता से गुजरते हुए पाठक के मानस में गूंजने लगती हैं–

अब जहं देखहु, तहं दुःखहिं दुःख दिखाई।
* * * *
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई?[3]

सुब्रह्मण्य भारती भारतेंदु की पीठ पर आते हैं, उनकी मृत्यु के तीन वर्ष पहले इनका जन्म होता है। बनारस के भारतेंदु और सुदूर दक्षिण के भारती दोनों के व्यापक अनुभवलोक में अत्यंत गहरा संबंध कई अर्थों में व्यंजक है। जिस भारत जन की दुर्दशा से भारतेंदु द्रवित होते हैं, उसी से भारती भी। दोनों के नाम में ही भारत नहीं है, उनकी कृतियों के शीर्षक में भी भारत विद्यमान है 'भारत दुर्दशा' और 'वर्तमान भारतीय'। यह कोई आकस्मिक बात नहीं। दोनों राष्ट्र कवियों की चेतना का धरातल एक है। अपने समाज की ऐसी दुर्दशा उन्हें कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने को प्रेरित करती है, आगे बढ़कर दीन-हीन जन के आंसू पोंछने को उद्यत करती है। यह भी आकस्मिक बात नहीं कि दोनों कवियों की दृष्टि में केवल वर्तमान समाज नहीं है, उसका गौरवशाली और उन्नत अतीत एक क्षण के लिए भी ओझल नहीं हो पाता। यही कारण है कि जहां भारतेंदु राम, युधिष्ठिर, भीम, कर्ण, और अर्जुन की छटा की चर्चा करते हैं, वही भारती मुग्ध भाव से जिस भारत की चर्चा करते हैं, वह सचमुच गर्व करने योग्य है–

चार हजार करोड़ से अधिक रंग-बिरंगी मधुर कलाएं-
जनमीं जिस भारतभू पर, जिन पर सब जग में गर्व मनाएं।
उसमें व्यक्ति विवेकहीन पशु-सा जीवन जीता है।
देख आज के जग की हालत, हृदय फटा जाता है॥[4]

अतीत और वर्तमान को एक साथ रखकर भारती गहरे कंट्रास्ट की रचना करते हैं। वर्तमान दुरवस्था उन्हें अतीत की मधुर कलाओं के प्रांगण में ले जाती है और उनके जागरूक मानस को गहरे विक्षोभ से भर देती है। यहां भारती किसी दैवी शक्ति का उल्लेख से बचते हैं, जबकि भारतेंदु 'दिन दिन दूने दुःख ईस देत' कहकर उसको भी स्मरण करते हैं। दोनों कवि आधुनिक भावबोध से संपन्न हैं, लेकिन उक्त प्रसंग में भारती भारतेंदु से दो-चार कदम आगे नजर आते हैं। यह स्वाभाविक ही है। आधुनिकता के संदर्भ में देश-काल और रचनाकार के व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य के वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी यह बात विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

सुब्रह्मण्य भारती स्वामी विवेकानंद के विचारों से काफी प्रभावित थे। अमेरिका और यूरोप में भारतीय धर्म-साधना और संस्कृति का झंडा बुलंद कर स्वदेश लौटे विवेकानंद ने संपूर्ण देश में एक नवीन स्फूर्ति पैदा कर दी थी। क्षेत्र और भाषा की दीवारें लांघकर बड़ी संख्या में युवजन उनके साथ चलने को संकल्पबद्ध हो रहे थे। दमनकारी विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए देश के युवकों में जिस तरह की शारीरिक शक्ति और आत्मबल की आवश्यकता थी, उसकी प्राप्ति में वे कैसे सफल हों, इस दिशा में विवेकानंद बराबर चिंतन और लोगों के साथ विचार-विमर्श कर रहे थे। उनके द्वारा रामकृष्ण मिशन की स्थापना इसकी जीवंत मिसाल है। सुब्रह्मण्य भारती न सिर्फ विवेकानंद के व्यक्तित्व और विचारों से प्रभावित थे, बल्कि इससे कहीं गहरे स्तर पर हृदय में उनको बसाए हुए थे। इंग्लैंड में विवेकानंद के प्रभाव में आकर कई लोग उनके शिष्य बने थे। ऐसे ही शिष्यों में सिस्टर निवेदिता थीं, जो अपने गुरु के हृदय में शोकग्रस्त लोगों के प्रति गहरे करुणा भाव की उपस्थिति और हर तरह के बंधन से देश की मुक्ति हेतु बलवती कामना के दर्शन कर अपने को धन्य समझती थीं। भारती निवेदिता देवी के व्यक्तित्व से अच्छी तरह परिचित-प्रभावित थे। इसलिए अवसर मिलते ही उनसे मिलने कलकत्ता चले गए थे। सन् 1905 में काशी में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन में सुब्रह्मण्य भारती ने भाग लिया था। वापस आते समय उन्होंने कलकत्ते में निवेदिता के दर्शन किए। उनसे ज्ञानोपदेश पाकर वे प्रसन्न ही नहीं हुए, बल्कि उन्हें अपने गुरु के रूप में मन से स्वीकार भी किया।[5]

भारती की एक कविता है 'जानेवाला भारत : आनेवाला भारत।' कविता की विषयवस्तु स्पष्ट है। देश के नव विहान की कामना से प्रेरित इस कविता में उन्होंने एक ओर वर्तमान भारत तो उसके बरक्स स्वाधीन भारत को रखकर दोनों की समीक्षा की है। उन्हें लगता है कि स्वाधीनता अब ज्यादा दूर नहीं है, उनका सपना पूरा होनेवाला है और उपनिवेशवाद का शिकंजा टूटने वाला है। 'जानेवाला' पद असाधारण रूप से व्यंजनापूर्ण है। कविता के दोनों अंशों की कुछ पंक्तियां देखें–

मान और अपमान-शून्य कुत्ते के जैसा
आज तुम्हारा जीवन भारत! जा जा जा।
भय के कारण कर न सकें कृतज्ञता ज्ञापित
चाटुकारिता करने वाले, जा जा जा।

बीते जीवन के असत्य को सत्य मानकर
उसकी मुक्त प्रशंसा करते, जा जा जा।
जगत्प्रसिद्ध सत्य को प्रबल असत्य बताकर
दुनिया के सम्मुख ला धरते, जा जा जा।
दुनिया की अनगिनत भाषाओं को सीखोगे
किंतु न सीखोगे निज भाषा, जा जा जा।[6]

'जा जा जा' सामान्य शब्दावली नहीं है। इसकी त्वरा-तीव्रता वर्तमान भारतीय समाज की दुर्दशा से कवि के गहरे विक्षोभ का अत्यंत प्रभावशाली अंकन की सूचक है। परवर्ती हिंदी साहित्य में छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की शब्दावली 'द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र' के मुकाबले भारती की यह व्यक्ति अधिक मार्मिक है और झन्नाटेदार भी। देशहित की प्रबल कामना से उद्वेलित कवि के हृदय की वास्तविक अनुभूतियों की अत्यंत सघन अभिव्यक्ति उपर्युक्त पंक्तियों को अर्थगर्भ बना देती है। भय के कारण कृतज्ञता ज्ञापन तक में असमर्थता, सत्य-असत्य का विवेक लुप्त हो जाना, किसी भी देश और समाज के पतन की पराकाष्ठा है। 'दुनिया की अनगिनत भाषाओं को सीखोगे/किंतु न सीखोगे निज भाषा'—कोढ़ में खाज यह है। पुनः याद आते हैं भारतेंदु, 'बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल' और 'स्वत्व निज भारत गहे।' परदेशी से भय, उसकी चाटुकारिता भी और उसकी भाषा-भूषा के प्रति दीवानगी की हद तक ललक भी अंग्रेजी राज में पिसते-कराहते भारतीय समाज के जीवन-यथार्थ की ऐसी पकड़ और उसकी इतनी सशक्त अभिव्यक्ति-क्षमता भारती को राष्ट्रीय भावधारा के भारतीय कवियों में विशिष्ट दर्जा प्रदान कर देती है। सामाजिक अंतर्विरोधों की गहरी समझ से ही कवि के अंदर विवेक जगता है। इसी से कविता में विश्वसनीयता आती है, जो पाठक के हृदय में अपनी जगह बना लेती है—

उपर्युक्त कविता के दूसरे अंश की बानगी दर्शनीय है—

कांतियुक्त आंखोंवाले, आ आ आ।
भारत! सुदृढ़ हृदय वाले, तू आ आ आ आ।
अमृत के समान मृदुभाषी, आ आ आ।
वज्र स्कंधयुक्त भारत, तू आ आ आ।
भारत परम शुद्ध मतिवाले, आ आ आ।
देख नीचता खौल उठेगा, आ आ आ।
पिघल उठेगा देख दीनता, आ आ आ।
वृषभ चाल वाले भारत, तू आ आ आ।[7]

उपनिवेशकालीन भारत की वास्तविक दशा से परिचित कोई भी व्यक्ति कविता की इन पंक्तियों के मर्म को आसानी से समझ सकता है। भारती जिस रूप में स्वाधीन भारत को देखना चाहते हैं, जिस व्याकुलता और उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और जिस निश्चल उत्साह का स्वर मुखरित कर रहे हैं, वह एक तरह से अपने भीतर भारतीय चित्त और मनीषा के सत्त्व को समाहित

किए हुए हैं। उनके कंठ से निःसृत ध्वनियां वेदोपनिषदकालीन ऋषियों-मुनियों, विचारकों से लेकर आधुनिक काल के महान भारतीय मनीषियों स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, रवींद्रनाथ टैगोर के चिंतन से अनुप्राणित हैं। महान भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की तेजस्विता से रस ग्रहणकर भारती ने अपनी कविता को जिस धरातल पर प्रतिष्ठित किया है, वह स्पृहणीय है। सुदीर्घ काल से अविच्छिन्न रूप में प्रवहमान भारत की सांस्कृतिक परंपरा के मूल स्वर भारती के काव्य में सहजता से मुखर हुए हैं। परंपराभुक्त प्रसंग और विषय उनकी रचनाशीलता का प्रमुख उपजीव्य है, प्रेरणास्रोत है। भारतीय परंपरा की जीवंतता इस बात में निहित है कि वह नई चुनौतियों का सामना नवीन जीवन-संदर्भों में बखूबी कर लेती है। अप्रासंगिक हो गए अंशों को छोड़कर वह आगे बढ़ जाती है और सार्थक-संगत अंशों का सहारा लेकर कर्म-पथ पर सन्नद्ध हो जाती है। संग्रह और त्याग के लिए अपेक्षित विवेक उसके पास है। जागरूक कवि-विचारक इसी के बल पर अपने समकालीन समाज को सचेत करते हैं, गतिशील बनाते हैं। सुब्रह्मण्य भारती इसी कोटि के रचनाकार हैं। इसी कारण उनकी कविता अंग्रेजी राज की राजनीतिक-आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप शिथिल पड़ रहे भारतीय समाज में सार्थक हस्तक्षेप करती है। इस दृष्टि से यह शंखनाद अपनी परंपरा से प्राप्त दृष्टि और ऊर्जा के साथ कवि-प्रतिभा के मणिकांचन योग से संभव हो पाया।

स्वाधीनता की कामना भारती की कविताओं की प्राणधारा है। उनकी दृष्टि में स्वाधीनता का अर्थ विदेशी राज से मुक्ति मात्र नहीं है, वह है स्वराज। यही उनका काम्य है। उन्होंने देखा है कि भरपूर मेहनत-मशक्कत करने पर भी लोग भूखे-नंगे रहने को अभिशप्त हैं। उन्हें मेहनत का फल नहीं मिलता, उसका उपभोक्ता कोई और है। वही देश का असली शत्रु है। उससे लड़ना और उसे पराजित करना पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। वह एकता के बिना संभव नहीं। इसलिए एकताबद्ध होने का आह्वान उन्होंने कई कविताओं में किया है। 'सब शत्रुभाव मिट जाएंगे' नामक कविता में यह भाव विशिष्ट अंदाज में व्यक्त हुआ है। वे लिखते हैं–

भारत देश नाम भयहारी, जन जन इसको गाएंगे।
सब शत्रुभाव मिट जाएंगे?
विचरण होगा हिमाच्छन्न शीतल प्रदेश में,
पोत संतरण विस्तृत सागर की छाती पर।
होगा नव-निर्माण सब कहीं देवालय का
पावनतम भारतभू की पवित्र माटी पर।
* * * *
खूब उपजाता गेहूं गंगा के कछार में,
तांबूल अच्छे हैं कावेरी के तट के,
* * * *
ऐसे मंत्र बनेंगे कांचीपुरम् बैठकर
काशी के विद्वज्जन का संवाद सुनेंगे।

* * * *

इतना सूती वस्त्र यहां निर्माण करेंगे
वस्त्रों का ही एक पहाड़ बना देंगे हम।

* * * *

मात्र जातियां दो, नर-नारी अन्य न कोई,
सद्वजनों से मार्ग प्रदर्शक मात्र श्रेष्ठ हैं।[8]

अपने देश-समाज को पीड़ामुक्त, भयमुक्त देखने की यह कवि-कामना कितनी निर्मल है, यह पाठक अनुभव कर सकता है। कवि अपने देश के चौतरफा विकास का सपना देखता है। हर महान कवि ऐसा सपना देखता है। उपर्युक्त पंक्तियों में कवि के गहन पर्यवेक्षण और अपने देश के इतिहास-वर्तमान की गहरी समझ का प्रमाण पग-पग पर मिलता है। भयाक्रांत, दुर्दशाग्रस्त समाज को निर्भयता का मंत्र दिए बिना, उसकी शक्ति का एहसास कराए बिना, उसे विजय-पथ पर ले चलना कठिन है। आपसी वैर-भाव इस मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है, श्रेष्ठताजन्य अहंकार और हीनताजन्य उदासीनता बड़े अवरोध हैं। इसलिए कवि बार-बार इनसे बचने, इनको दूर करने पर बल देता है। उसे अपनी शक्ति का बोध है और अपनी कमजोरियों का भी। यह बोध ही उसकी वास्तविक ताकत है, इसी कारण वह कभी दुविधा में नहीं पड़ता। उसे गहरा विश्वास है कि सच्चे मन से आगे बढ़ने पर सफलता अवश्य मिलेगी। उसकी चिंता और उसके चिंतन के केंद्र में संपूर्ण भारत है। आसेतु हिमालय। देश के भूगोल से उसका सघन परिचय है, उसके कण-कण से लगाव है। उल्लेखनीय है कि इसके अभाव में देशभक्ति का कोई अर्थ नहीं। इस प्रसंग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के विचार अत्यंत मूल्यवान हैं, जहां वे देशप्रेम की कसौटी निर्धारित करते हैं। उनके शब्दों में–''यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सबको वह चाहभरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके वह विदेश में आंसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं सुनते कि चातक कहां चिल्लाता है, जो आंख भर यह भी नहीं देखते कि आम प्रणय-सौरभपूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं, जो यह भी नहीं जानते कि किसानों के झोपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देशप्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि, 'भाइयो! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?''[9] कहना न होगा कि देशप्रेम के इस निकष पर सुब्रह्मण्य भारती का काव्य खरा उतरता है।

भारती के हृदय में देशानुराग भरा हुआ है। वे अपनी कविताओं मे प्रायः तीस कोटि जनों की, साठ कोटि हाथों की चर्चा करते हैं। उन सबके लिए उनके मन में अपार स्नेह है। उनके सुखमय जीवन की चिंता उनकी अपनी चिंता है। इसलिए स्वाधीनता की अवधारणा में संपूर्ण भारतीय जनता की वास्तविक मुक्ति समाहित है। भारती के सपने का भारत कैसा होगा, उसकी एक झलक उपर्युक्त कविता में सहज ही मिल जाती है। देश के किस हिस्से में गेहूं, किसमें धान

प्रचुरता से उपजता है, कहां पान की उत्तम पैदावार होती है और कहां सोने की खान छिपी हुई हैं, इसका आत्मीय उल्लेख कविता में किया गया है। वे ऐसे यंत्रों के निर्माण की बात करते हैं, जिनके माध्यम से उत्तर और दक्षिण के लोग एक-दूसरे से सहज संवाद कायम कर सकेंगे। वे 'खीले से वायुयान' तक के निर्माण का सपना ही नहीं देखते, उसके लिए संकल्पबद्ध भी होते हैं। उनका उत्साह देखते बनता है–

हम उड़ान भर चंद्रलोक में चंद्रवृत्त का
दर्शन करके मन को आनंदित पाएंगे।[10]

कवि की ऐसी कामना और उसकी पूर्ति हेतु उसका संकल्प कितना मानवीय और सुंदर है! उन्हें मालूम है कि अंग्रेजों के आने के बाद हमारे देश के उद्योग-धंधों का नाश हो गया। देशी उद्योग-धंधों को नष्ट कर उन्होंने हमारी आत्मनिर्भरता को भारी धक्का पहुंचाया। भारती अंग्रेजों के इस दावे को स्वीकार नहीं करते कि उन्होंने यहां औद्योगिक विकास किया। उनका मत है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद ही हमारा वास्तविक औद्योगिक विकास होगा। चंद्रलोक की यात्रा का सपना भारती बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में देख रहे थे, 'औद्योगिक शैक्षणिक शालाओं' की स्थापना के बारे में सोच रहे थे, यह जानकर रोमांचित हो आता है। अपने देश के जन-जन को प्रेम करनेवाले कवि भारती का चिंतन देश-काल की सीमा को पारकर आज अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। कविता की अंतिम पंक्तियां हैं–

चिर सुकुमारी अपनी मधुर तमिल वरिष्ठ है।
इसके अमृत के समान वचनों को हम अपनाएंगे।[11]

अपनी भाषा और अपने साहित्य का सगर्व स्मरण वस्तुतः अपनी पूरी सांस्कृतिक परंपरा के प्रति गहरे प्रेम और ममत्व का कृतज्ञतापूर्ण स्मरण है। यह अपनी मूल्यवान विरासत के प्रति अगाध श्रद्धा और उसकी दाय से कृतकृत्य होने का प्रमाण है। अपनी भाषा के लिए जिन विशेषणों का कवि ने साभिप्राय प्रयोग किया है, वे कविता के इस अंश को अत्यंत महत्त्वपूर्ण बना देते हैं। अंग्रेजी राज में भारतीय भाषाओं की घोर उपेक्षा कर लागू की गई शिक्षा-पद्धति में अंग्रेजी एक प्रकार से सर्वफल-दात्री देवी के रूप में विराजमान थी, देश का शिक्षित वर्ग बहुत दूर तक उसी की आराधना में अपने को धन्य समझता था। ऐसे परिवेश में कवि अपनी भाषा को लेकर हीनता ग्रंथि का शिकार नहीं, वह तो उसकी वरिष्ठता की घोषणा स्वाभिमान के साथ करता है। हजारों वर्षों की विकास-यात्रा करनेवाली तमिल भाषा-असंख्य भाव-रत्नों से सुसज्जित भाषा में महान आलवार संतों और नायनार भक्त कवियों की असाधारण प्रतिभा की चमक समाहित है, इसका स्मरण कर सुब्रह्मण्य भारती अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं। उनके द्वारा अपनी भाषा का सादर स्मरण और उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन समस्त भारतीय भाषाओं के महत्त्व का रेखांकन है। उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद के दौर में यह एक अत्यंत देशहितकारी कदम था। यह भी स्मरणीय है कि अंग्रेजी के आविर्भाव से हजारों वर्ष पूर्व तमिल में ऐसा बहुत कुछ लिखा गया था, जिस पर संसार की कोई भी भाषा गर्व कर सकती है। अपनी भाषा में अपने समाज की आत्मा का निवास होता है, अतः उसके पास जाने के अलावा

कोई विकल्प नहीं। खासकर संकट के समय और पराधीनता से बड़ा कोई संकट नहीं। कवि के मन में इस संबंध में कोई दुविधा नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारती का भाषा-प्रेम उनके देशप्रेम से अभिन्न है।

भारती ने 'राष्ट्रीय शिक्षा' नामक लेख में शिक्षा की भाषा के संबंध में स्पष्ट लिखा है, ''हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि राष्ट्रीय शिक्षा का आधारभूत सिद्धांत है पाठ्यक्रम में राष्ट्रभाषा को मुख्यता प्रदान करना।''[12] स्वाधीनता-प्राप्ति के इतने वर्ष बाद भी हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है, यह एक शर्मनाक बात है। सौ वर्ष पहले भारती का उपर्युक्त विचार उनकी दूरदर्शिता का अचूक उदाहरण है। इतना ही नहीं, वे यह भी बताते हैं कि देश के प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक कैसे होने चाहिए, ''इन अध्यापकों को राष्ट्रभाषा का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।...ऐसे व्यक्तियों को ही अध्यापक रूप में नियुक्त करना उत्तम होगा, जिनमें राष्ट्रीयता, स्वधर्म प्रेम और जीवमात्र के प्रति करुणा की भावना हो।''[13] कहना न होगा कि सुकवि की अपेक्षा के अनुरूप हम आज तक नहीं चल पाए हैं। उनके द्वारा निर्दिष्ट कसौटी पर न हमारी शिक्षा-प्रणाली और न ही अध्यापक खरे उतर पाते हैं। इस संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से कुछ उम्मीद जरूर बंधी है। असली चुनौती है उसका ईमानदारी से क्रियान्वयन। यदि ऐसा हो पाया, तो देश और समाज का अपेक्षित दिशा में विकास संभव होगा।

सुब्रह्मण्य भारती की कविता गहन राष्ट्रप्रेम से सराबोर है। स्वतंत्रता को केंद्र में रखकर उन्होंने अनेक कविताएं लिखी हैं। कई कविताएं ऐसी भावभूमि पर रची गई हैं, जहां स्वतंत्रता प्राप्ति से उत्पन्न प्रसन्नता का अनुभव पाठक को होता है। ऐसे स्थलों पर कवि का उत्साह देखते बनता है। ऐसी ही एक कविता है 'नाचेंगे हम'। वे कहते हैं–

आया रे! दिन जब सब समान बन जाएंगे।
इस भू से जब छल-छद्म स्वयं मिट जाएंगे।
उच्चता नीचता का पैमाना बदल गया
सद्धर्मी, सद्कर्मी महान कहलाएंगे?
जाएंगे अपने आप यहां से पाखंडी
वंचक विनष्ट हो जाएं वह दिन आया है, हम नाचेंगे।
नाचेंगे हम आनंदमगन हो नाचेंगे?[14]

स्मरणीय है कि भारती उस युग में लिख रहे थे, जिसमें देश के राजनीतिक-सांस्कृतिक क्षितिज पर गोखले, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविंद सक्रिय थे और उनके सामने पूर्ववर्ती महान देशभक्त चिंतकों की विचार-सरणि मौजूद थी। भारती स्वामी विवेकानंद को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं, लोकमान्य तिलक के प्रति उनमें गहरा आदर-भाव है। यहां तक कि कुछ ही वर्ष पूर्व राष्ट्रीय राजनीतिक मंच पर उपस्थित होकर उसे निर्णायक मोड़ देनेवाले महात्मा गांधी के विचारों से भारती काफी प्रभावित हैं। उन्होंने गांधी पर एक कविता

लिखी है 'गांधी पंचकम्।' बापू को संबोधित कर कवि पूछता है–

किन शब्दों में
करें तुम्हारी स्तुति?
उपमा नहीं सूझती।
नागपाश से मुक्ति दिलाने
संजीवन लाने वाला कहें?
घनघोर वर्षा से परित्राणदायक
गोवर्धनधारी कहें।
पराधीनता का महारोग मिटाने
अनोखा औषध दिया
नया निराला प्रयोग किया
कारगर उपाय किया
बापू तुम युग-युग जियो।[15]

गौरतलब है कि महात्मा गांधी अपने व्यक्तित्व और अपनी कर्मशीलता की बदौलत देश-दुनिया में आदर और श्रद्धा के पात्र बने। उनपर केंद्रित रचनाओं की बाढ़ देश की सभी भाषाओं में आई। लेकिन स्मरण नहीं कि बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में किसी अन्य कवि ने उनपर ऐसी तेजस्वी कविता लिखी है! गांधी की महिमा को सही परिप्रेक्ष्य में उजागर करने का यह प्रयास अत्यंत सार्थक तथा प्रशंसनीय है। पौराणिक-ऐतिहासिक महाप्राण चरित्रों को स्मरण करते हुए 'निराला प्रयोग' करनेवाले युगपुरुष गांधी के सिद्धांतों को छोटी-सी कविता में उतारकर भारती ने ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया, इसमें संदेह नहीं। अपने युग और परिवेश के साथ अपने नायकों-खलनायकों की निर्भ्रांत समझ समर्थ कवि की पहचान है। सुब्रह्मण्य भारती इस धरातल पर खरे ही नहीं उतरते, आगे के रचनाकारों के लिए कुछ आदर्श और मानदंड भी उपस्थित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. सुंदरम्, नागेश्वर. (अनु.) सिंह, विश्वनाथ 'विश्वासी'. (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं 'पांचाली शपथम्'*. दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 59
2. वही, पृ. 60
3. शर्मा, हेमन्त (सं.). (1987). *भारतेंदु समग्र*. वाराणसी : हिंदी प्रचारक संस्थान. पृ. 460
4. सुंदरम्, नागेश्वर. (अनु.) सिंह, विश्वनाथ 'विश्वासी'. (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं 'पांचाली शपथम्'*. दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 60
5. रघुनाथन्, टी.एम.सी. एवं शेषन, एम., (1997). *सुब्रह्मण्य भारती : युग और चिंतन*. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी. पृ. 14
6. सुंदरम्, नागेश्वर. (अनु.) सिंह, विश्वनाथ 'विश्वासी'. (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं 'पांचाली शपथम्'*. दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 61
7. वही, पृ. 62
8. वही, पृ. 39-41

9. सिंह, नामवर एवं त्रिपाठी, आशीष (सं.). (2016). *रामचंद्र शुक्ल रचनावली.* खंड-3. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 105
10. सुंदरम्, नागेश्वर. (अनु.) सिंह, विश्वनाथ 'विश्वासी'. (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं 'पांचाली शपथम्'.* दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 41
11. वही, पृ. 41
12. स्वामिनाथन् एवं सहाय, रघुवीर (सं.). (1989). *सुब्रह्मण्य भारती : संकलित कविताएं गद्य.* नई दिल्ली : अखिल भारतीय सुब्रह्मण्य भारती शताब्दी समारोह समिति. पृ. 241
13. वही, पृ. 242)
14. सुंदरम्, नागेश्वर. (अनु.) सिंह, विश्वनाथ 'विश्वासी'. (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं 'पांचाली शपथम्'.* दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 74
15. स्वामिनाथन् एवं सहाय, रघुवीर (सं.). (1989). *सुब्रह्मण्य भारती : संकलित कविताएं गद्य.* नई दिल्ली : अखिल भारतीय सुब्रह्मण्य भारती शताब्दी समारोह समिति. पृ. 39

स्वयं पढ़ें, औरों को भी पढ़ाएँ!

साहित्य अमृत

साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक

निवर्तमान संपादक
डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

संस्थापक संपादक
पं. विद्यानिवास मिश्र

संपादक
श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

विगत 27 वर्षों से निरंतर प्रकाशित होकर बहुचर्चित-बहुप्रशंसित हिंदी मासिक पत्रिका। नए तथा पुराने साहित्यकारों की श्रेष्ठ और मौलिक रचनाएँ, जिसमें उपन्यास अंश, कहानी, व्यंग्य, कविता, यात्रा-वृत्तांत, निबंध तथा अन्य स्थायी स्तंभ; साथ में ईनामी वर्ग पहेली पाठकों को सत्साहित्य पढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

भारत सरकार (गृह मंत्रालय) के राजभाषा विभाग के पत्रांक 11014/8/96-रा.भा. (प) द्वारा केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों/ विभागों/ कार्यालयों/ सार्वजनिक उपक्रमों/ बैंकों/ स्वायत्त निकायों/ संस्थानों आदि के लिए अनुमोदित 'साहित्य अमृत' की सदस्यता के लिए वार्षिक शुल्क 300 रु. (व्यक्तियों के लिए) और 400 रु. (संस्थाओं/ पुस्तकालयों के लिए) है। सदस्यता शुल्क 'साहित्य अमृत' के नाम चैक द्वारा अथवा ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं600120110001052 IFSC—BKID 0006001 में 'साहित्य अमृत' के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें। 'साहित्य अमृत' संबंधी किसी भी जानकारी के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

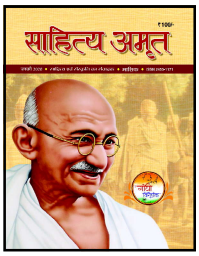

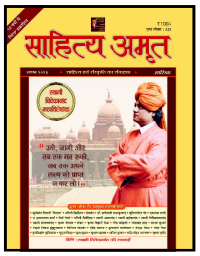

भारत-स्वाभिमान का कवि

अखिलेश कुमार दुबे

सुब्रह्मण्य भारती का जीवन प्रगतिशील मूल्यों के संवर्धन के लिए समर्पित था। उन्होंने स्त्री जीवन के उत्थान के लिए सच्चे मन से प्रयत्न किया। ठीक वैसे ही वे सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के लिए भी यत्नशील थे। उनको यह सत्य ज्ञात था कि भारतवर्ष की पराधीनता का एक बड़ा कारण सामाजिक विषमताएं हैं। जाति-भेद, ऊंच-नीच का भाव, अस्पृश्यता आदि सामाजिक बुराई हमारे समाज का संगठन कमजोर कर रहे हैं। कमजोर सामाजिक ढांचे के बल पर साम्राज्यवादी शक्तियों से निर्णायक युद्ध नहीं लड़ा जा सकता है। इसलिए सर्वाधिक आवश्यक है, अतार्किक और अप्रगतिशील बातों का निरसन करते हुए सशक्त भारत देश के निर्माण की आधारभूमि तैयार की जाए। भारती ने अपने काशी प्रवास के समय से ही इन कुरीतियों का प्रतिवाद शुरू कर दिया था। वे अपने वक्तव्यों में मुखर होकर बात रखते थे। उन्होंने रुढ़िवादियों के तीव्र विरोध का सामना डटकर किया; क्योंकि वे प्रगतिशील मूल्यों और भारत स्वाभिमान से समझौता नहीं कर सकते थे। मंगला रामचंद्रन ने इस संबंध में भारती की वाणी और कर्म की एकता का साफ उल्लेख किया है–'वर्तमान में हमारे देश में जातिप्रथा की पैरवी करनेवालों की कमी नहीं है। आज से सौ वर्ष पूर्व ब्राह्मण परिवार के भारती जी ने इसका उल्लंघन किया। ये इनके विशाल और उदार मन ही नहीं साहस को भी बताता है। उन दिनों ऊंची जाति के लोग नीची जाति के लोगों की परछाईं से भी दूर रहते थे। पर भारती जी उनके घर जाते थे और उनके साथ खाना भी खाते थे और उनके साथ पूजापाठ में भी हिस्सा लेते थे।'[2]

'वंदे मातरम्' शीर्षक प्रसिद्ध कविता में भारती वेद, उपनिषद् और गीता की अमृत-भावना की प्रस्तुति करते हुए सब भारतवासियों को नाना विषमताओं से मुक्त होकर भारत माता की वंदना करने और एकजुट रहने का भाव प्रकट करते हैं। यह अद्‌भुत कविता है। भारती के दृष्टिकोण को स्पष्ट करती कविता में वर्णभेद, जातिभेद का सुंदर प्रत्याख्यान दर्ज है–

आओ गाएं 'वंदे मातरम्'।
भारत मां की वंदना करें हम।

ऊंच नीच का भेद कोई हम नहीं मानते,
जाति धर्म को भी हम नहीं जानते।
ब्राह्मण हो या कोई और, पर मनुष्य महान है
इस धरती के पुत्र को हम पहचानते।

आओ गाएं 'वंदे मातरम'।
भारत मां की वंदना करें हम।

वे छोटी जाति वाले क्यों हैं, क्यों तुम उन्हें कहते अछूत?
इसी देश के वासी हैं वे, यही वतन, यहीं उनका वजूद।
चीनियों की तरह वे क्या लगते हैं तुम्हें विदेशी?
क्या हैं वे पराए हमसे, नहीं हमारे भाई स्वदेशी?[3]

कविता लंबी है और बेहद मार्मिक भी। इसमें भारती ने जाति और वर्ण की पहचान से ऊपर इस देश के सभी निवासियों की एक पहचान की बात की है और वह पहचान या परिचय है, 'सब भारतीय हैं'। जाति और वर्ण की दंभी श्रेष्ठता से ऊपर। इसी कविता में उन्होंने बहुत स्पष्ट कर दिया है कि 'हमारा रक्त एक है और हम एक मां की संतान हैं'। जब मां एक है और रक्त एक है तब ऊंच-नीच का भेद कहां तक तर्कपूर्ण है?

भारती जी देश की कमजोरियों को तो जानते ही थे, सामर्थ्य को भी अच्छी तरह से पहचानते थे। उनकी 'वंदे मातरम्' शीर्षक कविता भारतीयों के इस सामर्थ्य को व्यक्त करती है–

हम रहेंगे साथ-साथ तीस कोटि साथ-साथ
डाल हाथों में हाथ, तीस कोटि हाथ साथ
हम गिरेंगे साथ-साथ, हम मरेंगे साथ-साथ
हम उठेंगे साथ-साथ, जीवित रहेंगे साथ-साथ।[4]

हमारे आर्ष ग्रंथ कभी भी किसी प्रकार के विभेद की बात नहीं करते हैं, किंतु दुर्भाग्य है कि उनके अमृत प्रवाह को सब तक सम्यक प्रकार से पहुंचने से रोका जाता रहा है। यह एक बड़े षड्यंत्र का हिस्सा था। आज भी इस षड्यंत्र का प्रकोप कम ज्यादा जारी है। इससे बचें तो देशभाव, भारत-भाव सुदृढ़ होगा। वेद स्पष्ट उद्घोष करता है–साथ चलें, साथ बोलें, समान मन वाले हों। 'यह अमृत तत्त्व भारती की कविता का, उनके अन्य प्रकार के लेखन का अनिवार्य अंग था। भारती सशक्त भारत का उज्ज्वल संकल्प जी रहे थे और यही कारण है कि वे सतत स्त्री-जागरण, लोक- जागरण और राष्ट्र-जागरण के लिए लगे रहे। इसके लिए जरूरी था कि भ्रांत धारणाओं का निर्मूलन किया जाए। इस महत कार्य के लिए भारती ने साहित्य और पत्रकारिता को अस्त्र-शस्त्र बनाया। 1908 ई. में अंग्रेजों के कोप से बचने के लिए भारती पांडिचेरी (वर्तमान में पुदुचेरी) चले गए थे और वहीं से पत्रकारिता और अपने साहित्य कर्म से लोक-जागरण व राष्ट्र-जागरण का कार्य करते रहे। वे दस वर्ष यहीं रहे और ये उनकी रचनात्मकता के प्रकर्ष के थे। 'पांचाली शपथम्', 'कुयिल पाट्ट्', (कोयल के गीत), श्रीमद्भगवद् गीता का तमिल अनुवाद आदि यही रचित हैं। भारती लोक-जागरण के लिए जो कुछ भी नया होता था, उससे तमिल जन को अवश्य परिचित कराते थे। ठाकुर रविंद्रनाथ की कहानियों का अंग्रेजी से तमिल में अनुवाद कर तमिल भाषी समाज का श्रेष्ठ भारतीय साहित्य से परिचय कराया। तिलक के भाषण, गांधीजी के भाषण आदि तमिल में प्रस्तुत करते थे। अपने अखबारों

में विश्व भर की नवीन हलचलों के बारे में भी लगातार लिखते थे, जिससे पाठकों के ज्ञान और बोध का विस्तार हो सके।

भारती को 'निज सत्व' ग्रहण करने की दृष्टि से स्वभाषा की महिमा का मूल्य ज्ञात था। वे अंग्रेजी साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा किए जा रहे दुष्प्रचार से आहत होते थे। अंग्रेज भारत की वैयाकरणिक और साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध भाषाओं को सुनियोजित तरीके से हीन और अक्षम साबित कर रहे थे और अपनी भाषा को श्रेष्ठ घोषित करते हुए भारतीयों के ऊपर थोप रहे थे, जिससे भारत के लोग अपनी परंपरा की महान उपलब्धियों से अनजान बने रहकर स्थायी दासत्व में जकड़े रहें। मुक्ति के लिए प्रयास न करें। भारती संस्कृत के महत्त्व के बारे में स्पष्ट थे। वे इसे देश भर में प्रचारित करने की इच्छा रखते थे। साथ ही हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित देखना चाहते थे। तमिल सहित अपनी अन्यान्य भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठता का उन्हें अभिमान था। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा भारतीय भाषाओं को घृणा की दृष्टि से देखे जाने का प्रतिवाद करते हुए अंग्रेजी को ही 'वर्नाकुलर' सिद्ध कर दिया, जिस पर ब्रिटिश साम्राज्य को झूठा अभिमान था। भारती ने कहा कि अकेले तमिल भाषा में ही जो काव्य और दार्शनिक चिंतन है, वह इंग्लैंड की 'वर्नाकुलर' से अधिक भव्य है। मंगला रामचंद्रन ने भारती पर लिखते हुए उनके भाषा स्वाभिमान का स्पष्ट उल्लेख किया है–'अपनी मातृभाषा तमिल पर उन्हें एक मां की तरह भक्ति व स्नेह था। तमिल की उन्नति के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। छोटे बच्चों के लिए शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या देशीय भाषा को चुनने को कहते। विदेशी भाषा अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के सख्त खिलाफ थे। उनकी दिली इच्छा थी कि बचपन से बच्चे अपने माता-पिता, मातृभाषा, राष्ट्रभाषा के प्रति आदर और स्नेह करना सीख लें।'[5]

भारती स्वभाषा की महिमा के प्रति संपूर्ण आश्वस्ति रखते थे। उन्हें यह सत्य ज्ञात था कि यदि हम सभी भारतवासियों को ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति को पराजित करना है तो वह तब तक संभव नहीं होगा, जब तक उन्हें अपने स्वत्व की पहचान न हो जाए। इसलिए अपनी भाषा में सुलभ अपने पुरखों द्वारा रची गई ज्ञान और संस्कृति की अजस्त्र परंपरा से प्रेम और परिचय स्वाभिमान के जागरण का उपकरण बनेगा। यह बात भारतेंदु बहुत पहले जान गए थे। उनके द्वारा 1877 ई. में हिंदी वर्धिनी सभा में दिए गए काव्यात्मक भाषण से स्पष्टतः समझा जा सकता है कि क्यों भारतेंदु, भारती व अन्यान्य स्वाधीनता संघर्ष में सम्मिलित मनीषी, चिंतक, राजनीतिक नेतृत्वकर्ता और धार्मिक नेता आदि निज भाषा में अपनी बात रख रहे थे और निज भाषा की समुन्नति पर बल दे रहे थे। भारतेंदु ने लिखा है–'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।' किंतु यह बात दुःखी करनेवाली है कि स्वतंत्रता के पचहत्तर वर्ष पूरे होने को हैं और आज भी हम भारत के लोग मातृभाषाओं, क्षेत्रीय भाषाओं और राष्ट्रीय भाषाओं के प्रयोग में, उनके प्रचार-प्रसार में बहुत पीछे हैं। कुलोत्तुंगन नाम के एक आधुनिक तमिल कवि ने अपनी कविता में इस संबंध में बहुत भावुक होकर लिखा है–

विदेशी भाषाएं आगे चलती-नए
ज्ञान के विभागों का संचालन करतीं
पर मेरी भाषा उस तरफ नहीं है

कहीं अवरुद्ध होकर वह बैचेन होती।
दिन पर दिन हमारी भाषा पिछड़ी पड़ती
यह संसार हमसे बिछड़कर आगे बढ़ता
शासन की सत्ता देती है, शिक्षा
पर उसमें मातृभाषाओं का, हाय! सहारा नहीं![6]

कुलोत्तुंगन बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में लिख रहे हैं कि अपने देश में विदेशी भाषाएं आगे बढ़ रही हैं व समृद्ध हो रही हैं, किंतु अपनी स्वभाषा/स्वभाषाएं अवरोध-ग्रस्त होकर उपेक्षित हो रही हैं और अपनी भारतीय भाषाओं के उपेक्षित होने से, पिछड़ने से भारतीयों का ज्ञान संसार पिछड़ रहा है। कविता में जिस अवरोध की बात कवि ने की है, उसे समझना चाहिए। अवरोध है, औपनिवेशिक संस्कारों का, राजनीतिक इच्छा शक्ति का। अपने अतीत गौरव से जान-बूझकर अनजान बने रहने के कारण हमलोगों ने अपनी बहुत हानि की है। भला हो नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 का, जिसमें इस अवरोध की पहचान ही नहीं की गई है, अपितु इन अवरोधों को सुनियोजित तरीके से दूर करने की व्यवस्था भी की गई है। नीति में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषाओं, भारतीय भाषाओं और क्षेत्रीय भाषाओं के निर्विवाद महत्त्व की स्वीकृति भारती, भारतेंदु और गांधीजी आदि विभूतियों की इच्छानुरूप है। यदि विश्व में स्वाभिमान सहित जीना है, तब आत्मदया और आत्महीनता के कुभाव से तत्काल मुक्ति परमावश्यक है। भारती की दृष्टि में यह बात स्फटिक की तरह आर-पार दिख रही थी कि राजनीतिक स्वाधीनता के साथ-साथ सांस्कृतिक स्वाधीनता जरूरी है। कदाचित् सांस्कृतिक जागरण से ही अपने स्वाभिमान, स्वधर्म और स्वत्व को अक्षुण्ण बनाए रखा जा सकता है।

भारती को अपने गौरव का बोध था। अपने देश के लिए अभिमान भी। उन्हें भारत की संस्कृति के वैभव पर, उसके वैश्विक मानव मूल्यों पर अनुराग था। अपनी कविताओं में वे बार-बार स्मरण करते हैं कि भारत सर्वोत्कृष्ट देश है–

भारत सर्वोत्कृष्ट देश है।
निखिल विश्व में, अपना सर्वोत्कृष्ट देश है।
भारत सर्वोत्कृष्ट देश है।

भक्ति, विराग, प्रचंड ज्ञान में,
स्वगौरव में, अन्नदान में
अमृतवर्षक काव्यज्ञान में
भारत सर्वोत्कृष्ट देश है॥1॥

धैर्यशक्ति में, सैन्यशक्ति में
परोपकार में, उदार भाव में,
सार शास्त्रों के ज्ञान दान में-
भारत सर्वोत्कृष्ट देश है॥2॥

नेकी में, तन की क्षमता में
संस्कृति में, अपनी दृढ़ता में
स्वर्ण मयूरी पतिव्रता में-
भारत सर्वोत्कृष्ट देश है॥3॥[7]

कविता 'भारतनाडु' शीर्षक से है। इसका हिंदी में 'भारत सर्वोत्कृष्ट देश है' शीर्षक से श्री नागेश्वर सुंदरम जी और विश्वनाथ सिंह 'विश्वासी' ने सुंदर अनुवाद प्रस्तुत किया है। कविता लंबी है। कवि भारती ने मुग्ध होकर अपनी संस्कृति और परंपरा का गुणगान किया है। कविता में भारत और भारतीयों के त्याग, तप, ज्ञान, दान और समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को रेखांकित किया गया है। भारती ने भारतवर्ष को प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी सिद्ध किया है। स्मरण रहे कि एक तरफ अंग्रेज सुनियोजित तरीके से यह दुष्प्रचार कर रहे थे कि भारत सपेरों और मदारियों का देश है। यह पिछड़ा और जड़ देश है और पराधीनता इसकी नियति है। ऐसे में भारती के प्रभावशाली रचनात्मक प्रतिवाद को देखना चाहिए। अन्यथा उनके काम का सही मूल्यांकन संभव नहीं होगा।

भारती को भारत की शक्ति और पराक्रम का सम्यक् ज्ञान था, किंतु उनमें आत्ममुग्धता का भाव नहीं है। उन्हें यह सत्य स्पष्ट रूप से ज्ञात था कि हमारी अशक्तताएं क्या हैं? और उनसे मुक्ति का आधार क्या होगा? अपनी 'वंदे मातरम्' शीर्षक कविता में, जिसका श्रीमान नागेश्वर सुंदरम और विश्वनाथ सिंह 'विश्वासी' ने 'रे विदेशियों! भेद न हममें' शीर्षक से हिंदी में रूपांतर किया है; में कवि ने बहुत सजग होकर उन कारणों को अंकित किया है, जिनसे भारत की स्वाधीनता असुरक्षित हो गई–

वैर भाव है, हममें जब तक
अधः पतन ही होगा तब तक।
जीवन मधुमय बना रहेगा,
यदि हममें संगठन रहेगा।
यही ज्ञान यदि आ जाए तो,
और अधिक हम क्या चाहेंगे?
हम वंदे मातरम् कहेंगे।[8]

इसी कविता में आगे भारती ने लिखा है कि भारत के स्वाभिमान की रक्षा के लिए और पूर्णोत्थान के लिए सबका साथ जरूरी है–

लेकर सबका सबल सहारा,
होगा पूर्णोत्थान हमारा।
ऊंचा जितना माथ रहेगा,
उसमें सबका साथ रहेगा।
साथ रहेंगे तीस कोटि हम,
साथ जिएंगे, साथ मरेंगे।
हम वंदे मातरम् कहेंगे।[9]

भारती अपने देशवासियों के पारस्परिक वैमनस्य और परिणामस्वरूप असंगठित रहने के कारण पराजित होने, दास-वृत्ति करने को बहुत साफ स्वीकार करते हैं और देशवासियों का आह्वान करते हैं–

दास वृत्ति करते आए हैं,
नीच दास हम कहलाए हैं।
गत् जीवन पर लज्जित होएं,
चिर कलंक मस्तक का धोएं।
कर लें यह संकल्प कि पहले
सरिस न हम परतंत्र रहेंगे।
बार-बार हां बार-बार
भारत भू की वंदना करेंगे।
हम वंदे मातरम् कहेंगे॥[10]

भारती भारत-भाव को, देश-भाव को सम्मुख रखकर देशवासियों को एकजुट रहने और शक्तिशाली होने का संकल्प दिलाते हैं। यह अनायास नहीं है कि पराधीन भारत के रचनाकार शक्ति और संगठन का बार-बार स्मरण कर रहे थे। मैथिलीशरण गुप्त, निराला, प्रसाद आदि की कालजयी कृतियों में इसकी साफ प्रतिध्वनि सुन सकते हैं। भारती अपनी कमजोरियों को दूर करने की बात करते हैं, क्योंकि वे एक मजबूत, स्वाधीन और आत्मनिर्भर भारत की विश्वस्त छवि देख रहे थे। उनकी 'भारतदेशम्' शीर्षक कविता है अद्‌भुत है। इसमें एक उत्कट देशानुरागी का हृदय तो है ही, एक दूरदर्शी भारतीय का मस्तिष्क भी है। वर्तमान की बात की जाए तो संपूर्ण विश्व एक कठिन समय से गुजर रहा है। व्यापक धन-जन की हानि हो रही है। विवशता है, सबके सामने। इस कठिन परिस्थिति में स्वावलंबन का प्रश्न बार-बार खड़ा हो जाता है। भारती ने स्वावलंबन का और इस मंत्र से देश की समृद्धि की एक सुस्पष्ट योजना प्रस्तुत की थी–

भारत देश नाम भयहारी, जन-जन इसको गाएंगे।
सब शत्रुभाव मिट जाएंगे॥

विचरण होगा हिमाच्छन्न शीतल प्रदेश में,
पोत संतरण विस्तृत सागर की छाती पर।
होगा नवनिर्माण सब कहीं देवालय का
पावनतम भारत भू की उदार माटी पर।
यह भारत है देश हमारा कहकर मोद मनाएंगे।
सब शत्रु भाव मिट जाएंगे॥1॥
हम सेतुबंध ऊंचा कर मार्ग बनाएंगे,
पुल द्वारा सिंहल द्वीप हिंद से जोड़ेंगे।
जो बंगदेश से होकर सागर में गिरते,
उन जलमार्गों का मुख पश्चिम को मोड़ेंगे

उस जल से ही मध्यदेश में अधिक अन्न उपजाएंगे।
सब शत्रुभाव मिट जाएंगे॥2॥[11]

कविता काफी लंबी है। इसमें भारती जी की भारत की आत्मनिर्भरता और वैभवशाली होने संबंधी संपूर्ण बातें समाहित है। उन्हें पता है कि भारत विशाल देश है। नाना विविधताएं हैं। प्रकृति भी वैविध्यपूर्ण है। देश के किसी प्रांत में सोने के अकूत भंडार हैं तो कहीं अनाज प्रचुर मात्रा में होता है। हमारे सागर मोती और प्रवाल से भरे हुए हैं। तमाम खनिज देश में उपलब्ध हैं। प्रत्येक तरह के उद्योग के लिए कच्चे माल की प्रचुरता है। भारती भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की प्रगति की बात करते हैं। उन्हें भारतवर्ष को संपूर्ण विश्व में आत्मनिर्भर और प्राणिमात्र के योग-क्षेम हेतु तत्पर रहनेवाले राष्ट्र के रूप में देखने की अदम्य अभिलाषा थी। उन्हें पता था कि जब तक छोटी से लेकर बड़ी वस्तुओं का निर्माण देश में होना सुनिश्चित नहीं होता है, तब तक आत्मनिर्भरता का संकल्प वायवीय ही होगा। इसलिए वे विविध वस्तुओं के भारत में ही निर्माण की बात करते हैं।

भारती की दृष्टि और सृष्टि इतनी अग्रगामी है कि उसके बारे में विचार और विश्लेषण विस्मय में डाल देता है। एक पराधीन देश के नभ शक्ति, जल शक्ति, स्थल शक्ति और अंतरिक्ष की शक्ति बनने की कल्पना करना तक कठिन रहा होगा, तब भारती लिख रहे थे–

मंत्र तंत्र सीखेंगे, नभ को भी नापेंगे,
अतल सिंधु के तल पर से होकर आएंगे।
हम उड़ान भर चंद्रलोक में चंद्रवृत्त का
दर्शन करके मन को आनंदित पाएंगे।
गली गली के श्रमिकों को भी शस्त्र ज्ञान सिखलाएंगे।
सब शत्रुभाव मिट जाएंगे॥[12]

सैन्य प्रशिक्षण संपूर्ण देशवासियों को प्राप्त हो जिससे वे संकटापन्न भारत को अपने शौर्य और पराक्रम से बचा पाएं, क्योंकि संकट की परिस्थिति में स्वयं ही लड़कर विजय प्राप्त की जा सकती है। दूसरे के भरोसे पर युद्ध नहीं लड़ा जा सकता है।

भारती का लक्ष्य था कि भारत अपनी शक्ति से सर्वतोमुखी उन्नति सुनिश्चित कर विश्वगुरु की अपनी पुरानी गरिमा और महिमा की बहाली करे। पुनः शीर्ष पर विराजमान हो, विश्व के और यह तभी संभव होगा जब हम सर्वांगीण विकास का प्रतिदर्श सामने रखकर लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे। किंतु सावधानी से बढ़ना होगा। ऐसा न हो जाए कि मात्र भौतिक संसार समृद्ध हो जाए और हम ऐसी विद्याओं के ज्ञान से दूर हो जाएं, जो मनुष्य निर्माण करती हैं। इसलिए उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि–

सरस काव्य की रचना होगी और साथ ही
कर देंगे चित्रित अति सुंदर चित्र चितेरे।
हरे-भरे होंगे वन उपवन, छोटे धंधे
सुई से, बढ़ई तक के होंगे, घर मेरे।
जग के सब उद्योग यहां पर ही स्थापित हो जाएंगे।
सब शत्रुभाव मिट जाएंगे॥[13]

सुब्रह्मण्यम भारती ने अपने सपूर्ण लेखन में सशक्त, स्वतंत्र, स्वाभिमानी और स्वावलंबी भारतवर्ष का ही एक मात्र स्वप्न देखा था। विषमताओं से सर्वथा मुक्त भारत जो विश्वमुकुट होगा। हम भारतवासी, भारती के स्वप्न को संपूर्णतः मूर्त रूप देने की दिशा में निष्ठा पूर्वक प्रयत्नशील बनें, यही उस महान साहित्यकार, पत्रकार, राजनीतिक कार्यकर्ता और भारत स्वाभिमान को जीने वाले स्वातंत्र्य वीर के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

संदर्भ :

1. पांडेय, डॉ. सुधाकर और तिवारी, डॉ. लाल, मोहन. (सं.) (विक्रम संवत : 2045). *बंग महिला ग्रंथावली.* काशी : नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 113
2. *सुब्रह्मण्यम भारती : व्यक्तित्व और कृतित्व,* हिंदी समय डॉट कॉम. वर्धा : म.गां.अं.हिं.वि.
3. जनविजय, अनिल. (रूपांतरकार). *www.hindikavita.com*
4. वही
5. *सुब्रह्मण्यम भारती : व्यक्तित्व और कृतित्व.* हिंदी समय डॉट कॉम. वर्धा : म.गां.अं.हिं.वि.
6. राही, बालस्वरूप (सं.). (1988). *भारतीय कविताएं*–1985. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. 107
7. सुंदरम् नागेश्वर और 'विश्वासी', विश्वनाथ सिंह (रूपांतरकार). (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं पांचाली शपथम्.* दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 37-38
8. वही, पृ. 33-34
9. वही, पृ. 34
10. वही
11. वही, पृ. 39
12. वही, पृ. 41
13. वही

□

आत्मनिर्भर भारत के स्वप्नदर्शी कवि

रामानुज अस्थाना

सुब्रह्मण्य भारती का जीवन काल 1882 से 1922 रहा। यह काल भारत में अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा। इस काल में नव जागरण, राष्ट्रीय जागरण, के साथ-साथ स्वतंत्रता के लिए तन-मन-धन न्योछावर करने की भावना थी। सुब्रह्मण्य भारती पर अनेक विचारकों एवं क्रांतिकारियों का गहरा प्रभाव पड़ा।

तमिलनाडु के स्वतंत्रता आंदोलन ने भारती की क्रांतिकारी चेतना को पुष्ट किया। डॉ. एम. शेषन ने अपनी पुस्तक 'तमिल साहित्य एवं झांकी' में लिखा है–''सन् 1857 की क्रांति के पूर्व ही तमिल प्रदेश में स्वतंत्रता की चेतना से युक्त कुछ देश प्रेमियों की हमें पहचान हुई है। सुदूर तिरुनेलवेली जिला के पालयक्कारों (छोटे राजा) ने गोरों को 'कर' देने से साफ इनकार कर बलवा कर दिया और शिवगंगा का शासक मुत्तु वडुकनाथर कालौयारकोयिल नामक स्थल में गोरों के खिलाफ संघर्ष कर वीर मृत्यु प्राप्त की। मरवर नामक वीरों की जाति में मरुद भाइयों का जन्म एक अद्‌भुत घटना थी। उनकी वीरता, साहस, निर्भरता के कारण अंग्रेज उनसे घबरा उठते थे। सन् 1801 में अंग्रेजों के खिलाफ उनका गर्जन था–'विदेशियों को इस मातृभूमि की मिट्टी से खदेड़कर भगाने के लिए भारत के सब लोग एकत्रित हों।' पांचालमूकुरुच्चि (तिरुनेलवेली जिला) के राजा वीरपांडिय कट्टबोम्मन ने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। वह लगभग नौ वर्षों तक अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष कर अंत में फांसी पर चढ़ा।''[1] अमर शहीद वीर पांडिय कट्टबोम्मन का तमिलनाडु के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। पूरे तमिलनाडु में कट्टबोम्मन की वीरता के लोकगीत गाये जाते हैं। कट्टबोम्मान तीस वर्ष की आयु में 02 फरवरी, 1790 को पांचालमूकुरुच्चि का राजा बना। वह अंग्रेजों की नीतियों से बिल्कुल सहमत नहीं था। जब कलेक्टर जाक्सन से 16 सितंबर 1798 ई. को रामनाथपुरम में कट्टबोम्मन की मुलाकात हुई तब केवल कट्टबोम्मन का मंत्री तानादि पिल्लै ही उनके साथ था। जाक्सन से वार्तालाप में कट्टबोम्मन ने कहा–''कौन किसे कर दे? तुम लोग वाणिज्य करने आए थे और अब हुकूमत करने की हिम्मत दिखा रहे हो। क्या मैं तुम विदेशी लोगों के आगे दबूं? तुम लोगों को कर दूं...आसमान बरसता है, भूमि अनाज उगलती है, इस मिट्टी के स्वामी से तुम लोग कर मांगने की जुर्रत कर रहे हो। दान के रूप में कुछ दे भी दूं, पर कर के रूप में एक दाना भी नहीं दूंगा।''[2] उत्तर सुनकर जाक्सन तिलमिला उठा। उसने अपने अंगरक्षक क्लाक से कट्टबोम्मन को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। कट्टबोम्मन ने क्लाक का वध कर दिया और तीव्रता से अपने डेरे में चला आया। इसके

बाद लुसिंगटन नया कलेक्टर बना। उसकी भी बातें कट्टबोम्मन ने नहीं मानी। उसने 5 सितंबर, 1799 को पांचालमूकुरुच्चि को घेर लिया, युद्ध हुआ; मंत्री तानादिपिल्लै पकड़ा गया, पर कट्टबोम्मन कुछ साथियों के साथ बच निकला। तानादिपिल्लै को फांसी की सजा दी गई और उसका सिर काट कर पांचालमूकुरुच्चि के किले के बाहर चौराहे पर लटकाया गया। बाद में पुदुक्कोट्टै के राजा के विश्वासघात से कट्टबोम्मन भी पकड़ा गया। कट्टबोम्मन पर मुकदमा चलाया गया और 16 अक्टूबर, 1799 को उसे कयत्तारू के जंगल में इमली के पेड़ पर फांसी पर लटका दिया गया। कट्टबोम्मन ने वीरता के साथ फांसी के फंदे को खुद अपने हाथ से उठाकर अपने गले में डाल लिया और फांसी पर लटक गया। लुशिंगटन ने कंपनी को लिखे पत्र में स्वयं कट्टबोम्मन की वीरता की प्रशंसा की है। कट्टबोम्मन की वीरता और बलिदान के गीत विवाह या अन्य अवसरों पर आज भी तमिलनाडु में गाए जाते हैं। जब तमिलनाडु के लोकगायक मोरसिंग बजाकर गाते हैं–'वीरादीवीरन्नान, शूरादीशूरन्नान कट्टबोम्मू वंदेने'(शूर-वीर कट्टबोम्मन आ रहा है) तो पूरा शरीर रोमांच से भर उठता है। महिलाएं गाती हैं–

''आती है सेना लेकर हाथी और ऊंट
उसके आगे बाजे, सींगवादन की गूंज
राजा कट्टबोम्मन आता है गंभीर
देखो री माई उसका सौंदर्य भरपूर''[3]

तमिलनाडु का एक बहुत मार्मिक लोकगीत है। कट्टबोम्मन युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा है उसके सेनानायक की पत्नी कहती है कि मैंने रात में एक बुरा स्वप्न देखा है, जिसमें सब अपशकुन दिखाई दिए, इसलिए हे नाथ! आज युद्ध में मत जाओ–

''न जाना मेरे नाथ
मैंने दुस्वप्न एक देखा।
हमारे मल्लिका बाग उजड़ते देखा
हाथी बांधने का लौह स्तंभ
समूल उखड़ते देखा
×× ×× ××
कंठ का मंगल सूत्र धीरे से गिरते देखा।''[4]
×× ×× ××

कट्टबोम्मन का राज्य एट्टय्यपुरम् के पास था। सुब्रह्मण्य भारती के पिता एट्टय्यपुरम् के राजा के यहां कार्यरत थे। सुबह्मण्य भारती ने बचपन से ही ये लोकगीत अवश्य सुने होंगे, जो भारती की क्रांतिकारी चेतना को विकसित करने में सहायक रहे होंगे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एट्टय्यपुरम् के सेनानायक अलगुमुत्तु को भी कंपनी की फौज ने पकड़कर तोप के मुंह में बांधकर उड़ा दिया; जिसकी यशोगाथा भी एट्टय्यपुरम् में फैली हुई थी। इसके अतिरिक्त ऊमैत्तुरै, मरुद भाई, सेनानायक सुंदर लिंगम आदि अनेक वीरों ने अपने प्राणों का बलिदान दिया, जिसने तमिलनाडु में क्रांति की अलख जगाई।

तमिलनाडु के स्वतंत्रता आंदोलन में चिदंबरम पिल्लै का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनमें

भारत को आत्मनिर्भर, स्वतंत्र देखने की प्रबल इच्छा थी। उनका कथन था–''ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति समुद्र पर आधारित है। जहाजों द्वारा ही उनका व्यापार बढ़ता है। उनकी उस शक्ति पर कुठाराघात करना हमारा ध्येय है। वह तभी संभव है जब हम अपनी समुद्री शक्ति को, जहाजों द्वारा व्यापार को बढ़ाएं। यदि ब्रिटेन की समुद्री शक्ति को कमजोर कर दें तो वह भारत से चलता बनेगा।''[5] इसलिए उन्होंने स्वयं जहाज खरीदे और जहाजों की स्वदेशी कंपनियां बनवायीं। इसके साथ-साथ उन्होंने कई व्यापारिक संस्थाएं बनायीं पर उसका उद्देश्य व्यापार करना नहीं भारत को स्वतंत्र करना था। इसके लिए लंबे कारावास में उन्होंने कठोर यातनाएं सहीं। सुब्रह्मण्य भारती चिदंबरम पिल्लै का बहुत सम्मान करते थे और उनकी क्रांतिकारी कार्यों से बहुत प्रभावित थे। चिदंबरम पिल्लै बहुत ओजस्वी भाषण देते थे, इससे अंग्रेज सरकार भयभीत थी। विपिन चंद्रपाल के कारावास से मुक्त होने पर चिदंबरम पिल्लै सभा कर भाषण देना चाहते थे, जिससे तत्कालीन कलेक्टर सहमत नहीं था। उसने चिदंबरम पिल्लै को अपने दफ्तर बुलाया। वहां कलेक्टर बिंज और चिदंबरम पिल्लै का संवाद हुआ। चिदंबरम पिल्लै ने निर्भीकता से उत्तर दिए और दफ्तर के बाहर आते ही गिरफ्तार कर लिये गए। इस पर सुब्रह्मण्य भारती ने संवाद की कल्पना कर कविता लिखी, जो 'इंडिया' में प्रकाशित हुई और स्वतंत्रता आंदोलन के हर मंच पर गायी जाने लगी। वह कविता इस प्रकार है–

कलेक्टर मि. बिंज चिदंबरम पिल्लै से पूछता है–

''सारे देश में स्वतंत्रता की प्यास उत्पन्न कर दी तूने
आग लगा दी, तुझे तड़पाकर, कैदकर जेल में ठूंस दूंगा।
भीड़ जमाकर 'वंदे मातरम्' का नारा लगाया
हमारी निंदा की।
हम भाग जाएं, इसलिए जहाज चलाया।
भीरु जनता को वास्तविकता बतायी,
कानून का उल्लंघन किया तूने
गरीब बन-गुलाम बन यहां मरना अपकीर्तिकर कहा।
गुलाम और भीरुओं को मनुष्य बताया,
भय दूर किया।

चिदंबरम पिल्लै उत्तर देते हैं–

स्वदेश में परायों की गुलामी नहीं करेंगे
अब न सोयेंगे, अब न डरेंगे
किस देश में यह अनीति स्वीकार्य होगी?
ईश्वर भी क्या स्वीकार करेगा?
जीवन पर्यंत वंदे मातरम् कहेंगे,
माता को नमन करेंगे।
क्या हमारी प्राण-प्यारी माता का वंदन नीचता है,
अपमानजनक है? क्या दिनोंदिन हमारी दौलत लुटती रहे?

क्या हम मर मिटें? क्या सहन करते रहें? हम मानव नहीं?
हम प्राण को ही गुड़ समझें?
क्या हम तीस करोड़ जन श्वान हैं, शूकर हैं?
क्या तुम स्वयं मनुज हो?
हड्डी का टुकड़ा-टुकड़ा भी करो
तो भी तेरी इच्छा असफल ही रहेगी।''[6]

यह संवाद शैली में लिखी कविता तमिल जनमानस में अपूर्व साहस भरती थी। इसी तरह जनता को जगाने के लिए भारती ने और भी कई कविताएं संवाद शैली में लिखीं। सुब्रह्मण्य भारती को 'इंडिया' पत्रिका में क्रांतिकारी लेखन के लिए तमिलनाडु छोड़कर पांडिचेरी जाना पड़ा। पांडिचेरी उन दिनों फ्रांसीसियों के अधिकार में था और अंग्रेज सरकार उन्हें वहां पकड़ नहीं सकती थी। उस समय पूरे भारत खासकर बंगाल से बहुत से क्रांतिकारी अंग्रेज सरकार से बचने के लिए पांडिचेरी जाते थे। भारती का उन सबसे संवाद होता था, जिससे उनकी क्रांतिकारी भावना को बल मिलता था। चिदंबरम पिल्लै की मृत्यु के समय सुब्रह्मण्य भारती का निधन हो चुका था। चिदंबरम पिल्लै ने अपनी मुत्यु के समय अपनी अंतिम इच्छा के रूप में भारती की कविताएं सुनने की इच्छा प्रकट की। मृत्युशय्या पर लेटे-लेटे उन्होंने महाकवि भारती की राष्ट्रीय कविताएं सुनी। उनकी बंद आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होती रही। उन्हें इसकी गहरी पीड़ा थी कि वे अपने जीवित रहते अपनी आंखों से भारत को स्वतंत्र नहीं देख पाए। यह स्वतंत्रता की छटपटाहट सुब्रह्मण्य भारती में भी थी। भारती ने अपनी कविता 'स्वतंत्रता की प्यास' (सुतंदिर दाहम) में लिखा–

''प्यास बुझेगी कब अंतर से स्वतंत्रता की?
पराधीनता के कब तक व्यामोह मिटेंगे?
कब तक टूटेंगी भारत मां की हथकड़ियां?
अब के उत्पीड़न कब बीते स्वप्न बनेंगे?''[7]

भारती ने 'नाचेंगे हम'(सुतंदिरप्पल्लु) कविता में कल्पना करते हैं कि भारत स्वतंत्र हो गया है–

''नाचेंगे हम आनंदमगन हो नाचेंगे,
आनंद स्वराज मिला हमको, हम नाचेंगे।''[8]

अनुभूति के स्तर पर यह समझना बहुत कठिन है कि इन स्वतंत्रता सेनानियों को स्वतंत्र होने की कैसी छटपटाहट थी। चिदंबरम पिल्लै और सुब्रह्मण्य भारती की स्वतंत्रता की छटपटाहट को रामप्रसाद 'बिस्मिल' की पंक्तियों से समझा जा सकता है, जो अपने जीते जी भारत को स्वतंत्र देखना चाहते थे–

''काश अपनी जिंदगी में हम ये मंजर देखते
यूं सरे-तुरबत कोई महशर ख़राम आया तो क्या
×× ××
आखिरी शब दीद के कातिल थी 'बिस्मिल' की तड़प
सुबह दम गर कोई भी बालाए-बाम आया तो क्या''[9]

सुब्रह्मण्य शिवा सुब्रह्मण्य भारती के समकालीन थे। सुब्रह्मण्य शिवा चिदंबरम पिल्लै के भी गहरे मित्र थे। चिदंबरम पिल्लै के साथ सुब्रह्मण्य शिवा को भी कठोर कारावास हुआ था। सुब्रह्मण्य शिवा घूम-घूमकर भाषण देते और सुब्रह्मण्य भारती की कविताएं पूरे तमिलनाडु में गाते। इसके साथ-साथ सुब्रह्मण्य भारती स्वयं भी विभिन्न अवसरों पर अपनी क्रांतिकारी राष्ट्रीय कविताओं का गान करते थे। 'तमिल साहित्य का इतिहास' पुस्तक के लेखक मु. वरदराजन लिखते हैं–''नवजागरण की तीव्र चेतना के फलस्वरूप मद्रास के समुद्र तट पर उन्होंने (भारती ने) कई गीत गाकर सुनाए। बाद में उनके गीत छपकर जनता के बीच प्रसारित किए गए। उस नयी चेतना और नवजागरण ने तमिलनाडु में आग की तरह फैलकर छोटे-छोटे गांवों और शहरों की आम जनता को जागृत किया।''[10] इससे सुब्रह्मण्य भारती की कविताएं पूरे तमिलनाडु में जन-जन तक फैल गयीं।

सुब्रह्मण्य भारती 'भारत देशम्' कविता में भारत के संपूर्ण विकास की बात करते हैं, उसे आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में केवल तमिलनाडु नहीं, संपूर्ण भारत है। वह कहते हैं–

''विचरण होगा हिमाच्छन शीतल प्रदेश में,
पोत संतरण विस्तृत सागर की छाती पर।''[11]

इन पंक्तियों में संपूर्ण भारत दृष्टिगोचर होता है। भारत में समुचित सिंचाई की व्यवस्था न होने के कारण वर्षा न होने पर भीषण अकाल पड़ते थे। वे सिंचाई व्यवस्था के लिए कहते हैं–

''जो बंग देश से होकर सागर में गिरते,
उन जल-मार्गों का मुख पश्चिम को मोड़ेंगे।
उस जल से ही मध्य देश में अधिक अन्न उपजाएंगे।''[12]

सुब्रह्मण्य भारती का सन् 1922 में निधन हो गया था; उससे पूर्व भारती का यह चिंतन सराहनीय है। बाद में कई विचारकों ने चिंतन किया पर यह परियोजना अभी तक सफल नहीं हो पायी है। भारती इस बात से दुःखी थे कि भारत की संपूर्ण खनिज संपदा पर अंग्रेजों का अधिकार था। वे कच्चा माल भारत से ले जाते थे और उसे अपने देश में तैयार कर संपूर्ण विश्व में निर्यात करते थे। भारती कहते हैं–

''खोल लिया जाएगा, सोने की खानों को,
खोद लिया जाएगा, स्वर्ण हमारा होगा।
आठ दिशाओं में, दुनिया के हर कोने में
सोने का अतुलित निर्यात हमारा होगा।''[13]

'स्वर्ण हमारा होगा', 'निर्यात हमारा होगा' में भारती के मन की पीड़ा और भविष्य का स्वप्न दिखाई देता है। भारती का मानना था कि भारत भारतवासियों का है, इसकी प्रत्येक वस्तु पर भारतीयों का अधिकार है। अंग्रेज यहां व्यापार करने आए थे और अब मालिक बन बैठे हैं। भारती के काव्य में जगह-जगह यह पीड़ा दिखाई देती है। भारती भारतीयों को जगाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि भारतीय अपने स्वत्व को समझें और अपना अधिकार पाने के लिए तत्पर हों।

भारती जानते हैं कि भारत की सबसे बड़ी कमजोरी है उसका वर्ण, धर्म, प्रांत, भाषा आदि

में बंटा होना। वे कहते हैं कि भारत भूमि पर जिसने भी जन्म लिया, वह भारतवासी है, उसमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है, सब समान हैं–

''ब्राह्मण कुल का हो या अछूत
जो भी है इस भू पर प्रसूत,
है जन्म जात ही वह महान,
सब जाति-धर्म, सब जन समान।''[14]

फिर वे भारत की भावात्मक एकता के लिए कहते हैं–

''सिंधु नदी की इठलाती उर्मिला धारा पर-
उस प्रदेश की मधुर चांदनीयुत रातों में।
केरलवासिन अनुपमेय सुंदरियों के संग-
हम विचरेंगे बल खाती चलती नावों में
कर्णमधुर होते हैं तेलुगु गीत उन्हें हम गाएंगे।
सब शत्रु भाव मिट जाएंगे।''[15]

वर्ण, धर्म, भाषा, प्रांत का झगड़ा तब मिटेगा जब आपस में प्रेम होगा। इसलिए सुब्रह्मण्य भारती कहते हैं कि सुंदर चांदनी रातों में सुदूर उत्तर की सिंधु नदी की लहरों पर सुदूर दक्षिण केरल की सुंदरियों के साथ नावों में विचरण होगा और मधुर तेलुगु गीत गाएंगे। भारती का मानना है कि जब तक हम उत्तर, दक्षिण, तमिल, तेलुगु, हिंदी में बंटे रहेंगे, तब तक भारत शक्तिशाली नहीं बनेगा। भारती स्वयं संस्कृत, तमिल, हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में निष्णात थे। इसीलिए वे भारत और विश्व को ठीक तरह से समझ सके और उनकी विश्लेषक-दृष्टि पुष्ट हुई। हिंदी के लिए 'इंडिया' पत्रिका में भारती द्वारा की गई टिप्पणी ध्यान देने योग्य है। भारती लिखते हैं– ''हम तमिल भाषियों का कर्तव्य है कि हिंदी अवश्य सीखनी है। विभिन्न राज्यों में विभिन्न भाषाएं बोली जाने पर भी समूचे भारत के लिए एक आम भाषा की आवश्यकता है। तमिल भाषी तमिल के साथ हिंदी, तेलुगु भाषी तेलुगु के साथ हिंदी, बंगभाषी बंगाली के साथ हिंदी सीखेंगे तो एक आम भाषा (संपर्क भाषा) हम लोगों के लिए हो जाएगी। हिंदी के बिना अगर हम यह सोंचे कि हमसे प्रचलित अंग्रेजी भाषा ही आम जनता की भाषा क्यों न हो जाएं, तो यह असाध्य कार्य ही नहीं, बज्र मूर्खता भी है। अंग्रेजी भाषा विदेशी है यह हमारी अपनी नहीं है। इस अंग्रेजी में देश के सभी लोगों में घर करने की स्थिरता पाने की प्रकृति भी नहीं है, पर हिंदी की प्रकृति वैसी नहीं है। तीस करोड़ लोगों में से आठ करोड़ से अधिक लोग हिंदी बोलते हैं। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्री, बंगाली आदि लोग हिंदी को आसानी से समझ लेते हैं।''[16]

'गन्ने के खेत में' (करुंबुन्तोट्टत्तिले) कविता में भारती की व्यापक संवेदनशील दृष्टि दृष्टिगोचर होती है।

भारत में विदेशी शासकों के एजेंट गांव, मेले, बाजारों में घूमते रहते थे और भोले-भाले ग्रामीणों को जो गरीबी से बेहाल थे, बहला-फुसलाकर अन्य देशों में कार्य करने के लिए भेज देते हैं। विदेशी शासक ऐग्रीमेंट करके इन्हें अपने उपनिवेशों में ले जाते थे और जानवरों की तरह उनसे कार्य लेते थे। यह श्रमिक गिरमिटिया कहलाते थे। यह 'गिरमिटिया' शब्द ऐग्रीमेंट से ऐग्रीमेंटिया

बना, फिर गिरमिटिया हो गया। यह श्रमिक ऐग्रीमेंट पर केवल अंगूठा लगाते थे, उन्हें कुछ भी नहीं मालूम होता था कि ऐग्रीमेंट में क्या लिखा हुआ है?

इन्हें बहलाने-फुसलाने वाले एजेंट ने बता रखा था कि बहुत-सा धन कमाकर तुम अपने घर पुनः आ जावोगे, पर यह गिरमिटिया श्रमिक कभी भी अपने देश वापस नहीं आ पाते थे। इन्हें कोलकाता आदि बंदरगाहों पर एक डिपो में रखा जाता और फिर पानी के जहाजों से यथास्थान भेज दिया जाता। इसके बाद इनका यातना का दौर शुरू होता। ये आठ-आठ आंसू रोते, तड़पते पर वापस नहीं आ पाते। इनसे दिन-रात काम लिया जाता, काम न करने पर कोड़े बरसाये जाते, महिलाओं के साथ व्यभिचार किया जाता। वे रोतीं, तड़पतीं, पर बेबस हो कुछ कर नहीं पातीं। उन्हीं महिलाओं की पीड़ा को भारती ने 'गन्ने के खेत में' कविता में चित्रित किया है।

गन्ने के खेत में महिलाएं दिन-रात काम करती हैं। हाथ-पैर थक जाते हैं, गिर-गिर पड़ती हैं, पश्चाताप करते हुए विलाप करती हैं–

''अन्यायी उत्पीड़न देते ही रहते हैं,
बहनों को त्रास दे सतीत्व भंग करते हैं।
बेचारी अबलाएं तड़प-तड़प रहती हैं
शोषण की ज्वाला में घुट-घुटकर मरती हैं।''[17]

भारती ने रूस के तानाशाह ज़ार पर भी कविता लिखी। उनका मानना था कि जब ऐसे तानाशाह ज़ार का पतन हुआ, तो एक दिन अन्यायी अंग्रेजों का भी पतन होगा।

भारती ने घोषणा की थी कि ''मेरे कारण यह अभिशाप मिटकर रहेगा कि तमिलनाडु में आधुनिक काल में कोई प्रख्यात तमिल कवि नहीं हुआ।''[18] भारती की यह प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। भारती तमिलनाडु में ही नहीं, पूरे भारतीय साहित्य में अपना अप्रतिम स्थान रखते हैं। वे तमिल नवजागरण के अग्रदूतों में एक हैं। भारत के प्रति उनकी चिंतन दृष्टि भारत को सदैव मार्ग दिखाती रहेगी। भारती ने भारत के बहुमुखी विकास और आत्मनिर्भरता का जो सपना देखा था; वह एक दिन अवश्य पूर्ण होगा।

संदर्भ सूची :

1. शेषन, डॉ.एम. (1998). *तमिल साहित्य एक झांकी.* मद्रास : मीनाक्षी प्रकाशन. पृ. 206
2. शर्मा, टी.एस.राजु. (2007). *भारत के स्वतंत्रता संग्राम में तमिलनाडु का योगदान.* वालजा (तमिलनाडु) : प्रकाशक : टी.एस.राजु शर्मा. पृ. 37
3. वही, पृ. 36
4. वही, पृ. 41
5. वही, पृ. 191
6. वही, पृ. 195, 196
7. सुंदरम्, ना. (अनुवादक). (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं पांचाली शपथम्.* दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 70
8. वही, पृ. 74
9. मिश्र, डॉ. शिव कुमार. (1988). *आजादी की अग्निशिखाएं.* दिल्ली : इंडियन फारमर्स फर्टिलाइजर को-ऑपरेटिव लिमिटेड. पृ. 188

10. वरदराजन, मु. (अनुवाद : शेषनू, एम.). (1994). *तमिल साहित्य का इतिहास.* नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी. पृ. 320
11. सुंदरम ना. (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं पांचाली शमथम्.* दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 39
12. वही, पृ. 39
13. वही, पृ. 39
14. वही, पृ. 33
15. वही, पृ. 40
16. सुंदरमू, एन. (1995). *सुब्रह्मण्यम भारती.* लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान. पृ. 78,79
17. सुंदरमू, ना. (2007). *सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं एवं पांचाली शमथम्.* दिल्ली : ग्रंथ सदन. पृ. 78
18. वही, पृ. 12

□

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

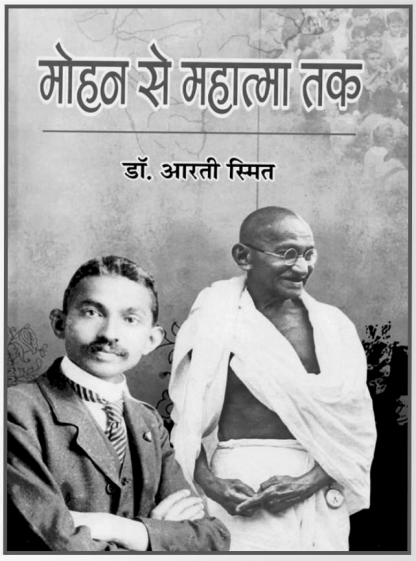

मूल्य : 100

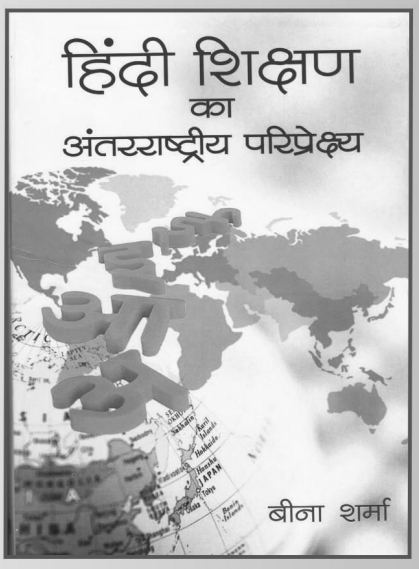

मूल्य : 650

गांधी दर्शन और भारती

ए. भवानी

प्राचीन काल से उत्तर में विंध्याचल पर्वत, दक्षिण में कन्याकुमारी, पूर्व और पश्चिम में सागर तमिल क्षेत्र की सीमाएं रही हैं। राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती ने भी इस भौगोलिक एकता को अपनी कविता में व्यक्त किया है। तमिलनाडु के निवासी अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राण हथेली पर लिये फिरते हैं। ऐसे वीर पुरुषों की भूमि है, जो वीरता और स्वाभिमान में पुरुषों से बढ़कर वीरांगनाओं की पुण्य-भूमि है। इसी पावन भूमि में कण्णकी जैसी पतिव्रता नारियों की, कंबर तिरुवल्लुवर इलेगो जैसे महान कवियों की ज्ञान भूमि एवं नायन्मार, आलवार जैसे भक्तों की अक्तार भूमि है। इसी संदर्भ में व्यक्ति जब अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को छोड़कर समष्टिगत कार्यों में लग जाता है, तब राष्ट्रीयता का जन्म होता है। गांधीजी के विचारों में भी यह समष्टिगत की भावना थी। उन्होंने भी अपने देश के लिए सबकुछ बलिदान कर दिया। राष्ट्रीयता की भावना मनुष्य के जन्म के साथ जन्म लेती है और उसके विचार व कार्य में सम्मिलित रहती है। यह उनके गुणों की प्रेरणार्थक चेतना बनकर रहती है। सुब्रह्मण्य भारती इस विषय पर लिखते हैं कि–

जब श्रेष्ठ तमिलनाडु कहा जाता है, तब मीठा शहद कानों में घुलता है।

भारत में भाषायी भेद है। गांधीजी ने भारत में व्याप्त इस भाषायी भेद होने पर भी, संपूर्ण भारत को एकसूत्र में बांधने का प्रयास किया किया। उनका विचार था कि इस अनेकता में भावनात्मक एकता को हम पाते हैं। इस भावना के सुब्रह्मण्य भारती ने अपनी एक कविता के माध्यम से व्यक्त किया है कि, जिस प्रकार गांधीजी का जीवन एक खुली पुस्तक है और उनका जीवन ही एक प्रयोगशाला है। वैसे ही तमिलनाडु के राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्य भारती का जीवन भी राष्ट्र के लिए समर्पित था। अपने उत्तम सिद्धांतों को उन्होंने अपने जीवन में उतारा और कथनी की अपेक्षा करनी पर जोर दिया। यही कारण है कि इस राष्ट्रीय चिंतक गांधी और सुब्रह्मण्य भारती के अनोखे व्यक्तित्व ने संपूर्ण भारत को प्रभावित किया। सुब्रह्मण्य भारती का यह आदर्श व्यक्तित्व संपूर्ण तमिल साहित्य में प्रतिबिंबित हुआ।

गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन में अन्य देशों की भांति तमिलनाडु ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आजादी की लड़ाई में तमिल के नेता ही नहीं, बल्कि नर-नारी और युवकों ने भी अपना संपूर्ण योगदान दिया। इस भूमि में देशप्रेमी कवियों और साहित्यकारों ने अपनी वाणी के माध्यम से इस आंदोलन का भरपूर समर्थन किया। यहां की जनता के मन में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में अनेक साहित्यकारों ने योगदान दिया, जिनमें राष्ट्री कवि सुब्रह्मण्य भारती के अतिरिक्त कवि मणि

देशिक विनायकम् पिल्लै, भारतीदासन, नामक्कल पिल्लै, मू.पं. सोमसुंदरम् 'सोम्', कंबदासन, योगी शुछानंद भारती, कविवर कोत्तमंगलम् 'सुब्बु' आदि शामिल हैं। तमिलनाडु की महिमा गान और राष्ट्रीय विचार से ओत-प्रोत राष्ट्र कवि सुब्रह्मणय भारती की निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है कि तमिलनाडु में पराधीनता को दूर करने के संग्राम में एक प्रकार की एकता पायी जाती है। देश में जाति, धर्म, ऊंच-नीच आदि सभी प्रकारों के भेद-भाव से ऊपर उठकर, एकता के कारण, स्वाधीनता पाने के लिए सब मिलकर लड़े। स्वतंत्रता प्रिय कविगण भी आपस के भेदभाव को त्यागकर एक स्वर में गा उठे।

कवि सुब्रह्मण्य भारती कहते हैं कि स्वतंत्रता एक ऐसी भावना है, जो हरिजन और चांडाल जैसी जातियों में भी पनप सकती है, उनको भी इसकी आवश्यकता है। गांधीजी का विचार भी यही था। हरिजन के प्रति उनके मन में उठने वाला प्रेम और स्नेह अकथनीय है।

सन् 1905 में बंगभंग आंदोलन के समय भारती जी ने विदेशी शासन के विरुद्ध अपने विद्रोह का झंडा कविता के माध्यम से फहराया। वैसे गांधी युग के पूर्व सुब्रह्मण्य भारती ने भारत के कृषकों और मजदूरों के राज्य की कल्पना की। इसके समर्थन में उन्होंने असंख्य गीत रचे। विदेशी सरकार के विरुद्ध 'विडुदलै' और 'इंडिया' नामक पत्रिकाओं में अपनी रचनाएं बराबर प्रकाशित करने लगे। इसके पश्चात भारती जी कांग्रेस के महासभा के अधिवेशनों में भाग लेते रहे और शासन के विरुद्ध आम सभाओं में जोशीले भाषण देने के साथ जुलूस भी निकालते रहे। सरकार भारती के कारनामों से तंग आ गई और उन्हें गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। समय देखकर भारती पांडिचेरी अरविंद घोष से मिलने चले गए। ब्रिटिश सरकार के अधिकारी भी पांडिचेरी पहुंचे गए, भारती को पकड़ने। वहां पुलिस के आंखों में धूल झोंककर भारती अपने आप को बचा लिया। उसके बाद वे अरविंद घोष के आश्रम में कुछ दिन रहकर उनसे वेद, शास्त्र आदि का गहन अध्ययन किया। सर्वप्रथम 'स्वप्न' नाम से अपनी स्वयं रचित कविताओं का संकलन प्रकाशित किया।

भारती सच्चे अर्थों में विशुद्ध गांधीवादी और देशभक्त थे। 1919 में राजाजी के घर पर महत्मा गांधी से भारती मिले। गांधीजी स्वयं भारती की कविताओं से प्रभावित थे। भारती की महानता का गुणगान करते गांधी कभी नहीं थकते थे। उन्होंने राजाजी से कहा था—इसका ध्यान रखना। ये देश के लिए एक महान धरोहर हैं। स्वयं भारती ने गांधी की महिमा गान पर एक कविता की रचना की है, जिसे तमिलनाडु की सुप्रसिद्ध गायिका डी.के. पट्टम्माल ने गाया और यह गीत उन दिनों बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय बना।

इस संपूर्ण भारत में मेरा ही राज्य हो—दरिद्रता, गरीबी, परतंत्रता में दबी, कुचली पड़ी भारत देश को उभारने आए हे महान! गांधी महात्मा—तुम जिओ, तुम जिओ, तुम जिओ, हे महान जुग-जुग जिओ।

गांधीजी के अथक प्रयास से गुलामी की जंजीर टूटी, सबको आजादी मिली, धन-दौलत ऐश्वर्य दिला कर लोगों के जीने का स्तर ऊंचा किया। संपूर्ण भारत में शिक्षा और ज्ञान का दीपक जला कर लोगों के मन में बस गए। तभी आपको यश और कृति प्राप्त हुई और आप महात्मा बनें। संपूर्ण राष्ट्र के पिता बनें। यह त्याग और तपस्या सुब्रह्मणय भारती में भी थी।

भारत की महिमागान करते हुए हुए सुब्रह्मण्य भारती आत्मविभोर हो जाते थे। उनकी 'नमन करें देश को', 'सर्वोत्तम देश भारत हमारा', 'जय भारत', 'भारत-माता', 'भारत जननी जागरी' आदि

कविताएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वतंत्रता उनकी कविताओं का मूलमंत्र था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही भारती ने आजादी के गीत गाए हैं और संविधान की रचना भी कर डाली है।

सुब्रह्मण्य भारती गांधीवादी दर्शन के भी पक्के समर्थक थे। वे जाति-पांति, ऊंच-नीच, अमीर-गरीब, हिंदू-मुस्लिम का भेद-भाव मानते नहीं थे। इस बात को रेखांकित करते हुए उनकी एक कविता का भाव दृष्टव्य हैं–

'ब्राह्मण हो अछूत
जो भी हुआ भू पर अछूत
जनम से कोई होता नहीं महान
सब जाति-कुल-धर्म सब समान।'

अंग्रेज लोग 'फूट डालो और शासन करो' नीति अपनाकर हमारे देशवासियों में भेद-भाव पैदा करके अपना उल्लू सीधा करना चाहते थे। उनकी इस षड्यंत्रकारी नीति की पोल खोलते हुए भारती ने गीत लिखे, जिसका भाव है–

हे! विदेशियों भेद नहीं है हममें
हम हैं एक ही माता के कोख से जनमें
फूट क्या डालोगे हममें
हम रहेंगे सदा भाई-भाई बन कर
हम तीस कोटि जन सदा
साथ जीयेंगे और साथ मरेंगे।'

भारती के गीतों में अखंडता की परिकल्पना की जा सकती है। भारत की महिमा एवं भाषाई एकता का वर्णन उनकी निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

तीस करोड़ मुख है भारत माता कि किंतु प्राण एक है, भारत माता की महिमा है। एक सोच और एक विचार किंतु अष्ट दश भाषाओं में ध्वनित है।

भारती ने भावी भारत के सर्वांगीण नव-निर्माण का रमणीय स्वप्न देखा है, जो इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

(मूल कविता के भाव हैं)

'छतरी अरूवज से ले वायुयान तक
हम निज घर में ही निर्माण करेंगे,
कृषि के योग्य उपकरण और
भारी वाहन इस धरती पे बनाएंगे।
देख हमारे जो ध्यान दुनिया थर्राएगी
मैत्री के सा बढ़ाएं हम आपस में
सरस काव्यों की रचना होगी यहीं पे
समस्त उद्योग स्थापित होंगे इस धरती पे।'

सुब्रह्मण्य भारती अहिंसा के समर्थक थे, निर्भीक नायक थे, भारत के हित-चिंतक, विश्व कल्याण के आकांक्षी होने के कारण उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय एकता और अनेकता में

एकता का स्वर ध्वनित होता है। भारतवासियों में साहस का संचार कराते हुए उन्हें ढाढ़स बंधाते हुए गीत गाया।

एक ओर भारती ने गांधी की अहिंसा का समर्थन किया है तो दूसरी ओर उनकी निर्भीकता के गीत भी कम प्रचलित नहीं हैं। पराधीन भारत की दयनीय स्थिति को देख उनका मन खौल उठता था। भारत की महिमा और महानता के गीत तुरंत उनकी रचनाओं में उभर आता–

'वेद उडैयदु इंद नाडु, नल्ल वीर उडैयदु इंद नाडु'

(अर्थात् - वेदों और वीरों से युक्त है भारत भूमि, आओ इसकी पूजा करें)

कवि भारती की राष्ट्रीय चेतना में असीम मानवता भरी है। उनकी रचनाओं में न केवल भारत के हित-चिंतन की बातें मिलती है, अपितु उनमें हम विश्व-कल्याण का भाव भी देखते हैं। उनके विचार मानव जाति से आगे बढ़कर चराचर जगत् का कल्याण चाहते हैं। उनका यह विश्वास प्रेम साधना की चरमसीमा तक पहुंचते-पहुंचते आध्यात्मिक प्रणय हो जाता है। इस प्रकार की विचारधारा हम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारों में भी हम देख पाते हैं। उनके ही विचारधारा का प्रभाव तमिलनाडु के अनेक साहित्यकारों पर पड़ा, उनमें राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती का नाम अग्रणीय है।

गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित प्रायः सभी लेखकों ने उत्थान के लिए गांधी दर्शन को एक मार्ग की तरह अपनाया है और साथ ही अहिंसा एवं सत्य की विजय गाथा का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत करते हुए राजनीति में ईश्वर सत्ता के प्रभाव का गुणगान किया है। स्वातंत्र्योत्तर युग से गांधी दर्शन भारत के जनमानस को प्रभावित करता आ रहा है और उस दर्शन को विभिन्न रूपों में प्रतिपादित करते हुए राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती जैसे अनेक कवियों द्वारा सृजनात्मक कार्य हो रहे थे और आज भी हो रहा है। गांधीवाद आज कालजयी दर्शन बनकर विश्व के मानस पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ चुका है।

□

भारतीयता के मुखर प्रवक्ता

एन. लावण्या

महाकवि भारती बड़े राष्ट्र प्रेमी थे। राष्ट्र और उनके राष्ट्र प्रेम को अलग नहीं किया सकता। उनकी कविताओं में ज्यादातर कविताएं राष्ट्र प्रेम से ओतप्रोत हैं। भक्ति गीतों में भी राष्ट्रीयता का दर्शन मिलेगा। उनका काव्य 'पांचाली शपथम्' मां भारत के ऊपर रचित है। हां, पांचाली को मां भारत के रूप में चित्रित कर अंग्रेज रूपी कौरवों से उसकी मुक्ति की कल्पना की है। अंग्रेजों का अत्याचार, स्वतंत्रता की इच्छा, भारतीय नेताओं का संग्राम, लोगों का भय, अकाल का उत्पीड़न आदि के बीच लोगों का भय दूर करना, उनमें साहस बढ़ाना, स्वतंत्रता के प्रति जागृति पैदा करना और सामान्य लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ प्रेरित करना आदि सारे कार्यों को कवि भारती अपनी कविताओं से करने लगे थे।

तुलसी के समय उन्हें आजादी की लड़ाई लड़ने की जरूरत नहीं थी। उन्हें केवल समाज में नैतिकता की स्थापना करनी थी। इसलिए तुलसी ने भक्ति के जरिए लोगों का अज्ञान दूर कर सामाजिक उत्थान करने के लिए मानस का निर्माण किया। इस काम के लिए तुलसी ने जन-बोली को अपनाया और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया, जिसे सामान्य जनता आसानी से समझ सके। ठीक वैसे ही भारती ने भी बड़ी सरलतम भाषा में अपनी कविताएं लिखीं, जिसे सामान्य अशिक्षित लोग भी समझ सकें। भारती को भी अपने समाज का उत्थान करना था। भक्ति के जरिए नैतिकता का पुनर्निर्माण करना था। सबसे ऊपर राष्ट्रप्रेम पैदा करना, लोगों के मन से भय दूर करना, अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध लड़ने का साहस बढ़ाना और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ना आदि अनेक समस्याएं थीं। अतः कवि ने अलग-अलग शीर्षकों में लिखी कविताओं के अलावा अन्य कविताओं के बीच-बीच में भी दैवी-भक्ति, राष्ट्र-भक्ति, नैतिक उत्थान आदि बातों को ठूंस-ठूंसकर भर दिया है।

चिन्नस्वामी सुब्रह्मण्य भारती को राष्ट्रकवि और महाकवि के नाम से भी जाना जाता है। भारती तमिल गद्य-पद्य के उत्कृष्ट ज्ञाता थे और आधुनिक तमिल कविता के अग्रणी भी।

भारती ने राष्ट्र की स्वतंत्रता, नारी मुक्ति, जातिवाद, धार्मिक एकता, अस्पृश्यता और अंध विश्वास आदि विषयों पर कविताएं और निबंध लिखे हैं। बाल्यकाल में ही काव्य रचना करने में वे कुशल थे। भारती की काव्य रचना से मुग्ध होकर राजा ऐट्टप्प नायक्कर ने उन्हें 'भारती' की उपाधि से नवाजा।

चार साल के काशीवास में रहकर भारती ने संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया। अंग्रेजी कवि शेली से वे विशेष प्रभावित थे। उन्होंने ऐट्टयपुरम् में 'शेलियन गिल्ड' नामक संस्था की स्थापना करके 'शेलीदासन्' के उपनाम से अनेक रचनाएं लिखीं। काशी में ही उन्हें राष्ट्रीय चेतना की शिक्षा मिली, जो आगे चलकर उनके काव्य का मुख्य स्वर बन गई। काशी में उनका संपर्क भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा निर्मित 'हरिश्चंद्र मंडल' से रहा।

काशी में उन्होंने कुछ समय एक विद्यालय में अध्यापन किया। वहां उनका संपर्क डॉ. एनी बेसेंट से हुआ, पर वे उनके विचारों से पूर्णतः सहमत नहीं थे। एक बार उन्होंने अपने आवास 'शैव मठ' में महापंडित सीताराम शास्त्री की अध्यक्षता में सरस्वती पूजन का आयोजन किया। भारती ने अपने भाषण में नारी शिक्षा, समाज सुधार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वभाषा की उन्नति पर जोर दिया। अध्यक्ष महोदय ने इसका प्रतिवाद किया। फलतः बहस होने लगी और अंततः सभा अधूरी ही विसर्जित करनी पड़ी।

भारती का प्रिय गान बंकिम चंद्र का 'वंदे मातरम्' था। सन् 1905 में काशी में हुए कांग्रेस अधिवेशन में सुप्रसिद्ध गायिका सरला देवी ने यह गीत गाया। भारती भी उस अधिवेशन में थे। बस तभी से यह गान उनका जीवन-प्राण बन गया। मद्रास लौटकर भारती ने उस गीत का उसी लय में तमिल में पद्यानुवाद किया, जो आगे चलकर तमिलनाडु के घर-घर में गूंजने लगा। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से लोगों के मन में आजादी की प्यास बढ़ाई।

भारतीय इतिहास में भारती का समय बहुत महत्त्वपूर्ण रहा, क्योंकि बाल गंगाधर तिलक, उ.वे. स्वामिनाथ अय्यर, व.वु. चिदंबरम् पिळ्ळै, अरविंद जैसे महान नेता उनके समकालीन थे। विवेकानंद की शिष्या बहन निवेदिता को भारती ने अपना गुरु माना।

तमिल साहित्यिक जगत् में 'मूंछ कवि' और 'मुंडासु कवि' (पगड़ी वाला कवि) के नाम से मशहूर भारतियार संस्कृत, बंगाली, हिंदी और अंग्रेजी आदि भाषा में प्रवीण थे। 1912 में उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का तमिल में अनुवाद किया। भारती द्वारा लिखित 'कण्णन पाट्टु', 'कुयिल पाट्टु', 'पांचाली शपथम्', और 'पुदिय आत्तिच्चूड़ी' आदि रचनाएं बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

उनकी कविताओं में गांडीव की टंकार, पांचजन्य की ध्वनि, इंद्र के वज्र-सी उद्घोषणा के समान स्वातंत्र्य की मांग है। जब हम स्वतंत्रता आंदोलन और उसके पुरोधाओं की बात करते हैं तो नवजागरण-कालीन पृष्ठभूमि दिमाग में उभर आती है। उस समय उत्तर से दक्षिण सभी जगह बौद्धिकता, मानवता, विज्ञान, राष्ट्र और स्वतंत्रता के सवाल हर किसी के जहन में उठ रहे थे। नवजागरण के दौर में हर विचारक के मन में यही प्रश्न था कि अंग्रेजों द्वारा थोपी गई झूठी श्रेष्ठता को कैसे ध्वस्त किया जाए, साथ ही किस तरह भारतीय जनमानस में आत्मबल का संचार हो सके? साहित्यकारों के समक्ष यह यक्ष-प्रश्न था कि भारतीय पराजित मानसिकता के विपरीत आत्म स्वाभिमान और गौरव का भाव कैसे जगाया जाए? प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि ''दो भिन्न सभ्यता, संस्कृतियों की टकराहट से एक प्रकार की रचनात्मक ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह रचनात्मक ऊर्जा ही नवजागरण के स्वरूप में थी।'' हिंदी में जो काम भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी,

मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, निराला और दिनकर ने किया वही काम तमिल में सुब्रह्मण्य भारती ने किया।

भारती की कविताएं गेय शैली में हैं। वे सब राग, ताल, लय के साथ गाए जाने वाली हैं। उन्होंने अपने हर गीत के ऊपर उसके राग और ताल के नामों का उल्लेख किया है।

भारती अपनी राष्ट्रीय विचारवादी कविताओं के कारण राष्ट्र कवि के रूप में उभरे। उन्होंने नवंबर सन् 1904 से अगस्त सन् 1906 तक 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका के सह-संपादक के रूप में काम किया। आजादी से पहले ही, ''हमें आजादी मिल गई, आइए, हम मिलकर गाएं और नाचें'' कहकर उन्होंने गीत गाया था। कवि भारती वास्तव में भविष्य द्रष्टा थे। इसीलिए आजादी के पूर्व ही उन्होंने गाया कि अंग्रेजों के शासन काल में जो देश की जो दुर्दशा थी, उसकी न लोगों को जानकारी थी और न उसकी परवाह। लोगों की यह दयनीय दशा देखकर कवि भारती का मन बहुत खिन्न हुआ। लोगों की भुजाओं में जो ताकत होनी चाहिए थी, वह उनमें नहीं थी। मन में जो धैर्य होना चाहिए था, वह लोगों में नहीं था। चेहरे में जो कांति होनी चाहिए थी, वह उनमें नहीं दीखती थी। आंखों में जो चिनगारी होनी चाहिए थी, वह नहीं होती थी। स्वर में जो गंभीर ध्वनि होनी थी, वह उनमें नहीं थी। शरीर में जो सौंदर्य होना था, वह उनमें नहीं था। उनके मन में बहुत भय छाया हुआ था और उनमें दीन भावना की प्रबलता थी। इन सारी बातों को देखकर कवि भारती का मन वेदना से भर उठा। कवि सोचने लगा कि यदि लोगों की हालत यही रही तो अंग्रेजों का सामना कैसे हो सकता था? अतः कवि ने सोचा कि पहले लोगों की यह हालत बदलकर उन्हें सही बनाना चाहिए। इसलिए कवि अपनी वेदना का स्वर इस तरह व्यक्त करने लगे–

''हे कमजोर कंधे के भारत! देश छोड़कर जा जा जा; हे आत्मविश्वास विहीन भारत! जा जा जा; कांतिहीन मुख वाले हे भारत! जा जा जा; हे रोशनी विहीन नयन के भारत! जा जा जा; हे ध्वनि विहीन कंठ के भारत! जा जा जा; हे बल विहीन बदन के भारत! जा जा जा; हे भय पीड़ित भारत! जा जा जा; हे गुलामी की चाहवाले भारत! जा जा जा,'' कहकर भारत की जितनी कमजोरियां, हीनताएं और अक्षमताएं हैं; उन सबको दूर कर वे भारत को और भारत के लोगों को स्वतंत्रता संग्राम के लिए सक्षम बनाना चाहते हैं।''

अब कवि भारती लोगों की मानसिक कमजोरियों को भगाकर, देश और देश के लोगों को मजबूत और साहसी बनाना चाहते हैं, इसलिए बल, तेज, धैर्य, साहस, आक्रोश, दया आदि गुणों का स्वागत करते हुए वे कहते हैं–

''रोशनी भरी नयन के हे भारत! आ आ आ; दृढ़ता भरे मन वाले हे भारत! आ आ आ; आनंद भाषिणी हे भारत! आ आ आ; बलयुक्त भुजा वाले हे भारत! आ आ आ; विवेक भाषिणी हे भारत आ आ आ; अन्याय देख भड़कने वाला हे भारत आ आ आ; दीनता देख दयालु बने हे भारत! आ आ आ; सांड-सी गंभीर गति वाले हे भारत आ आ आ''...कहकर, इस तरह सब प्रकार की क्षमताओं से पूर्ण नए भारत का स्वागत करते हुए लोगों में यही भावना लाने का कवि प्रयास करते हैं।

राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण में प्रांतीयता या भाषावाद के बिना कवि संपूर्ण भारत को एक मानता है और अन्य प्रांत एवं भाषाओं का आदर करते हुए उन्हें जोड़कर लोगों की आपसी एकता का परिचय अपने ललित शब्दों में प्रकट करता है। यह राष्ट्रीय एकता का एक सुंदर उदाहरण है। देखिए उसका लालित्य। कवि कहता है–

''सिंधु नदी पर, चांदनी रात में, केरल की सुंदर कन्याओं के साथ शहद-सी मधुर तेलुगु में गीत गाते हुए नौका क्रीड़ाएं करेंगे और भारत की एकता का परिचय देंगे।'' कवि यहां भाषा भेद के बिना सब प्रांतों को जोड़कर सब के साथ मिल-जुलकर रहने का भाव प्रकट करते हैं। अपनी भाषा की सनक न दिखाकर अन्य प्रांत की भाषा तेलुगु की मधुरता की प्रशंसा करते हैं। केरल प्राकृतिक सौंदर्य से भरा प्रदेश है और केरल की महिलाएं सहज ही अति सुंदर हैं। कवि केरल प्रांत की इस प्राकृतिक सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए अपना मैत्री भाव प्रकट करते हैं। राष्ट्रीय एकता का निर्माण करते हुए कवि आगे कहता है–

''हम कावेरी के किनारे उत्पन्न कोमल व स्वादिष्ट पान देकर बदले में गंगा-कछार से गेहूं के पदार्थ लेंगे। शेर जैसे मराठों की कविताएं सुनकर उसके बदले में चेर देश यानी केरल प्रदेश के हाथी दांतों के उपहार देंगे।'' यहां कवि कावेरी और गंगा को जोड़ने का प्रयास करते हैं। महाराष्ट्र की मराठी भाषा को श्रेष्ठ बताते हुए उन कविताओं की प्रशंसा में मराठी कवियों के सम्मान में केरल के अमूल्य हाथी दांतों को भेंट देना चाहते हैं। यह कवि के राष्ट्रीय दृष्टिकोण का सुंदर उदाहरण है।

अंग्रेजों का विचार था कि भारत बहु भाषा-भाषी देश है, भाषाओं की भिन्नता के कारण भारत के लोग आपस में नहीं जुड़ पाएंगे, अतः इन्हें आसानी से दबाए रख सकते हैं। पर उनकी इस कूट नीति को पहचानकर कवि भारती लोगों को एकसूत्र में पिरोने का काम करते हैं। अंग्रेजों को समझाते हुए कवि कहता है–

''यह सच है कि मां भारत के तीस करोड़ चेहरे हैं। मगर हे अंग्रेजो! समझ लो कि इसके प्राण एक ही हैं। देखने में लगता है कि मां भारत अठारह भाषाएं बोलती हैं, पर समझ लो कि इसका चिंतन एक ही है।'' यानी कवि कहते हैं कि भारत में तीस करोड़ लोग हैं और अठारह भाषाएं बोली जाती हैं। इसलिए इस भिन्नता के कारण लोग एक-दूसरे के निकट न आ पाएंगे, एक-दूसरे को नहीं समझ पाएंगे। इसलिए इनमें एकता नहीं आ सकती। कवि का कहना है कि बात वैसी नहीं है। इस तरह सोचना भी गलत है; क्योंकि लोग भले ही विभिन्न भाषाएं बोलते हैं, मगर भारत के सभी लोगों का चिंतन और विचार एक ही है। अतः हे अंग्रेजो! तुम्हारा वश यहां नहीं चल सकता।

कवि लोगों को समझाना चाहते हैं कि यह देश हमारा है, इस पर अंग्रेजों ने कब्जा कर हमें गुलाम बनाया है। इस गुलामी से हमें आजाद होना चाहिए, हम सिर्फ भगवान के अधीन रहेंगे, धरती पर और न किसी के अधीन में रहेंगे। इस बात को निम्न पंक्तियों द्वारा कवि समझाते हैं–

''हम जान गए कि हम जिस देश में रहते हैं, वह हमारा है। हम यह भी जानते हैं कि

इस देश के मालिक हम ही हैं। अब इस धरती पर हम किसी की गुलामी नहीं करेंगे। हम केवल परमात्मा के ही गुलाम बने रहेंगे।'' इस तरह सामान्य जनता को कवि राष्ट्रप्रेम की बात समझाते हैं।

भारती संपूर्ण भारत के इतिहास से भी परिचित थे। अतः वे अपने गौरवमय अतीत को स्मरण करते हुए तत्कालीन समाज में नवीन ऊर्जा का संचार करते हैं। जिस प्रकार इतिहास के गौरव को पुनर्जीवित करने का काम जयशंकर प्रसाद ने भी अपने नाटकों में बड़े सशक्त रूप में किया है। भारती की रचनाओं में यहां राष्ट्रीय चेतना स्वातंत्र्य के मूल्य से जुड़ी है। वे स्वातंत्र्य को केवल राष्ट्रीय मुक्ति से नहीं, वरन् व्यक्ति की सामाजिक जड़ता से मुक्ति के रूप में देखते हैं।

कवि भारती का विचार था कि यह भारतभूमि हमारी बपौती है। हमारे बाप-दादे की देन है। इस भूमि के अतीत का गौरव अतुलनीय और अमूल्य है। इस पर हमारा पूरा अधिकार है। अतीत के उन अमूल्य बातों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करके उनको समझाना चाहते हैं कि यह भारत भूमि हमारी ही है। इस पर अंग्रेजों का अधिकार नहीं होना चाहिए। इस पर हमारा ही अधिकार अब होना चाहिए। इस भावना को पैदा करने के उद्देश्य से कवि कहते हैं–

यह देश वह भूमि है, जहां हमारे बाप-दादे और हमारे पूर्वज आनंदमय जीवन बिता रहे थे। यह वह देश है, जहां हमारे पूर्वज हजारों-हजारों साल जीने के बाद, अपनी पीढ़ियों को दे गए थे। यह वह देश है, जहां हमारे पूर्वजों ने अपने अनेक ऊंचे विचार और चिंतनों से इस देश को श्रेष्ट बनाया था। मैं इस भूमि का स्मरण कर, वंदन कर, स्तुति करूंगा। वंदे मातरम्, वंदे मातरम् कहकर इस भूमि को नमन करूंगा। अब कवि की पंक्तियां देखिए–

''हमारे देश में हजारों जातियां हैं। हमारे आपस में अनेक समस्याएं हैं। हम आपस में लड़-भिड़ सकते हैं। फिर भी हम सब एक मां की कोख से जन्मे संतान हैं। हम सब आपस में भाई-भाई हैं, इसलिए हमारे बीच में दूसरे किसी अन्य अजनबी को घुसने का अधिकार नहीं है, हम घुसने देंगे भी नहीं।'' कवि की पंक्तियां देखिए–

''जिस प्रकार 'निज भाषा उन्नति अहे' के सूत्र से भारतेंदु को प्रसिद्धि और ख्याति मिली उसी प्रकार निज भाषा तमिल में रचना कर भारती को संपूर्ण भारत में सम्माननीय स्थान मिला।'' सुब्रह्मण्य भारती ने तमिल में उस स्वातंत्र्य चेतना को मुखर किया जिसकी उस समय और समाज को नितांत आवश्यकता थी। वे मूलतः भारत की मुक्ति आंदोलन के साथ जुड़े रहकर राष्ट्र मुक्ति और मानव जाति की मुक्ति हेतु अपनी रचनाओं को सशक्त माध्यम बनानेवाले राष्ट्रकवि थे। सुब्रह्मण्य भारती का व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी है। उन्होंने अभिव्यक्ति के लिए कई विधाओं, कई कलाओं और भाषाओं का प्रयोग किया। उन्होंने कविता, कहानी, नाटक, वैचारिक निबंध, अनुवाद आदि प्रत्येक क्षेत्र में अपने सृजन से साहित्य को समृद्ध किया।

उनकी दृष्टि में साहित्य का उद्देश्य बहुत व्यापक था, वे भारतीय भाषाओं की राष्ट्रीय चेतना के आग्रही थे। इसी व्यापक उद्देश्य के अनुसार उन्होंने तमिल सहित सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य को सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्रांति के साथ जोड़ने का आह्वान किया। इस दृष्टि से सुब्रह्मण्य भारती को निस्संदेह राष्ट्र चेतना के महानायक कहा जा सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारती की कविताओं में हमें भारत माता का भव्य चित्रण देखने को मिलता है। भारती अपने देशवासियों को अनेकता में एकता स्थापित करने का संदेश देते हैं। भारती केवल कवि, निबंधकार ही नहीं थे, अपितु एक समाजसुधारक भी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा सिर्फ तमिलनाडु के लोगों को ही नहीं, बल्कि पूरे भारत को स्वराज्य-प्राप्ति की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित किया। भारती ने मां भारत की श्रेष्ठताओं का वर्णन करते हुए 'शक्ति उपासना' के आधार पर समाज के आज की परिस्थिति, भविष्य, राष्ट्रीय एकता आदि अनेक दृष्टिकोणों पर अपनी कविताएं लिखीं। ये कविताएं आज की युवा पीढ़ियों को सही मार्गदर्शन की प्रेरणाएं देती हैं। भले ही अब सुब्रह्मण्य भारती हमारे बीच नहीं रहे, लेकिन वे अपनी रचनाओं के जरिए हमारे बीच रहकर नई पीढ़ियों में हमेशा राष्ट्रीय भावना की अलख जगाते रहते हैं।

□

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

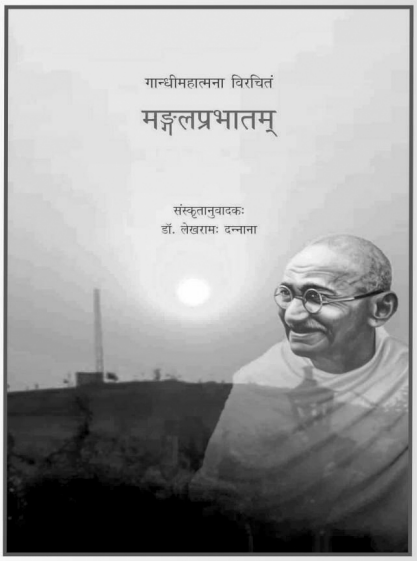

ई–बुक

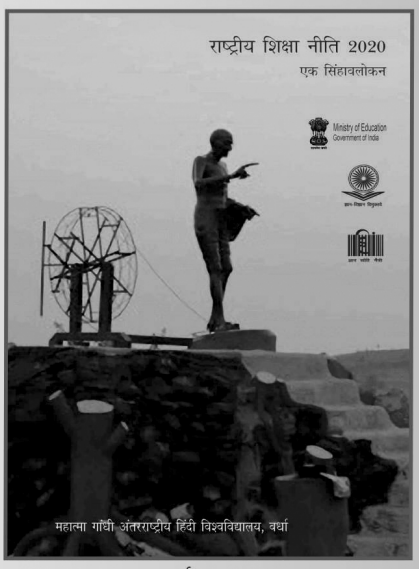

ई–बुक

आधुनिक तमिल साहित्य के पुरोधा

कुमार निर्मलेन्दु

तमिल भाषा-साहित्य का इतिहास अत्यंत गौरवमय रहा है। यह द्रविड़ भाषा-परिवार की सबसे महत्त्वपूर्ण और समृद्ध भाषा है। भारतीय भाषाओं में तमिल ऐसी एकमात्र भाषा है जो संस्कृत शब्दों की सहायता के बिना हर प्रकार के भाव-विचार को व्यक्त करने में समर्थ है; लेकिन भारत में ब्रिटिश-राज के दृढ़तापूर्वक स्थापित होने के बाद तमिल भाषा-साहित्य में गतिरोध आ गया। उसके पहले हजारों वर्षों तक तमिल प्रदेश का राज-काज सहित समस्त काम-काज तमिल भाषा के माध्यम से ही हुआ करता था। अंग्रेजों ने इस व्यवस्था को उलट दिया। अंग्रेजी भाषा द्वारा तमिल भाषा को अपदस्थ कर दिए जाने के परिणामस्वरूप तमिल सीखने की जनसामान्य की प्रवृत्ति घट गई। अंग्रेजी के माध्यम से उच्च शिक्षा ग्रहण करनेवाले तमिल जन उसकी साहित्यिक चकाचौंध में इतने भ्रमित हुए कि अपनी भाषा-संस्कृति के प्रति उनके मन में हीन-भावना घर कर गई।

विडंबना यह है कि जहां एक ओर तमिल भाषा को अंग्रेजी परस्तों की उपेक्षा मिल रही थी; वहीं दूसरी ओर कुछ अंधभक्त पंडित मध्यकालीन बोझिल शैली में, अप्रासंगिक विषयों पर, निरर्थक पोथियां लिख रहे थे। उस दौर में वेदनायकम् पिल्लै और गोपालकृष्ण भारती-जैसे कुछ प्रतिभाशाली तमिल साहित्यकारों ने गद्य एवं पद्य में समयानुकूल नयापन लाने के जो प्रयास किए, उसे अंधभक्त पंडित तमिल भाषा का अपमान बता रहे थे, लेकिन वी. गो. सूर्यनारायण शास्त्री, सुंदरम् पिल्लै, चि. वै. दामोदरम् पिल्लै, राजम् अय्यर, माधवय्या आदि अंग्रेजी-शिक्षित तमिल विद्वानों ने इस स्थिति को सुधारने का बीड़ा उठाया और तमिल साहित्य में अंग्रेजी साहित्य की विविधताओं का समावेश करने का प्रयास किया।

हिंदी के प्रसिद्ध कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने अपनी एक कविता 'कवि' में कहा है–

कलम अपनी साध
और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध

यह कि तेरी भर न हो तो कह
और बहते बने सादे ढंग से तो बह
जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख
और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख

पंडिताऊ भाषा को त्यागकर बोलचाल की भाषा को अपनाना प्रत्येक गतिशील एवं सुधी समाज के लिए अपेक्षित है। बहरहाल, सूर्यनारायण शास्त्री की भाषा में पंडिताऊपन तो था, लेकिन वे पहले तमिल विद्वान थे, जिन्होंने साहित्यिक भाषा को बोलचाल की भाषा के अनुरूप बनाने की आवश्यकता को अनुभव किया। तमिल में विज्ञान, इतिहास जैसे विषयों पर पुस्तकों के अभाव को भी उन्होंने महसूस किया; और उस कमी को दूर करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया।

नई साहित्य-रचना के साथ ही प्राचीन तमिल ग्रंथों की खोज शुरू हुई। संगम-काल की रचनाएं, पांच महाकाव्य[1], पांच खंडकाव्य[2] आदि उस समय अप्राप्य थे। ऐसी स्थिति में प्राचीन तमिल-साहित्य की समृद्धि की बात करना बेमानी था। बहरहाल, इस जटिल कार्य को वि. दामोदरन पिल्लै ने शुरू किया और पूरा किया महामहोपाध्याय यू. वी. स्वामीनाथ अय्यर ने। यू. वी. स्वामीनाथ अय्यर ने आजीवन परिश्रम करके पचास से अधिक प्राचीन तमिल ग्रंथों का संपादन और प्रकाशन किया। उन्होंने शब्दाडंबर और अनावश्यक अलंकरण के शताब्दियों पुराने बंधन से तमिल भाषा को मुक्त किया और ऐसी शैली विकसित की, जो सरल, ललित और प्रवाहमयी थी। उनकी इस सारस्वत साधना के फलस्वरूप तमिल-भाषियों को अपनी भाषा की प्राचीनता एवं साहित्यिक समृद्धि का बोध हुआ। 1885 ई. में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना के साथ राष्ट्रीयता की भावना की एक लहर उठी, जिसने पूरे भारत की जनता के स्वाभिमान को जगा दिया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा था कि ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।''

स्वभावतः भारतीय जनता में देशभक्ति के साथ-साथ भाषा-प्रेम भी बढ़ने लगा। राष्ट्रीयता का संदेश जनता तक पहुंचाने के लिए नेताओं को जनता की भाषा में बोलना और लिखना पड़ा। अंग्रेजीदां लोग भी जनभाषा में लिखने के लिए विवश हुए। इस देशव्यापी लहर का तमिल-प्रदेश पर भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

बीसवीं सदी भारत के जागरण की सदी सिद्ध हुई। इस सदी के आरंभ में ही तमिल साहित्याकाश में कविवर सुब्रह्मण्य भारती का उदय हुआ। वे तमिल साहित्य एवं समाज में क्रांतिकारी परिवर्तनों के वाहक बने। नवीनता के पक्षपाती होते हुए भी वे प्राचीनता के प्रति उदासीन नहीं थे। वे हर प्रकार के बंधन के विरोधी थे। उन्होंने तमिल भाषा को पंडिताऊ शैली के बंधन से मुक्त किया और जनभाषा में, नए भावों एवं नई कल्पनाओं से भरी गेय कविताएं लिखीं। सच पूछा जाए तो उन्होंने सरल बोलचाल की भाषा में समसामयिक रचना करके पूरे प्रांत में विप्लव की एक लहर दौड़ा दी। गरीबी और आर्थिक विषमता को देखकर उनके हृदय में विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पड़ा और लावा के रूप में उनकी कविताओं में बह निकला।

मात्र दो दशकों के संक्षिप्त साहित्यिक जीवन में सुब्रह्मण्य भारती ने कवि, गद्यकार, पत्रकार और देशभक्त के रूप में तमिल साहित्य ही नहीं, तमिल लोक-मानस में भी एक नई धारा प्रवाहित की। उनके व्यक्तित्व में प्राचीन तमिल साहित्य के चिरंतन तत्त्वों की गहरी समझ तो थी ही, मानव-समता और विश्व-प्रेम की चेतना भी उनमें समायी हुई थी। उन्होंने पत्रकारिता में सरल और ललित शैली का प्रयोग करते हुए समसामयिक प्रश्नों की व्याख्या की। ''सक्रिय राजनीतिज्ञ और पत्रकार होने के कारण वह अपने असंख्य पाठकों से अपने विचारों के जरिए संवाद स्थापित करना

चाहते थे। गद्य और पद्य में क्रांतिकारी परिवर्तनों के पक्षधर होने के साथ-साथ उन्होंने न केवल विदेशी विचारों और उपलब्धियों से प्रेरणा ग्रहण की, बल्कि भारतीय शाश्वत मूल्य...धर्म और मोक्ष...भी उनके प्रेरणास्रोत रहे।''[3]

काव्य-जीवन की शुरुआत में वे अपने को 'शैली का भक्त' (शैलीदासन) कहते थे। बाद में उन्होंने अपने को 'शक्ति मां का भक्त' (शक्तिदासन) बताया; और अंततोगत्वा 'भारतमाता के भक्त'(भारतीदासन) हो गए। कृ. स्वामिनाथन ने लिखा है–''भारती निरे महाकवि नहीं, तमिल साहित्य के युग-प्रवर्तक भी थे। विविध छंदों की सिद्धि, लोकसंगीत का सहज प्रयोग और बोलचाल की भाषा पर अधिकार, ये कुछ उपलब्धियां हैं, जिनसे उन्होंने तमिल साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात किया। अनंतर तमिल भाषा का कोई कवि अथवा लेखक ऐसा नहीं हुआ, जिसे भारती के प्रभाव से मुक्त होकर मान्यता मिली हो। परवर्ती पीढ़ी का यह सर्वाधिक लोकप्रिय कवि भारतीदासन कहलाने के गौरव से युक्त हुआ।''[4]

भारती की रचनात्मकता

उनके काव्य में राष्ट्रीय पुनर्जागरण गीत, देवी-देवताओं की स्तुतियां, प्रकृति-वर्णन और विविध आख्यानों का समावेश है। जुलाई 1904 ई. में एक तमिल पत्रिका 'विवेकभानु' में उनकी पहली कविता 'एकांत' प्रकाशित हुई। यह कविता भाषा की दृष्टि से पुरानी नीरस शैली और आडंबरपूर्ण शब्दावली में रची गई थी, लेकिन इस पर विलियम वर्ड्सवर्थ की स्वच्छंदतावादी कविता का प्रभाव था। इससे स्पष्ट हो गया कि वे तमिल कविता को पुरातन काव्य-रूढ़ियों से मुक्त करने के हिमायती हैं।

भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों के प्रति वे अपनी युवावस्था से ही सजग थे। स्त्री और पुरुष की समानता का विचार उनके मन को मथता रहता था। काशी-प्रवास के दौरान उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा और समानता पर विचार किया था। मद्रास में उन्होंने उन विचारों को विस्तारपूर्वक व्यक्त करना शुरू किया। उन्होंने एक गैर-ब्राह्मण द्वारा बनाया गया भोजन ग्रहण करके जात-पांत के बंधनों के प्रति अपना विरोध प्रकट किया। जाति के बंधन को तोड़ने के प्रयास के साथ-साथ उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर देने की भी वकालत की।

उन्होंने 'स्वदेशमित्रन्' नामक दैनिक समाचारपत्र के सहायक संपादक एवं अनुवादक के रूप में और फिर 'इंडिया' नामक तमिल साप्ताहिक के अघोषित संपादक के रूप में काम किया था। 'इंडिया' दक्षिणी भारत में उग्रपंथियों का प्रमुख समाचार-पत्र था। बतौर पत्रकार उन्हें प्रतिदिन राजनीतिक समाचारों से रू-ब-रू होना पड़ता था। 1905 ई. में लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन के बाद उनकी राजनीतिक चेतना मुखर हुई और उन्होंने राजनीति में सक्रिय रूप से हिस्सा लेना शुरू कर दिया।

1906 ई. में कांग्रेस अधिवेशन की रिपोर्टिंग के लिए वे कलकत्ता गए। वहां स्वामी विवेकानंद की शिष्या सिस्टर निवेदिता से इंटरव्यू लेने के लिए गए। उनके प्रथम दर्शन में ही भारती ने उनके ममतामय मातृ-रूप का प्रत्यक्ष अनुभव किया। सिस्टर ने उनसे कहा–''पुत्र! दिमाग में जो भी संकोच या समस्याएं हैं, उन्हें निकाल फेंको। जाति, वंश और जन्म के कारण मनुष्य में जो

अमानवीय बदलाव आ गया है, उसे भूल जाओ। अपने हृदय में प्यार को पालो; तुम देवतुल्य बन जाओगे और इतिहास के पन्नों में तुम्हें सम्मानजनक स्थान मिलेगा।''

सिस्टर निवेदिता से वार्तालाप करके भारती ने यह महसूस किया कि भावी जीवन में वही उनके आध्यात्मिक उन्नयन का माध्यम बन सकती हैं। भारती ने लिखा था–

माता निवेदिता!
तू एक मंदिर है प्यार का,
सूर्य है; जो मेरी आत्मा के
अंधकार को नष्ट करता है-
तू वर्षा है

हमारे जीवन की सूखी धरती के लिए-
तू भटके और निराश लोगों की
मददगार है,
महानता के प्रति समर्पित-
तू दिव्य सत्य की चिनगारी है
तुझे मेरा नमन।

(हिंदी भावानुवाद : **रमेश बक्षी**)

उन्होंने निवेदिता के वक्तव्य में भारत के सामाजिक पुनरुत्थान के दर्शन भी किए। सिस्टर निवेदिता ने ही उन्हें बताया था कि भारत की कल्पना उन्हें एक दुःखी मां के रूप में करनी चाहिए, जो बेड़ियों में जकड़ी है। अतः अब भारती ने तय कर लिया कि वे उन लोगों का साथ देंगे, जो क्रांतिकारी आंदोलन के जरिए भारतमाता को आजाद कराने में जुटे हैं।

भारती पर बालगंगाधर तिलक की छाया

ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीयों की जायज मांगों को अस्वीकार करने की जिद और नरमपंथियों की उदासीनता के कारण कांग्रेस का उग्रपंथी गुट क्षुब्ध था। 1907 ई. में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए नरमपंथियों ने रासबिहारी घोष का नाम प्रस्तावित किया, लेकिन बालगंगाधर तिलक ने इसका विरोध किया। विवाद इतना बढ़ा कि अधिवेशन को स्थगित कर देना पड़ा। तिलक और अरविंद घोष के नेतृत्व में उग्रपंथियों ने यह निश्चय किया कि वे एक अलग बैठक करके भारतमाता की सेवा की शपथ लेंगे।

सूरत से लौटने के बाद भारती के मन-मस्तिष्क पर लोकमान्य तिलक की एक राजनीतिक-द्रष्टा वाली छवि बद्धमूल हो चुकी थी। तिलक के प्रति आदर व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था–

उन्होंने एक मजबूत दुर्ग बनाया
उसका नाम था शिक्षा

उन्होंने खोदी उसके चारों ओर खाई
जिसमें बहता था विचार का सोता
उन्होंने एक मंदिर बनाया
जिसका नाम था स्पष्ट बात
और इसी पर उन्होंने लहराया
स्वतंत्रता का झंडा।

(हिंदी भावानुवाद : **रमेश बक्षी**)

भारती के भीतर छिपे विद्रोही ने उन्हें राजनीति के भंवर में डाल दिया; और शीघ्र ही उनकी पहचान एक उग्रपंथी के रूप में होने लगी। विशिष्ट शैली में लिखे उनके लेखों के उग्रवादी स्वर के कारण उनके असंख्य पाठक बन गए। इसके बाद उन्होंने तमिल में काव्य-रचना करके उसे आधुनिक विचारों को अभिव्यक्त करने और जनसाधारण में जाति-गौरव तथा देशप्रेम जाग्रत करने के सशक्त वाहन के रूप में अपनाया।[5]

'इंडिया' में प्रकाशित होनेवाले क्रांतिकारी लेखों के कारण ब्रिटिश सरकार भारती को गिरफ्तार करके उनकी आवाज को दबाने का मन बना रही थी। संभावित गिरफ्तारी से बचने के लिए सितंबर 1908 ई. में वे पांडिचेरी चले गए।

भारती के पांडिचेरी आने के दो वर्ष बाद मनियाची स्टेशन पर किसी उग्रपंथी तमिल युवक ने तुतीकोरिन के कलक्टर ऐश की गोली मारकर हत्या कर दी थी। सरकार को संदेह था कि हत्या के षड्यंत्र में भारती और वी. वी. सुब्रह्मण्य अय्यर का हाथ है। अतः ब्रिटिश सरकार पांडिचेरी में इन दोनों की गतिविधियों पर नजर रख रही थी। इसी समय तिरुनेलवेली के एक प्रशंसक ने भारती को एक पत्र लिखा–"हे कविराज! आपके दर्शन करने तथा आपकी अमृततुल्य कविता सुनने की इच्छा से मैं पांडिचेरी पहुंच गया हूं। लेकिन मैं अभी छिपा हुआ हूं और शाम के सात बजे आपके आवास पर आऊंगा। पर घर की बत्तियां बुझाए रखिएगा।"

मित्र तय समय पर उनके घर पहुंचे, लेकिन भारती ने घर की सारी बत्तियां जला रखी थीं और ऊंचे स्वर में 'मारवों के गीत' गा रहे थे। तमिल प्रदेश में सदियों पहले मारव नामक एक वीर जाति थी, लेकिन वर्तमान काल तक आते-आते उनमें से कई कुली बन चुके थे और कुछ ने डकैती का पेशा अपना लिया था। मारवों के दल द्वारा गाए जानेवाले इन पारंपरिक गीतों में क्रोध से भरी हुई गर्जना के साथ ही आत्मग्लानि की अभिव्यक्ति भी होती थी।[6]

हमने कुलियों की तरह जमीन खोदने का काम
शुरू कर दिया
कहां गई हमारी तलवार और हमारी अपार शक्ति
हमारी वह प्रसिद्धि, जो कभी आकाश तक गूंजती थी,
अब गायब हो चुकी है।
जमीन पर अब सिर्फ हमारी बदनामी रह गई है।
और गीत का अंत इन शब्दों में होता था–

कुत्तों की तरह की जिंदगी
दूसरों की जमीन पर
दासों की तरह मजदूरी
भेड़ियों-जैसी पुलिस
और लालची ब्राह्मण हमारे पीछे हैं।

(हिंदी भावानुवाद : **रमेश बक्षी**)

पांडिचेरी में एक दिन ब्रह्ममुहुर्त में ही अपने मित्र कन्नन के घर गए। वहां उनका परिचय कन्नन की बूढ़ी मां से हुआ। यह जानकर कि वे कवि हैं, उन्होंने भारती से एक 'सुप्रभात' गाने का आग्रह किया, लेकिन भारती ने 'सुप्रभात' का नाम तक न सुना था। कन्नन ने उन्हें बताया कि 'सुप्रभात' भोर में गाया जानेवाला जागरण गीत होता है, जिसकी रचना देवताओं को जगाने के लिए की जाती है। हिंदी में ऐसे जागरण गीतों को 'प्रभाती' या 'प्रातकाली' कहते हैं। कन्नन ने एक तमिल सुप्रभात गाकर सुनाया भी। इसके कुछ ही दिनों बाद कन्नन के घर पहुंचकर भारती ने उनकी मां को एक सुखद आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने अपनी प्रिय देवी 'भारतमाता' को लक्ष्य करके एक सुंदर 'सुप्रभात' रच दिया था। रचनात्मक दृष्टि से अत्यंत प्रौढ़ इस गीत में प्राकृतिक बिंबों की छटा थी और उसको गहरी आसक्ति के साथ लिखा गया था–

सूर्योदय हुआ;
हमारे दुःख समाप्त हुए।
और रात की काली छाया गायब हो गई।

(हिंदी भावानुवाद : **रमेश बक्षी**)

अंग्रेजी शिक्षा का दुष्प्रभाव और भारती

अंग्रेजों द्वारा भारतीयों को महज क्लर्क बनाने के इरादे से जो शिक्षा-नीति लागू की गई थी, उसके दुष्परिणामों को भारती ने प्रत्यक्ष देखा था। अपने अनुभव का वर्णन करते हुए वे कहते हैं– ''इन कॉलेजों के शिक्षित भारतीय अनभिज्ञ हैं देश के गरिमामय अतीत से, वर्तमान पतन से और भावी उत्थान से।'' अंग्रेजी की पुस्तकें रटकर अपने को विशेषज्ञ माननेवाले लोग ''गणित का अध्ययन करते हैं बारह वर्ष, पर गगन के एक तारे की सही स्थिति की खोज नहीं कर पाते। रट लगाते हैं वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र की, पर अपने देश की आर्थिक गिरावट से एकदम बेखबर!''

ऐसे 'काले साहबों' को दासता की तंद्रा से जाग्रत् करना मृदुल शब्दों या कोमलकांत पदावली से संभव नहीं था। अतएव, भारती की सुधारात्मक कविताओं में आग बरसती है और बरछिया चलती हैं।[7]

क्रांतिवाद से गांधीवाद की ओर

पांडिचेरी-प्रवास के दौरान श्री अरविंद के प्रभाव से भारती के व्यक्तित्व में एक चमत्कारी बदलाव आया। दरअसल, अरविंद घोष को बंगाल के अलीपुर केंद्रीय जेल में बंद कर दिया गया था, क्योंकि ब्रिटिश सरकार को संदेह था कि वे बंगाल के बम-निर्माता आतंकवादियों से जुड़े हैं। जिन दिनों वे एकांत में नजरबंद थे, उन्हीं दिनों उनको 'सर्वव्यापी नारायण' की दिव्यानुभूति हुई। योग

में उनकी रुचि पहले से ही थी। नारायण-दर्शन ने उन्हें अध्यात्म की ओर उन्मुख किया। शीघ्र ही उन्हें जेल से मुक्त भी कर दिया गया, लेकिन इसके बाद वे राजनीति से विरत हो गए। अप्रैल 1910 ई. में पांडिचेरी पहुंचकर उन्होंने एक योगी का जीवन बिताना शुरू किया। जल्द ही उनके आसपास एक आश्रम विकसित हो गया।

पांडिचेरी-प्रवास के दौरान भारती, अय्यर और श्री अरविंद भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन और मनन करते रहे। भारती और अरविंद कवि थे, जबकि अय्यर कहानीकार थे। इस सारस्वत वातावरण में भारती की रचनात्मक पिपासा को एक नई धारा मिली।

बहरहाल, 24 नवंबर, 1918 ई. को आत्मनिर्वासन से बाहर आते ही भारती को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन बाद में सशर्त छोड़ दिया गया और वे अपने गृह-नगर तिरुनेलवेली पहुंचे। अब तक उनके रुख में नरमी आ चुकी थी और वे महात्मा गांधी के अहिंसामूलक विचारों से प्रभावित होने लगे थे।

ज्ञातव्य है कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में महात्मा गांधी के प्रसिद्धि पाने से शुरुआती दौर में ही सुब्रह्मण्य भारती का निधन हो गया। हुआ यूं कि त्रिप्लिकेन स्थित एक मंदिर में एक हाथी को उन्होंने एक नारियल दिया। दुर्भाग्यवश वह हाथी मदोन्मत्त था; उसने भारती को अपनी सूंड़ में लपेटकर पटक दिया और 12 सितंबर, 1921 ई. को उनका देहांत हो गया। लेकिन संक्षिप्त परिचय में ही दूरदर्शी भारती ने गांधी के सत्याग्रह-मार्ग के महत्त्व को पहचान लिया था। गांधी के अहिंसामूलक सिद्धांत में उनको मानवता के भावी उत्थान की आशा-ज्योति दिखाई पड़ी। 'गांधी पंचकम्' शीर्षक कविता में भारती ने लिखा था–

हे महात्मा!
हिंसा, हत्यामूलक
जघन्य युद्धमार्ग
निंदित हुआ तुमसे;
और प्रशस्त हुआ
सत्यमार्गी संतों द्वारा
प्रवर्तित धर्म मार्ग।
स्वतंत्रता पाने के लिए
खोज लिया तुमने
असहयोग का अमोघ अस्त्र
जिसके प्रभाव से
भूले मानवता
पारस्परिक शत्रुता
फले-फूले वसुंधरा।
युग-युग जिओ बापू, तुम युग-युग जिओ।

(हिंदी भावानुवाद : डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम)

भारतीय राजनीति में 'गांधी युग' (1920-1948 ई.) से पहले गरमदलीय चेतना अत्यंत मुखर थी और राष्ट्रीय क्षितिज पर बालगंगाधर तिलक (1856-1920 ई.), लाला लाजपतराय (1865-1928 ई.) और अरविंद घोष (1872-1950 ई.)—जैसे क्रांतिकारी नेता छाये हुए थे, लेकिन बीसवीं सदी के दूसरे दशक में भारती के गीतों में गांधीवादी निष्ठा के स्वर उभरे, जो उत्तरोत्तर प्रबल होते गए। उग्रपंथ से सत्याग्रह तक की इस यात्रा के दौरान देश ने यह समझ लिया था कि महात्मा गांधी द्वारा दिखाया गया सत्य-अहिंसा का मार्ग ही सच्चा मार्ग है। भारती की वैचारिक यात्रा इसी के समानांतर चली। उन्होंने अपने लेखों और कविताओं में महात्मा गांधी को एक नई गीता के अभिनव कर्मयोग का प्रचारक बताया था। यह तब की बात है, जब बालगंगाधर तिलक जैसी विभूतियां जीवित थीं और उनकी ख्याति के सामने, हाल ही में दक्षिण अफ्रीका से लौटे, मोहनदास करमचंद गांधी की छवि पूर्णतः उभर नहीं पाई थी।

भारती के राष्ट्रीय गीत

आधुनिक तमिल-साहित्य की सर्वोत्तम कृतियां उसके राष्ट्रीय गीत (देशीय गीतांगल) ही है। ये राष्ट्रीय गीत धार्मिक उत्साह, विशुद्ध प्रेम और दया से भरे हुए हैं। उनमें एक ओर रहस्यवाद की गहराई है, तो दूसरी ओर विश्वव्यापकता की ऊंचाई भी। उनमें साम्राज्यवादियों के प्रति घृणा व्यक्त की गई है।

भारती को अपने भाषा-प्रदेश के कण-कण से प्रेम था। उन्होंने तमिल भाषा की सरलता को आत्मसात् करके देशप्रेम और लोक-जीवन से जुड़ी कविताओं की रचना की थी। उनकी 'तमिलनाडु प्रशस्ति' मातृभूमि के प्रति आदर और प्रेम जगानेवाली उल्लासमयी कविता है। वे कहते हैं—

'तमिलनाडु' नाम श्रवण से पुलकित हो उठता है अंतर
बरस रहे कानों में मानो मधुर सुधा के सीकर।
पितृ-भूमि की चर्चा यदि कोई पड़ती है कानों में
तो संचारित हो उठती है नव्य-शक्ति-सी प्राणों में।

(हिंदी भावानुवाद : **आनंदी रामनाथन**)

आर. पी. सेतुपिल्लै ने लिखा है—''माता को प्रेम-रूपा और पिता को साक्षात् पौरुष मानकर आदर देना तमिल परिपाटी है। इसी से तमिलनाडु को मातृभूमि के रूप में स्मरण करते ही प्रेमानुभूति से सुख हो आता है, पितृ-भूमि का विचार आते ही पौरुष जाग उठता है। इसी तथ्य को दर्शाते हुए भारती जिस गति से पहले मातृ-प्रेम को और फिर पिता के पौरुष को व्यक्त करते हैं, वह अत्यंत प्रशंसनीय है।''[8]

प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि ''तमिल देश अपने सर्वोत्तम राष्ट्रीय गीतों में किसी भौगोलिक इकाई का नाम न होकर एक विशेष सांस्कृतिक परंपरा का पर्यायवाची है।''[9] बहरहाल, भारती की दृष्टि में तमिल-प्रेम राष्ट्रीयता का प्रथम सोपान था और राष्ट्रीयता विश्व-मानवता की पहली सीढ़ी।

अपनी काव्य-यात्रा के शुरुआती दौर में सुब्रह्मण्य भारती देशभक्ति के गीतों का एक संग्रह प्रकाशित करना चाहते थे, लेकिन उस समय तमिलनाडु में ऐसे कवि थे ही नहीं, जो शास्त्रीय रूढ़ियों से मुक्त, सहज ढंग की देशभक्तिपूर्ण कविताएं लिखते और दूसरी बात यह थी कि तत्कालीन तमिल

कवि ऐसी कविता लिखने के दुष्परिणामों से भयाक्रांत भी थे। लिहाजा, सुब्रह्मण्य ने स्वयं ही गीत लिखने शुरू किए। रचना तैयार होने के बाद उसके प्रकाशन की समस्या आई। मद्रास के एक युवा प्रकाशक जी.ए. नटेसन ने उन्हें बताया कि ऐसा संग्रह प्रकाशित करने का साहस केवल वी. कृष्णस्वामी अय्यर ही कर सकते हैं। कृष्णस्वामी अय्यर मद्रास के एक प्रमुख वकील होने के साथ ही एक नरमपंथी नेता भी थे। 'इंडिया' नामक समाचार-पत्र के अंकों में भारती ने कई बार उनकी आलोचना की थी। अतः उनको लगा कि कृष्णस्वामी उनसे रुष्ट होंगे, इसलिए उनके पास जाना निरर्थक होगा। बावजूद इसके नटेसन उनको कृष्णस्वामी के घर लेकर गए और उनसे कहा कि मेरा यह कवि-मित्र आपको अपनी कविताएं सुनाना चाहता है। जब कृष्णस्वामी ने सहर्ष अनुमति दे दी, तब नटेसन ने भारती से काव्यपाठ करने का आग्रह किया। बहरहाल, भारती ने अपने मधुर स्वर में अपनी 'वंदे मातरम्' शीर्षक कविता का पाठ किया–

हम 'वंदे मातरम्' कहेंगे
अपनी जननी जन्मभूमि को नमन करेंगे
हम 'वंदे मातरम्' कहेंगे।
ब्राह्मण हों या अब्राह्मण हम सब समान हैं
इस धरती पर जन्मे सब मानव समान हैं।
जाति-धर्म का दम न भरेंगे
ऊंच-नीच के भेद तजेंगे।
हम 'वंदे मातरम्' कहेंगे।
... ...
अब हम यह संकल्प करेंगे
दास-वृत्ति का त्याग करेंगे
कभी नहीं परतंत्र रहेंगे।
हम 'वंदे मातरम्' कहेंगे।

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. के.ए. जमुना**)

सुब्रह्मण्य भारती के राष्ट्रीय-गीत बहुत प्रसिद्ध हुए। तत्कालीन अंग्रेजी राज के दुष्प्रभाव के कारण जनता में इतनी हताशा एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता छायी हुई थी, जिसे दूर करना दुष्कर प्रतीत हो रहा था। भारती ने लिखा है–''सहा नहीं जाता मुझसे, जब इन गिरे हुए मानवों के बारे में सोचता हूं। भय, भय, भय सब किसी से। कोई वस्तु नहीं दुनिया में जिससे ये डरते न हों। कहते हैं, भूत है, प्रेत है-उस पेड़ पर, इस तालाब में।'' (भावानुवाद : पूर्ण सोमसुंदरम्)। वे यह भी लिखते हैं– ''अकाल, अकाल का हाहाकार। व्यथित हैं लोग, प्राणांतक पीड़ा से। खाने को दाना तक नहीं और-सबसे बुरी बात–उनके कारणों का भी ज्ञान नहीं।'' (भावानुवाद : पूर्ण सोमसुंदरम्)

एक ओर भय, भूख, रोग और अज्ञान और दूसरी ओर मिथ्याभिमान! ऊंच-नीच, जाति-पांति के असंख्य भेद; और 'शास्त्रों के नाम पर कूड़े का ढेर।' शारीरिक श्रम को हेय समझने की गर्हित मनोवृत्ति। इन सब के विरुद्ध भारती ने कविता की कुल्हाड़ी चलाकर तत्कालीन जड़ता को काटना

चाहा। इस संघर्ष के कारण उन्हें घोर यातनाएं सहनी पड़ीं। पर उन्होंने इन बातों की कभी परवाह न की। उनके विचार सुलझे हुए थे और स्वार्थ उन्हें छू तक न गया था। उनकी वाणी में ओज, स्पष्टवादिता और तीखेपन का मणिकांचन संयोग था।

वे लोकजीवन में व्याप्त बुराइयों की निंदा करके ही संतुष्ट नहीं हुए, बल्कि उन्होंने तमिल जनता के समक्ष एक आदर्श समाज का उदाहरण भी प्रस्तुत किया। स्वतंत्र भारत की कल्पना करके उन्होंने कई सुंदर गीतों की रचना की। एक गीत में वे कहते हैं–

''नाचें, गाएं, प्रमुदित मन से
आयी सुखद स्वतंत्रता आज।
गाएं यश खेती का, श्रम का।
करें भर्त्सना उनकी जो पड़े हैं
बेकार, खाते-पीते, मौज मनाते।''

(हिंदी भावानुवाद : **पूर्ण सोमसुंदरम्**)

भारती के देशप्रेम की भावभूमि

''यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो अपने देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, लता-गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा; सबको वह चाह-भरी दृष्टि से देखेगा। बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?'' आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इस कथन के आलोक में यदि हम सुब्रह्मण्य भारती की रचनात्मकता का मूल्यांकन करें तो पाएंगे कि उनका पूरा सृजन-चिंतन भारतवर्ष के किसान, गांव, नदी, पर्वत, वृक्ष आदि के प्रति समर्पित है। उनको देश के नदी-पर्वत, खर-पात, खेत-रेत सबसे प्रेम है। 'भारत-समुदायम्' शीर्षक गीत में आह्लाद के स्वर में वे यह कहते हैं कि–

सुंदर इसके वन-उपवन हैं
शस्य-श्यामला भूमि हमारी।
कंद-मूल-फल-धान्य निरंतर
देती रहती धरणी प्यारी।
देती रहती भूमि हमारी।
हां, हां, अविकल देती रहती भूमि हमारी।
शस्य-श्यामला चिर उदार इस भारत-भू की जय हो, जय हो।
भारतीय समुदाय अमर हो

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. के.ए. जमुना**)

19वीं शताब्दी के मध्य से लेकर 20वीं शताब्दी के मध्य तक का कालखंड भारतीय स्वाधीनता के अनथक संघर्ष का काल है। भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं के तत्कालीन साहित्य में राष्ट्रवाद की प्रखर चेतना विविध रूपों में उद्भासित हो रही थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885 ई), सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921 ई.) और रामधारी सिंह दिनकर (1908-1974 ई.)–जैसे राष्ट्रवादी कवियों का आविर्भाव हमारे जातीय जीवन के एक संकटापन्न समय में हुआ था। भारतवर्ष पराधीनता

के दुश्चक्र में फंसा हुआ था; और स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों से अनथक संघर्ष का क्रम जारी था। सुब्रह्मण्य भारती 'हमारा देश' (मूल शीर्षक : मन्नुम् इमयमलै) शीर्षक कविता के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना और गौरवबोध जगाते हुए कहते हैं–

हिमगिरि यह नगराज हमारा
जगभर में है सबसे न्यारा।
पावन गंगा नदी हमारी
कौन समझता, इसकी सारी
अनुपम उपनिषदों की जैसी
निधियां, और कहां हैं ऐसी।
सोने का-सा देश हमारा
वंदन कर, सबसे यह न्यारा।

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. के.ए. जमुना**)

सुब्रह्मण्य भारती और रामधारी सिंह दिनकर

यदि हम बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के भारतीय साहित्य पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि पराधीन भारत में मलयालम कवि कुमारन आशान (1873-1924 ई.) एवं वल्लतोल नारायण मेनन (1878-1958 ई.), ओडिया कवि गोपबंधु दास (1877-1928 ई.) एवं लक्ष्मीकांत महापात्र (1888-1953 ई.), तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921 ई.), मराठी कवि भास्कर रामचंद्र तांबे (1873-1941 ई.) एवं विष्णु वामन शिरवाडकर 'कुसुमाग्रज' (1912-1999 ई.), बांग्ला कवि काजी नजरुल इस्लाम (1899-1976 ई.), कन्नड़ कवि कुवेम्पु (1904-1994 ई.), असमिया कवि अंबिका गिरि रायचौधुरी; और हिंदी कवि मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964 ई.), माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968 ई.), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (1897-1960 ई.) एवं रामधारी सिंह दिनकर (1908-1974 ई.) अपनी क्रांतिकारी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रवाद का शंखनाद कर रहे थे।

जातिवाद भारतीय समाज में विघटनकारी प्रवृत्तियों का प्रेरक रहा है। स्वभावतः सुब्रह्मण्य भारती जातिवाद के मुखर विरोधी थे। उन्होंने तमिल जनता के भाषा-प्रेम को जागृत् करने के साथ ही लोगों को संकीर्णताओं से ऊपर उठकर राष्ट्रवादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने लिखा है–

एक हमारा कुटुंब कबीला, एक हमारा कुल परिवार।
हम सब हैं भारत के वासी, भारतीय आचार-विचार
जाति एक है, मोल एक है, नीति एक है
हम सब हैं भारत के स्वामी।
हां, हां, भाई हम सब हैं भारत के स्वामी।
भारत पर शासन करनेवाली भारत जनता की जय हो, जय हो।
भारतीय समुदाय अमर हो।

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. के.ए. जमुना**)

हिंदी की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के मूर्धन्य कवि रामधारी सिंह दिनकर की दृष्टि में श्रेष्ठ ज्ञानी वही है, जो ऊंच-नीच के भेद को नहीं मानता। वे कहते हैं–

ऊंच-नीच का भेद न माने वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।

(**रामधारी सिंह दिनकर** : 'रश्मिरथी', प्रथम सर्ग)

उनका स्पष्ट मत था कि जातिवाद की कुरीति को मिटाये बिना स्वस्थ समाज का निर्माण संभव नहीं है। 'रश्मिरथी' में कर्ण के चरित्र के माध्यम से उन्होंने इसी मान्यता को प्रतिपादित करने का प्रयास किया। कुल-गोत्र-हीन कर्ण के मुख से राष्ट्रकवि दिनकर यह कहलवाते हैं कि–

जाति-जाति रटते, जिनकी पूंजी केवल पाखंड,
मैं क्या जानूं जाति? जाति है, ये मेरे भुजदंड।

(**रामधारी सिंह दिनकर** : 'रश्मिरथी', प्रथम सर्ग)

कवि दिनकर आगे कहते हैं–

धंस जाए वह देश अतल में, गुण की जहां नहीं पहचान,
जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहां सुजान।

(**रामधारी सिंह दिनकर** : 'रश्मिरथी', द्वितीय सर्ग)

भारतीय भाषाओं के साहित्य में 'हिमालय' भारत के सांस्कृतिक गौरव का एक विराट एवं पवित्र प्रतीक है। सुब्रह्मण्य भारती अपनी एक कविता 'चलो गाएं हम' (मूल शीर्षक : 'एंगल नाडु') में लिखते हैं–

हमारा नभ-चुंबी नगराज,
विश्व में इतना ऊंचा कौन?
हमारी भागीरथी पवित्र,
नदी इतनी गौरवमय कौन?
हमारे ही उपनिषद् महान,
श्रेष्ठतम कहे विश्व हो मौन।
जहां की धरती ही दिन-रात स्वर्णकिरणों की चमक रही।
चलो गाएं हम 'भारत की समता में कोई देश नहीं'।

(हिंदी भावानुवाद : **नागेश्वर सुंदरम्, विश्वनाथ सिंह विश्वासी**)

रामधारी सिंह दिनकर ने 1933 ई. में 'हिमालय के प्रति' शीर्षक प्रसिद्ध कविता लिखी थी। इस कविता में उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दृढ़तापूर्वक सामना करने के लिए, हिमालय को प्रतीक बनाकर, भारत के युवावर्ग का क्रांतिकारी आह्वान किया था–

साकार दिव्य गौरव विराट्,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल
मेरी जननी के हिम-किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल
मेरे नगपति, मेरे विशाल।

ले अंगड़ाई उठ, हिले धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैलराट्, हुंकार भरे
फट जाए कुहा, भागे प्रमाद।
तू मौन त्याग, कर सिंहनाद
रे तपी आज तप का न काल
नवयुग शंख-ध्वनि जगा रही,
तू जाग, जाग मेरे विशाल।

(हिमालय के प्रति, 'रेणुका', 1933 ई.)

सुब्रह्मण्य भारती और दिनकर दोनों ही गरमदलीय चेतना के पक्षधर क्रांतिवादी कवि हैं। स्वभावतः हिमालय का मौन खड़ा रहना कविवर दिनकर के मन को उद्विग्न करता है। वे कहते हैं–

युग-युग अजेय, निर्बंध, मुक्त,
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान;
निस्सीम व्योम में तान रहे,
युग से किस महिमा का वितान।
कैसी अखंड यह चिर-समाधि?
यतिवर! कैसा यह अमर ध्यान?

तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान?
उलझन का कैसा विषम जाल?
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

(हिमालय के प्रति; 'रेणुका', 1933 ई.)

सुब्रह्मण्य भारती और दिनकर दोनों ही भारत के गौरवशाली अतीत के अनन्य गायक हैं। भारती ने अपनी एक कविता 'हमारा देश' (मूल शीर्षक : मन्नुम् इमयमलै) में लिखा है–

सम्मानित जो सकल विश्व में, महिमा जिनकी बहुत रही है
अमर ग्रंथ वे सभी हमारे, उपनिषदों का देश यही है।
गाएंगे यश हम सब इसका, यह है स्वर्णिम देश हमारा,
आगे कौन जगत् में हमसे, यह है भारत देश हमारा।

यह है भारत देश हमारा, महारथी कई हुए जहां पर,
यह है देश मही का स्वर्णिम, ऋषियों ने तप किए जहां पर,
यह है देश जहां नारद के गूंजे मधुमय गान कभी थे,
यह है देश जहां पर बनते सर्वोत्तम सामान सभी थे।

यह है देश हमारा भारत, पूर्ण ज्ञान का शुभ्र निकेतन,
यह है देश जहां पर बरसी, बुद्धदेव की करुणा चेतन,
है महान, अति भव्य पुरातन, गूंजेगा यह गान हमारा,
है क्या हम-सा कोई जग में, यह है भारत देश हमारा।

विघ्नों का दल चढ़ आए तो, उन्हें देख भयभीत न होंगे,
अब न रहेंगे दलित-दीन हम, कहीं किसी से हीन न होंगे,
क्षुद्र स्वार्थ की खातिर हम तो, कभी न ओछे कर्म करेंगे,
पुण्यभूमि यह भारत माता, जग की हम तो भीख न लेंगे।

मिसरी-मधु-मेवा-फल सारे, देती हमको सदा यही है,
कदली, चावल, अन्न विविध अरु क्षीर सुधामय लुटा रही है,
आर्य-भूमि उत्कर्षमयी यह, गूंजेगा यह गान हमारा,
कौन करेगा समता इसकी, महिमामय यह देश हमारा।

(हिंदी भावानुवाद : अज्ञात)

इधर, दिनकर की दृष्टि में भारत कोई भूमि का टुकड़ा-भर नहीं है, वह एक सचेतन द्रवीभूत भाव भी है–

भू के मानचित्र पर अंकित त्रिभुज, यही क्या तू है?
नर के नभश्चरण की दृढ़ कल्पना नहीं क्या तू है?
भेदों का ज्ञाता, निगूढ़ताओं का चिर ज्ञानी है;
मेरे प्यारे देश! नहीं तू पत्थर है, पानी है।
जड़ताओं में छिपे किसी चेतन को नमन करूं मैं?
किसको नमन करूं मैं भारत! किसको नमन करूं मैं?

दो हृदयों के तार जहां भी जो जन जोड़ रहे हैं,
मित्र-भाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं।
घोल रहे हैं जो जीवन-सरिता में प्रेम-रसायन,
खोल रहे हैं देश-देश के बीच मुंदे वातायन।
आत्मबंधु कह कर ऐसे जन-जन को नमन करूं मैं।
किसको नमन करूं मैं भारत! किसको नमन करूं मैं?

(**रामधारी सिंह दिनकर**; 'किसको नमन करूं मैं', नीलकुसुम)

राष्ट्रवादी-कविता की परंपरा को सुब्रह्मण्य भारती और रामधारी सिंह दिनकर ने नया जीवन दिया। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने लिखा है कि "देशभक्ति दिनकर के लिए न कोरी भावुकता है, न कोरा आवेग, न कोरा काव्यालंकार। सच्चे अर्थों में वह उनकी काव्यानुभूति का केंद्रीय सिद्धांत

है।''[10] यही बात सुब्रह्मण्य भारती के संदर्भ में भी कही जा सकती है। अपनी 'जय भारत' शीर्षक कविता में भारती लिखते हैं–

कुंठित हुई शक्ति जब वीरों
के असि की क्षमता अतुलित
घटी, ज्ञानप्रद सद्ग्रंथों की
रचना-शक्ति हुई शिथिलित
ऐसे विषम समय में भी
तुम नहीं प्रकंपित होती हो
उपयोगी सद्ग्रंथों की
रक्षक, माता तेरी जय हो॥3॥

देव जनों के लिए स्वादमय,
मधुरिम अमृत कुंभ समान।
मां, तेरा ऐश्वर्य रहे
पूरा सागर की भांति
पापी हृदय शक्ति तेरी
हरने का सदा यत्न करता हो।
फिर भी अक्षुण्ण निधिधारी
माता मेरी, तेरी जय हो॥4॥

इस भू को उत्कृष्ट किया
कर, सुखप्रद उद्योगों-धंधों को
तुमने जन्म दिया आनंद-
प्रदायक कितने ही धर्मों को-
सत्य खोजने जो आए हैं
उनको सत्य दान में दी हो
हमको भी स्वतंत्रता के प्रति
आकांक्षा दी, तेरी जय हो॥5॥

(हिंदी भावानुवाद : **नागेश्वर सुंदरम्, विश्वनाथ सिंह विश्वासी**)

सुब्रह्मण्य भारती समस्त भारतवासियों को एक परिवार मानते थे। वे यह भी मानते थे कि हम सब इस देश के स्वामी (या शासक) हैं। रामधारी सिंह दिनकर ने भारत में गणतंत्र की स्थापना के बाद अपनी एक प्रसिद्ध कविता में जब यह लिखा कि ''सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'' तो उस समय उनके मन में यही भावबोध काम कर रहा था कि प्रजा ही राजा है।

'मन्यु' के कवि

हमारी परंपरा में क्रोध को प्रायः दुर्गुणों में गिना गया है, लेकिन सात्त्विक क्रोध को स्पृहणीय माना गया है। संस्कृत में सात्त्विक क्रोध को ही 'मन्यु' कहा गया है। खास बात यह है कि सुब्रह्मण्य भारती और दिनकर - दोनों ही 'मन्यु' के कवि हैं। भारती अपने एक गीत में आक्रोश से भरकर यह कहते हैं कि ''यदि एक भी भारतवासी को भरपेट भोजन न मिले तो हम समूचे संसार को नष्ट कर देंगे।''

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दो दशकों में तमिल-कविता में क्रांति-युग का प्रतिनिधित्व सुब्रह्मण्य भारती कर रहे थे, जबकि चौथे-पांचवें दशक में यही काम हिंदी के राष्ट्रवादी कवि रामधारी सिंह दिनकर कर रहे थे। 'हुंकार' (1940 ई.) की भूमिका में रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा था कि ''हमारे क्रांति-युग का संपूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में, इस समय 'दिनकर' कर रहा है। क्रांतिवादी को जिन-जिन हृदय-मंथनों से गुजरना होता है, 'दिनकर' की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है।'' दिनकर कृत 'हुंकार' में सच्चे अर्थों में आजादी पाने और सबके लिए सुख-भाग तलाशने की एक उमंग दिखाई देती है–

हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं,
दूध! दूध! ओ वत्स! तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।

(**रामधारी सिंह दिनकर**; हाहाकार; 'हुंकार', 1937 ई.)

दिनकर की उपर्युक्त पंक्तियां भारती की ''भूखा रहे एक भी जन यदि/नष्ट-भ्रष्ट कर दें जग को हम'' की विचार-सरणी का सहज विकास प्रतीत होती हैं। दिनकर कहना चाहते हैं कि हमारे गरीब बच्चों को यदि दूध नसीब न हुआ तो वे अमीरों की बस्ती (स्वर्ग) को लूटपाट कर नष्ट कर देंगे। कवि ने क्रांति के लिए 'विपथगा' शब्द का प्रयोग किया है। वह कब, किधर का रुख करेगी, कुछ पता नहीं! बहरहाल, आर्थिक विषमता से क्षुब्ध कवि दिनकर का आक्रोश 'विपथगा' शीर्षक कविता में अंगारे-सा दहक उठा है–

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
मां की हड्डी से चिपक-ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं,
युवती की लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक तब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण,
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन।

(**रामधारी सिंह दिनकर**; विपथगा, 'हुंकार', 1938 ई.)

भारती और दिनकर के सपनों का भारत

'भारत-समुदायम्' शीर्षक गीत में भारती ने स्वतंत्र भारत के राजनीतिक एवं आर्थिक आदर्श का बहुत ही सुंदर चित्रण किया है–

''भारतीय समुदाय अमर हो। जय हो भारत-जन की जय हो,
भारतीय जनता की जय हो। जय हो, जय हो, जय हो।

तीस कोटि जन का समान अधिकार,
यहां के धन पर होगा।
अनुपम है यह रूप देश का
निश्चय विश्व मंच पर होगा।

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. के.ए. जमुना**)

दिनकर का मानना है कि आर्थिक गैर-बराबरी को दूर किए बिना; और सुख-साधनों के सम-विभाजन के बिना इस धरती पर मानव-संघर्ष को रोक पाना संभव नहीं है–

शांति नहीं तब तक, जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।

(**रामधारी सिंह दिनकर**; कुरुक्षेत्र, तृतीय सर्ग)

''जब तक मनुज-मनुज का यह
सुख-भाग नहीं सम होगा;
शमित न होगा कोलाहल
संघर्ष नहीं कम होगा।''

(**रामधारी सिंह दिनकर**; कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग)

सुख-साधनों के सम-विभाजन के लिए वे भूदान के माध्यम से भूमि के समान वितरण का विकल्प सुझाते हैं–

जमीन चाहिए समाज के समत्व के लिए,
स्वराज्य के लिए, स्वदेश के महत्त्व के लिए।
मनुष्यता के मान के लिए जमीन चाहिए,
बहुत दुःखी किसान के लिए जमीन चाहिए।
विपन्न, निःस्व के लिए जमीन दो, जमीन दो,
क्षुधार्त्त विश्व के लिए जमीन दो, जमीन दो।

जमीन दो कि शांति से नया समाज ला सकें,
जमीन दो कि राह विश्व को नई दिखा सकें,
जमीन दो कि प्रेम से समत्व-सिद्धि पा सकें,
जमीन दो कि दान से कृपाण को लजा सके।
सुरम्य शांति के लिए, जमीन दो, जमीन दो।
महान क्रांति के लिए, जमीन दो, जमीन दो।

(**रामधारी सिंह दिनकर**; मृत्ति-तिलक, 1953)

सुब्रह्मण्य भारती का मानना है कि समय बदल चुका है, अब विषमतामूलक समाज का टिका रह पाना संभव नहीं है। 'भारत-समुदायम्' शीर्षक गीत में वे आगे लिखते हैं–

एक मनुज का कौर दूसरा छीने
यह क्या अब भी संभव?
दूजे का दुःख मूक भाव से देखें
यह क्या अब भी संभव?
ऐसा जीवन अब भी संभव?
इस धरती पर
ऐसा जीवन अब भी संभव?

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. के.ए. जमुना**)

देश की युवाशक्ति को अन्याय के प्रतिकार के लिए उठ खड़े होने की प्रेरणा देते हुए बड़े ही तल्ख तेवर में दिनकर यह कहते हैं कि–

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है।

(कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग)

सुब्रह्मण्य भारती 'भारत-समुदायम्' शीर्षक गीत में आगे लिखते हैं–

एक नया कानून बनाएं
पालन उसका करें सदा हम।
भूखा रहे एक भी जन यदि
नष्ट-भ्रष्ट कर दें जग को हम।
अन्नपूर्णा चिर उदार इस भारत-भू की जय हो, जय हो।
भारतीय समुदाय अमर हो...

'गीता' में भगवान कह गए हैं–

''सब जीवों में मेरा प्राण
सभी अमर पद पा लें'', ऐसा कहता है यह देश महान्।
प्यारा भारत देश महान।
हां, हां, भाई प्यारा भारत देश महान्।
अखिल विश्व के ज्ञान-प्रदाता भारत-भू की जय हो, जय हो।
भारतीय समुदाय अमर हो।

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. के.ए. जमुना**)

'हिमालय का संदेश' शीर्षक कविता में दिनकर ने जिस भारत की कल्पना की है, वह महात्मा गांधी और सुब्रह्मण्य भारती की कल्पना का देश है–

भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज, जिस पर जल का न दाग लगता है।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
जहां त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहां भोग निष्काम;
समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम!''

(रामधारी सिंह दिनकर, हिमालय का संदेश, 'नीलकुसुम', 1954 ई.)

भारती का रहस्यवाद और राष्ट्रवाद

सुब्रह्मण्य भारती में शुरू से धार्मिक रहस्यवाद की भावना भरी हुई थी। वे सर्वव्यापिनी परम शक्ति की सच्ची श्रद्धा से भरे हुए देश-भक्ति के गीत रचते थे। ''एक ही कविता में भारतमाता का गुणगान और परम सत्ता की पूजा तथा आनंद मिले हुए हैं। वहां देश-भक्ति एक प्रकार का धार्मिक कर्तव्य बन जाती है और स्वतंत्रता का आंदोलन चिरंतन का नृत्य है। कवि जनता के जिस वर्ग के साथ गाता और नाचता है–वह ऐसा है, जो अभी तक दलित और पीड़ित था–वह सबकी स्वतंत्रता के गीत गाता है। सारे दुःखों से भरी स्वतंत्रता का यह गीत भविष्यवाणी की तरह लगता है। यद्यपि यह गीत देश में स्वतंत्रता के आगमन से लगभग 25 वर्ष पहले लिखे गए थे।''[11]

भारती स्वयं रहस्यवादी थे और एक सच्चे रहस्यवादी की भांति वे सर्वत्र ईश्वर को देखते थे। मेरा प्रियतम, मेरा पिता, मेरी माता, मेरा स्वामी है–कवि यों गाता है। अलवार संतों जैसा ही पुराना यह कथन है, परंतु इसका सच्चा अर्थ जनतंत्र के नए युग में व्यक्त होता है, जबकि प्रत्येक मनुष्य के भीतर हम ईश्वर को देखते हैं।[12]

समानता के पक्षधर

सुब्रह्मण्य भारती समानता के पक्षधर थे। वे चाहते थे कि सबको समान अधिकार और विकास के अवसर मिलें। अतः उन्होंने भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता के लिए आजीवन संघर्ष किया। वे स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने के लिए भी तत्पर रहे। उनका कवि-हृदय एक ऐसे विश्व की कल्पना कर रहा था, जहां राष्ट्र, जाति या रंग का कोई भेद न हो। एक गीत में उन्होंने इस भाव को कवित्वमयी शैली में इस प्रकार व्यक्त किया है–

''कामना है मेरी, मां, ऐसी स्वतंत्रता की!
जहां से भी बहे स्वर-लहरी, विश्व-भर में,
संगीतमय शब्दों की-गीतों की,
हम अपनाएं उसे, विभोर हो जाएं उसमें।
आएं देवता हमारे पास, बोलें हमारी जय।

वर लें हमारी कन्याएं देव-कुमारों को
और देव-कन्याएं वरें हमारे कुमारों को।
उस सुखातिरेक में नाचें हम हर्षोन्मत्त हो।''

(हिंदी भावानुवाद : **पूर्ण सोमसुंदरम्**)

समाज में समता के आदर्श, व्यक्ति-स्वातंत्र्य और मानव मात्र की एकता की आवाज उठाते हुए भारती वास्तव में एक प्राचीन तमिल परंपरा को ही पुनर्जीवित कर रहे थे, भले ही इसकी प्रेरणा उन्हें राष्ट्रीय एकता और राजनैतिक स्वाधीनता की आधुनिक पश्चिमी अवधारणाओं से मिली हो।[13]

मध्यवर्ती धारा के कवि

भारती तमिल साहित्य की मध्यवर्ती धारा के कवि हैं। वे किसी भी प्रकार से न तो कोरी उड़ान भरनेवाले कवि हैं और न ही कोई विद्रोही कवि। उनका कहना था कि अगर स्वाधीनता, भारत माता और तमिल माता हमारे साहित्य मंदिर में नए लगते हैं, तो अपने समय में शिव और शक्ति, कुमारन और कन्नगी क्या नए नहीं थे? सच्चा कवि अपने देश के मिथक-साहित्य का उपयोग करता है और फिर देश के लोगों के स्वेच्छापूर्ण सहयोग से उसे समृद्ध भी करता है। कवि और उसके सहयोगी जन मिलकर इतिहास के किसी स्वर्ण युग में प्रेम, पूजा और सेवा के लिए नए देवताओं की सृष्टि कर देते हैं। भारत माता में यथार्थ का आदर्श में विलय हो जाता है।[14] 'हमारी माता' शीर्षक कविता में भारती ने कहा है–

तीस कोटि मुख उसके
किंतु एक प्राण है
बोले अठारह भाषाएं वह
किंतु एक चिंतन, एक ध्यान है।

(हिंदी भावानुवाद : **डॉ. वी.आर. जगन्नाथन्**)

भारती की अध्यात्मवादी चेतना

भारती मूलतः अध्यात्मवादी कवि थे। समस्त प्रकृति को उन्होंने महाशक्ति के रूप में देखा। राष्ट्रीय स्वतंत्रता की उनकी चाह, आध्यात्मिक विकास के एक साधन के ही रूप में थी। उनकी विश्व-दृष्टि का प्रेरणास्रोत गीता का यह उपदेश था कि–''सभी जीवों में मैं ही विद्यमान हूं।'' उनकी आध्यात्मिक अनुभूतिमयी दृष्टि में जड़-चेतन सबमें ईश्वरीय तत्त्व ही दिखाई देता था–

''कौए और चिरैया हमारी जाति की।
विशाल सागर और उत्तुंग पर्वत हमारे कुल के।
जहां भी देखें हम-ही-हम हैं।
देखते-देखते उमड़ता हर्ष॥''

(हिंदी भावानुवाद : **पूर्ण सोमसुंदरम्**)

दिनकर इसी बात को अपेक्षाकृत अधिक काव्यात्मक शैली में कहते हैं। उनका कहना है कि–

शत्रु हो कोई नहीं, हो आत्मवत् संसार
पुत्र-सा पशु-पक्षियों को भी सकूं कर प्यार।
(रामधारी सिंह दिनकर; कलिंग-विजय, 'सामधेनी', 1941 ई.)

शक्ति की उपासना के गीत

यद्यपि भारती की लोकप्रियता देशभक्ति के कवि के रूप में अक्षुण्ण है, फिर भी वे उनकी भक्तिपूर्ण और आध्यात्मिक कविताएं ही हैं, जिनके कारण उन्हें भारत के प्रमुख कवियों की श्रेणी में गिना जाता है। वास्तव में देशभक्ति और सामाजिक विषयों पर लिखी उनकी कविताएं उनके कुल पद्य साहित्य के छठे अंश से अधिक नहीं हैं, फिर भी स्वाधीनता के पक्षधर कवि के रूप में उनकी प्रसिद्धि ने ही उन्हें व्यापक सहृदय पाठक समाज दिया और उनके अमर साहित्य के प्रकाशित होने पर इसी से उन्हें मान्यता भी मिली।[15]

भारती अमूर्त ईश्वर की नहीं, बल्कि विनायक की अराधना करते हैं और किसी भी विनायक की नहीं, पांडिचेरी के मनक्कुल विनायक की। ये उन्हें 40 कविताओं की भजनमाला अर्पित करते हैं।

भारती के 'शक्ति-गीत' अत्यंत ओजस्वी और गंभीर अर्थ-भरे हैं। इन गीतों को गाते या सुनते समय हृदय उत्साह एवं उमंग से भर जाता है। जीवन-भर कष्ट झेलने पर भी, कभी-कभी दाने-दाने तक को मोहताज होने पर भी, भारती ने अपने गीतों द्वारा लोगों में नई आशा, नई कर्मशीलता और नए विश्वास का संचार किया–

''भय न करो, निश्चय जय होगी।
होगी मुक्ति इसी जन्म में, स्थिरता होगी।
भुजाएं हैं दो, पर्वत समान।
शक्ति के चरण हैं उन पर स्वर्णिम''

(हिंदी भावानुवाद : **पूर्ण सोमसुंदरम्**)

काली और शक्ति पर लिखी भारती की कविताएं अपने में अलग से एक वर्ग की सृष्टि करती हैं, लेकिन शक्ति की भावना उनके परवर्ती काव्य में भी संश्लिष्ट है। हिंदू मिथकों में शक्ति अभिव्यक्ति-क्षमता यानी सर्जनात्मक तत्त्व का ही नाम है। इस नाम में ध्यान और ज्योति प्रदान करनेवाले विष्णु और देशकाल तत्त्व अर्थात् ब्रह्म दोनों ही अवधारणाएं शामिल हैं। ये दोनों पुरुष तत्त्व, परम चेतना शिव के पूरक बनते हैं। मातृ देवी सभी का उत्स है। वही सृष्टि की कृति हैं, वही संपूर्ण चेतन जगत् की आदि शक्ति, ज्ञान, सत्य और चेतना की जननी हैं।

'शक्ति' शब्द भारती के लिए मंत्र था और उनकी कुछ कविताएं तो इस अकेले शब्द से बनी हैं। शक्ति, महाशक्ति, पराशक्ति, काली, कंकाली, चामुंडी-ये उसी विश्वव्यापी पराशक्ति के नाम हैं, जो काल और घटनाचक्र में अभिव्यक्त होती हैं। भारती का शक्ति-काव्य 'प्रलय नृत्य' में सत्य उद्घाटन की चरम अभिव्यक्ति तक पहुंचा है। इस कविता में कवि ने मां शक्ति के महानृत्य के आतंक और गरिमा दोनों ही पक्षों का निर्वाह किया है। इसमें आक्रोश भी सोद्देश्य दिखाया गया है। उसके बाद ही पुनर्सृष्टि के आनंद और प्रेम का उदय होता है।

भारती का विश्व-बंधुत्व

भारती के तमिल-प्रेम या राष्ट्रप्रेम में क्षेत्रवादी संकीर्णता नहीं थी। उनकी कल्पना में सिंधु नदी पर छिटकी चांदनी में तेलुगू गीत गाती केरल की कन्याओं के साथ नौका-विहार का दृश्य संभव था।

उनके राष्ट्रवाद में व्यक्ति के आत्मदर्शन की आकांक्षा और पूरी मानवता के लिए सुख-शांति की कामना का समन्वय है। वे वाग्देवी सरस्वती से प्रत्येक गांव के प्रत्येक घर को माधुर्य से भरने और ज्योतित करने की प्रार्थना करते हैं। 'विजयनाद' गीत में वे 'प्रेम के साम्राज्य' की घोषणा करते हैं–

मानव-मानव एक समान
एक जाति की हम संतान
यही दृष्टि है खुशी आज की
बजा नगाड़ा, करो घोषणा प्रेम-राज्य की

बजा नगाड़ा, विजय नाद कर
बजा कि ऐसी अमित भावना गूंजे
जो कि 'प्रेम की जय' को घोषित कर दे
बजा कि सबका भला, सभी की जय हो
इस विशद विश्व में सब कुछ मंगलमय हो।

(हिंदी भावानुवाद : **एस. विवेकानंद स्वामी**)

इस अर्थ में सुब्रह्मण्य भारती महात्मा गांधी की भांति एक क्रांतिकारी थे, जिन्होंने विध्वंस नहीं, आत्मशोधन की प्राचीन भारतीय परंपरा की पुनर्स्थापना की। प्राचीन और मध्यकालीन तमिल संस्कृति में उनकी दिलचस्पी से स्वाधीनता की ओर विश्व-बंधुत्व की वह आकांक्षा पुष्पित और पल्लवित होती थी, जो उस शताब्दी के प्रथम दशक में भारतीय पुनर्जागरण का प्रतीक थी। तमिल काव्य और गद्य में तथा तमिल लोगों की सोच में भारती ने जो भारी परिवर्तन किए, वे मानव इतिहास के एक नए युग के आग्रहों के कारण थे, लेकिन वे अतीत से कभी भी नहीं हटे।[16]

भारती ने प्राचीन लेकिन लोकप्रिय मिथकों का कुशलता और आत्मविश्वास के साथ प्रयोग करके काव्य-स्थिति और विशिष्ट ऐतिहासिक स्थिति के बीच सामंजस्य का उद्घाटन किया। ये दोनों स्थितियां ऐसी भावात्मक स्थिति के वस्तुगत अंतर्संबंधों का काम करती हैं, जो आम लोगों के बीच से वीर पुरुषों का निर्माण करने में समर्थ हैं।[17]

'मुरशु' (नगाड़ा) शीर्षक लंबी कविता में भारती ने आदर्श विश्व-व्यवस्था का चित्रण किया है। वे समस्त मानव-जाति को एक समझते थे। अतः संसार की कोई भी उल्लेखनीय घटना उन पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहती थी। जब प्रथम विश्व-युद्ध के समय शक्तिशाली जर्मन-सेनाओं ने कमजोर बेल्जियम पर आक्रमण किया और बेल्जियम असाधारण साहस के साथ उसका प्रतिरोध करके अंत में हार गया, तो भारती को उस पराजय में भी बेल्जियम की विजय दिखायी दी। वे गा उठे–

''गिरे तुम, पर उन्नत कर दी धर्म की ध्वजा!
...उस व्याध-कन्या की भांति,
जो सूप लेकर बाघ का मुकाबला करे,
डट गए तुम शक्तिमान शत्रु के सामने।
बलहीन होने पर भी कार्य से श्रेष्ठ हो गए तुम।
जय हो, बेल्जियम, तुम्हारी!''

(हिंदी भावानुवाद : **पूर्ण सोमसुंदरम्**)

1917 ई. में जब रूस में जारशाही का अंत हुआ, तब भारती को उसमें नवयुग का सवेरा दिखाई पड़ा–

''पड़ी कृपादृष्टि रूस पर, महा काली पराशक्ति की।
उठी युग क्रांति प्रचंड वेग से।
गिरे सब कुटिल शोषक हाहाकार करते हुए

(हिंदी भावानुवाद : **पूर्ण सोमसुंदरम्**)

'पांचाली की शपथम्' और अन्य कविताएं

'पांचाली शपथम्' (पांचाली की शपथ) भारती की अमर रचना है। 'महाभारत' के एक अंश के आधार पर रचित इस खंडकाव्य में भारती ने आद्योपांत लोक-छंदों का प्रयोग किया है। 1912 ई. में लिखी गई इस रचना में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों और समस्याओं का संदर्भ अंतर्निहित है। युधिष्ठिर जब एक-एक करके अपने राज्य को, अपने भाइयों को और अंत में स्वयं को दांव पर लगाकर हार जाते हैं, तब भारती आवेशमयी भाषा में लिखते हैं–

''मंदिर का पुजारी मानो
उपासना-मूर्ति को ले जा बेच दे,
द्वारपाल स्वयं ही घर को
बंधक रखकर मानो खो डाले
विविध विशिष्ट सब नीति
नियमों के पारखी युधिष्ठिर ने
स्वयं ही खो डाला राज्य-छिः छिः

क्षुद्रजन का-सा किया व्यवहार
देशवासी पौर सभी को उसने
मनुष्य न गिना अपनी तरह
प्रजा को राजा ने भेड़ों
का झुंड समझ लिया मतिहीन

न्याय, नीति, शास्त्र अनेक
देते ज्ञान, सत्य की शिक्षा
किंतु करते हैं व्यवहार मनुष्य
अनीति अपचार असत्य का ही

पक्षपात रहित व्यवहार करे
धर्मनिष्ठता के प्राण न हरे
संपत्ति दूसरों की न छीने
लोगों को अपीड़ित दे जीने
ऐसा न्यायी राज्य कहां !
समस्त इस लोक में, यहां
शब्द खोखले हैं।
यह बेकार कथा कहूं, आगे मैं लाचार।

(हिंदी भावानुवाद : डॉ. वी.आर. जगन्नाथन्)

यदि हम समकालीन राजनीतिक परिवेश पर गौर करें तो पाएंगे कि भारतीय देशभक्तों ने पांडवों की तरह समझौते की आत्मग्लानि भरी नीति पर चलना शुरू कर दिया था। चंद सक्रिय उग्रपंथी भी थे, लेकिन उन्हें या तो जेलों में बंद कर दिया गया था या निर्वासित कर दिया गया था। ऐसी स्थिति में बेड़ियों में जकड़ी हुई भारतमाता अकिंचन खड़ी थी। यदि हम प्रतीकों की भाषा को समझने का प्रयास करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि कौरवों के दरबार में खड़ी अकिंचन द्रौपदी भारतमाता ही है। 'कुरु-राजसभा' ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतीक है। द्रौपदी भरी सभा में अपमानित हो रही है, क्योंकि उसके पांचों पति, जिन पर उसकी रक्षा का दायित्व है, वे परिस्थितियों के दुष्चक्र में फंसकर स्वयं असहाय बने हुए हैं।

दरअसल, यह एक काव्य-रूपक है, जिसमें द्रौपदी के रूप में भारती ने देश की स्थिति का शब्दांकन किया है। इसमें संकेत रूप में यह भी बताया गया है कि जिस प्रकार अंततोगत्वा पांचाली की शपथ पूरी हुई, उसी प्रकार भारत में भी शत्रु-दासता, अंध-विश्वास, विभेदकारी तत्त्वों इत्यादि का अंत होगा; और क्रांतिकारियों की प्रतिज्ञा पूरी होगी। भारती यह उम्मीद करते थे कि जिस तरह द्रौपदी ने अपने आत्मबल और दृढ़ता के बल पर मुक्ति पा ली थी, उसी प्रकार भारत भी अंततः अपने ही प्रयत्नों से विजयी होगा।

पांचाली उपेक्षिता स्त्री का भी प्रतीक है, जो जागृति-विरोधी तत्त्वों से घिरी हुई है। वह पुरुषसत्तात्मक समाज के स्त्री-विरोधी व्यवहार द्वारा प्रताड़ित भी है। उसके पतियों ने उसको व्यक्ति के स्थान पर वस्तु मानकर, उसकी इच्छा जाने बिना, द्यूत-क्रीड़ा में दांव पर लगा दिया है। इस प्रकार, 'पांचाली शपथम्' में एक ऐसा संश्लिष्ट शब्दांकन है, जिसमें अर्थों के अनेक आयाम अंतर्गर्भित हैं। 'कण्णन पाट्टु'[18] (कान्हा के गीत) में भारती ने प्राचीन तमिल-काव्य-शैली को नया रूप दिया है। ये गीत गहरे समर्पण की मनःस्थिति से पैदा हुए हैं। ज्ञातव्य है कि 'कण्णन' श्री कृष्ण का तमिल

नाम है। ('कान्हा' शब्द के साथ इसका ध्वनि-साम्य गौरतलब है।) 'गीता' का अनुवाद करते हुए उनकी कल्पनाशक्ति ने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की गहराइयों में प्रवेश किया होगा। श्रीकृष्ण को उन्होंने नायक, नायिका, सखा, पिता, शिशु, भृत्य, स्वामी, शिष्य, गुरु और अंततः मुक्तिदाता के रूप में देखा। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भारती ने आधुनिक विज्ञान एवं अपनी मौलिक आध्यात्मिक विचारधारा का इसमें अत्यंत मार्मिक ढंग से समावेश किया है। वे नंद-नंदन या गोपिका-रमण कृष्ण की अपेक्षा गीताचार्य कृष्ण से अधिक प्रभावित हैं।

'भारती छियासठ' नामक कविता-शृंखला में उनकी आध्यात्मिक विचारधारा प्रतिपादित है। दरअसल, अलवार वैष्णव संतों के बारे में यह जानकर कि उन्होंने 'नलायीर दिव्य प्रबंध' (चार हजार पवित्र गीत) की रचना की थी, भारती ने तय किया कि वे छह हजार गीत रचेंगे। उनकी योजना थी कि वे एक लंबी दार्शनिक कविता लिखेंगे, जिसमें अपने आध्यात्मिक, रहस्यवादी एवं काव्यात्यक अनुभवों को अभिव्यक्त करेंगे, लेकिन उनकी इच्छा अधूरी ही रह गई। इसके बावजूद, उन्होंने जिन 66 कविताओं की रचना की, उनमें उनकी आध्यात्मिक चेतना की सुगंध व्याप्त है। इन कविताओं में उन्होंने अमरत्व, निर्भीकता और धैर्य संबंधी अपने दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है।

भारती का प्रकृति-प्रेम

भारती अपने पांडिचेरी-प्रवास के दौरान प्राकृतिक सौंदर्य से संपन्न तीन स्थलों पर अक्सर जाया करते थे- त्यागराज पिल्लै झील, समुद्र-तट और मुथ्थालपट का आम का बगीचा। उन्होंने अपने बहुत से गीतों के अलावा अपनी प्रसिद्ध कविता 'कुयिल पाट्टु' (कोयल के गीत) की रचना भी इसी बगीचे में की थी। 'कुयिल पाट्टु' एक मौलिक स्वप्न-काव्य है। एक स्वप्न के रूप में उन्होंने इसमें एक सुंदर प्रेम-कहानी का वर्णन किया है। हास्य एवं शृंगार रस से ओत-प्रोत यह कविता बहुत ही रोचक है।

वे प्रकृति-प्रेमी थे। उनके लेखन में चांद का बिंब बार-बार आता है। सूर्योदय, सूर्यास्त, वर्षा, वसंत, आंधी, कोयल, चिड़िया, नदी, समुद्र आदि विभिन्न विषयों पर उनकी कविताएं तमिल कविता-कानन के कमनीय कुसुम हैं। समुद्र में सूर्योदय का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–

सागर पर किरणें फैलाकर आर्य, तुम
बढ़ रहे हो गगन-वीथी पर, वेग से।
तुम्हारी स्वर्गिक, सुखकर छवि को देख कर
पंछी गाते मोद-भरे स्वर।
विशाल सागर भी, अपने
कण-कण के अनंत नेत्रों से
अंकित कर तुम्हारा ज्योतिर्मय रूप
अपने हृदयांतर में, वेद-सम गा रहा तुम्हारा यश।''

(हिंदी भावानुवाद : पूर्ण सोमसुंदरम्)

सुब्रह्मण्य भारती ने लोकगीतों की जिस शैली और आंचलिक भाषा में कविता लिखना आरंभ किया, उसे कई तमिल कवियों ने अपनाया। उनमें 'देशिक विनायकम पिल्लै', 'भारती दासन', 'नामकल रामलिंगम पिल्लै', 'शुद्धानंद भारती' आदि प्रमुख हैं। उन्होंने हर प्रकार से इस युग का मार्गदर्शन किया है। अतः बीसवीं सदी के आरंभिक दो दशकों को हम तमिल साहित्य का 'भारती-युग' भी कह सकते हैं।

''यद्यपि उनके पद्य में प्रचार का स्वर अधिक था और उनकी कविता में सामयिक जनचिंता के समर्थन में लिखे सहज गीत ही हुआ करते थे, फिर भी उनकी कविता में उच्च साहित्यिक मूल्य का सच्चा काव्य देखने को मिलता है। यहां तक कि उनके देशीय गीतांगल (राष्ट्रीय गीतों) में भी उत्कृष्ट काव्य की कमी नहीं थी। इन कविताओं में तमिल जनता को वाणी मिलती थी और उसके उज्ज्वल भविष्य के लिए आकांक्षा प्रकट होती थी।''[19]

संदर्भ एवं टिप्पणी :

1. पांच प्राचीन तमिल महाकाव्य हैं–'शिलप्पादिकारम्', 'मणिमेखलै', 'जीवक चिंतामणि', 'वलयापति' एवं 'कुंडलकेशी'।
2. पांच प्राचीन तमिल खंडकाव्य हैं–'नीलकेशी', 'शूलामणि', 'यशोधर काव्यम्', 'नागकुमार काव्यम्' एवं 'उदयणन् कथै'।
3. स्वामिनाथन, कृ. (सं.). सहाय, रघुवीर (सहायक सं.). (1989). *सुब्रह्मण्य भारती : संकलित कविताएं एवं गद्य.* अखिल भारतीय सुब्रह्मण्य भारती शताब्दी समारोह समिति. नई दिल्ली : संस्कृति विभाग, भा. सरकार. पृ. 12
4. वही, पृ. 1
5. वही, पृ. 2
6. नंद कुमार, प्रेमा. (अनु. बक्षी, रमेश). (1997). *सुब्रह्मण्य भारती.* नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया. पृ. 30-31
7. सोमसुंदरम्, पूर्ण. *तमिल और उसका साहित्य.* बंबई : सरस्वती सहकार, दिल्ली की ओर से राजकमल प्रकाशन. पृ. 94
8. रामनाथन, आनंदी (अनु.). (1966). *भारती की कविताएं.* नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी. पृ. 6
9. पिल्लै, ति.पी. मीनाक्षिसुंदरम्. (1972). *आज का भारतीय साहित्य.* दिल्ली : साहित्य अकादेमी की ओर से राजपाल एंड संस. पृ. 144
10. पालीवाल, कृष्णदत्त. (अक्टूबर 2008). 'औपनिवेशिक दासता से मुक्ति की ध्वनि'. *आजकल.* पृ. 15
11. पिल्लै, ति.पी. मीनाक्षिसुंदरम्. (1972). *आज का भारतीय साहित्य.* दिल्ली : साहित्य अकादेमी की ओर से राजपाल एंड संस. पृ. 143-144
12. वही, पृ. 146
13. स्वामिनाथन, कृ. (सं.). सहाय, रघुवीर (सहा. सं.). (1989). *सुब्रह्मण्य भारती : संकलित कविताएं एवं गद्य.* अखिल भारतीय सुब्रह्मण्य भारती शताब्दी समारोह समिति. नई दिल्ली : संस्कृति विभाग, भारत सरकार. पृ. 8
14. वही, पृ. 6
15. वही, पृ. 8
16. वही, पृ. 6-7
17. वही, पृ. 8
18. तमिल भाषा में 'पाट्ड' का अर्थ है–अधिक पंक्तियोंवाली कविताएं।
19. स्वामिनाथन, कृ. (सं.). सहाय, रघुवीर (सहा. सं.). (1989). *सुब्रह्मण्य भारती : संकलित कविताएं एवं गद्य.* अखिल भारतीय सुब्रह्मण्य भारती शताब्दी समारोह समिति. नई दिल्ली : संस्कृति विभाग, भारत सरकार. पृ. 4

□

स्वतंत्रता संग्राम में भारती का योगदान

राजलक्ष्मी कृष्णन

तमिल प्रदेश में राष्ट्रीय कविता का लगभग दो सौ साल का पुराना इतिहास है। जहां तक दक्षिण भारत के इतिहास से संबंध है, वहां ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में अंग्रेजों और ईसाई पादरियों का आगमन, व्यापार के अतिरिक्त राजनीतिक मामलों में धीरे-धीरे उनका हस्तक्षेप, ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार आदि कारणों से हिंदुओं को अपने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए और अंग्रेजों का विरोध करना यहां की मुख्य समस्याएं थीं।

उस युग में देशभक्ति की भावना के अंतर्गत प्राचीन गौरव की भावना, विदेशी सभ्यता के विरुद्ध आक्रोश, अनाचार, अशिक्षा, अछूतों की हीनावस्था के प्रति चिंता और विद्रोह आदि का समावेश था। तमिल प्रदेशों में हिंदू धर्म की नींव पक्की रही, क्योंकि उत्तर भारत की भांति यहां विदेशी, विधर्मी, आक्रांतों के कारण उनकी सभ्यता और संस्कृति में वे विकृतियां नहीं आईं, जो कि उत्तर भारत में देखी गई। एक तरह से दक्षिण भारत हिंदू धर्म, हिंदू सभ्यता और संस्कृति का गढ़ माना जा सकता है। जब हमारा देश गुलामी के बंधन में जकड़ा हुआ था, उस समय स्वतंत्रता प्रेमी लोगों के सामने केवल एक ही लक्ष्य था, अपने देश को आजादी दिलाना। इसके लिए प्रत्येक भारतवासी इस उद्देश्य को पूर्ण सहयोग दिया। इस कार्य में तमिल साहित्यकारों ने भी अपना काफी सहयोग दिया।

पूज्य महात्मा गांधीजी का आह्वान और आशीर्वाद पाकर तमिलनाडु के अनेक साहित्यकार और प्रचारक हिंदी प्रचार-प्रसार के कार्य में लग गए और गांधीजी के सहयोग में, अंग्रेजों को भारत से भगाने के लिए दृढ़ निश्चय कर लिया। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम संपूर्ण भारत के कई राष्ट्रप्रेमी, भक्तों और साहित्यकारों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपूर्व बलिदान और त्याग किया। विशेष रूप से दक्षिणवासियों का योगदान कम महत्त्व का नहीं है।

उस समय के साहित्यकार और राष्ट्रप्रेमियों ने अपनी-अपनी रचनाओं के द्वारा समय-समय पर देश के युवाओं को उत्साहित करने का प्रयास किया। उन शहीदों में तमिलनाडु के वीरपांडिय कट्टबोम्मन, कित्तूर की वीरांगना चेन्नम्मा, वीर वेलुत्तम्बि, चिदंबरम् पिल्लै, राष्ट्रकवि भारतीदासन, सुब्रह्मण्य भारती आदि महान कवियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सुब्रह्मण्य भारती तमिलनाडु के राष्ट्रीय कवि हैं। उन्होंने भारतमाता को स्वतंत्र करने के लिए अथक परिश्रम किया। भारती ने कविता से प्रेम किया। राष्ट्रीय कविता लिखना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। एक आदर्श समाज की स्थापना करना ही भारती का मुख्य उद्देश्य था और वे भारतीयों को अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त करना चाहते थे। जातिगत भेदभाव का उन्होंने डटकर विरोध किया। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों पर करारा प्रहार किया।

''एल्लोरुम ओरु कुलम,
एल्लोरुम इंदिय मक्कल
एल्लोरुम इन्नाट्टु मन्नर''

अर्थात्–हम सभी एक परिवार के और भारतीय परिवार के सदस्य हैं। हम सब इस देश के वासी हैं। दक्षिण भारत में ऐसा कोई परिवार नहीं होगा जो सुब्रह्मण्य भारती के नाम से परिचित न हो। बचपन में जब वे पांच वर्ष के थे, तभी उनकी माता का देहांत हो गया। इसी दुःख के कारण उनके हृदय से कविता की धारा बह निकली और वे सात वर्ष की आयु से ही कविताएं लिखने लगे। ग्यारह वर्ष की आयु में वे एक प्रसिद्ध कवि बन गए। तमिल विद्वान मु. वरदराजन के शब्दों में 'तमिल साहित्य के इतिहास में नया जागरण काल' भारती द्वारा ही प्रारंभ होता है और इस आंदोलन के वे अगुआ बनकर रहे।

भारतीदासन भारती के शिष्य थे। भारतीदासन भारती के दिखाए गए मार्ग पर चलकर अनेक सुंदर कल्पना और अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट करने में समर्थ हुए हैं। भारतीयों पर अंग्रेजों का अत्याचार देखकर उनका खून खौलने लगता था। स्वभाव से ही वे क्रांतिकारी थे। उन्होंने देशवासियों को जगाने के लिए अनेक राष्ट्रीय कविताएं लिखीं। सन् 1907 में उनका प्रसिद्ध कविता- संग्रह 'स्वदेशगीत' प्रकाशित हुआ। तब से वे राष्ट्रकवि माने जाने लगे। जन्मभूमि के प्रति प्रेम मनुष्यों में ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी होता है–

'अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीर नीरज् मंडितम
रमते न मराल मानस मानस बिना!'

अर्थात्–यद्यपि हर कहीं जल की शोभा बढ़ाने वाले कमल खिले सरोवर विद्यमान हैं, फिर भी हंस पक्षी का मन मानसरोवर में ही रमता है, क्योंकि वही उसकी जन्मभूमि है। तमिल साहित्य में भारती जी की अप्रतिम देन है। महाकवि भारती ने साहित्य की सभी विधाओं पर प्रकाश डाला है। वे प्रथम कवि हैं, जिन्होंने राजनीति, देशभक्ति एवं तमिल साहित्य को इतना आसान बनाया कि जन साधारण भी उसे समझ सके, इसलिए उन्हें 'आधुनिक तमिल साहित्य का जनक' कहा जाता है।

'अग्नि' के प्रकाशन के द्वारा उन्होंने राष्ट्र को एक हृदयग्राही ज्वलंत संदेश दिया है। महाकवि ने अपनी राष्ट्रीय कविताओं के द्वारा लोगों के मन में आजादी की भावना को जगाया। कवि ने राष्ट्रप्रेम, नारी स्वातंत्र्य पर जोर दिया। इनका 'ज्ञानरथम' अद्‌भुत रचना है। इसमें धार्मिकता और दार्शनिकता का सुंदर समन्वय है।

महाकवि ने सामाजिक विषयों पर गीत लिखा है। 'पांचाली शपथम्' द्वारा कवि ने महाभारत की कथा को अत्यंत सरलता से जनता तक पहुंचाया। अंग्रेजों की गुलामी से जब भारत माता अपमानित हो रही थी, तो हमारी संस्कृति ने ही महाकवि को जागृत् किया और भारतीय संस्कृति ही द्रौपदी के रूप में कवि के समक्ष उपस्थित हुई। इनकी 'जन्मभूमि' नामक पत्रिका ने तहलका मचा दिया था। 'अग्नि' नामक लेख ने जनता को विशेष रूप से प्रभावित किया। भारती से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण कर उनके शिष्य भारतीदासन ने अपने अनेक गीतों में उसे प्रकट किया है–

''तमिल का अन्य नाम अमृत है,
वह मधुर तमिल हमारे प्राण समान प्रिय है।
हमारा जीवन, हमारी समृद्धि
कभी न घटे कहकर, शंखनाद करें।''

इन गीतों में भारती के स्वर को प्रतिध्वनित होते हुए हम देखते हैं। भारतीदासन ने तमिलनाडु की प्राचीनता और श्रेष्ठता को इन गीतों द्वारा प्रकट किया है–

''आदि मानव तमिल ही है
उनकी भाषा तमिल अमृत ही है।
प्राचीन विश्वों का नैतिक आदर्श भी
तमिलनाडु ने ही पहले पहल रचा था।''

इन गीतों से तमिलनाडु की राष्ट्रीयता चरम सीमा तक पहुंच जाती है। भारती की हर सांस में देशमुक्ति की प्रबल कामना है, फिर भी राष्ट्रमुक्ति में बाधा बनकर रहनेवालों से और जाति-पांति को तोड़ने से वे कभी भी डरते नहीं थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि भारतवासी एकत्र होकर अंग्रेजी शासन का विरोध करें, तो हमें अवश्य सफलता मिलेगी। 'वंदे मातरम्' से शुरू होने वाले अपने इस गीत में वे गर्जन करते हुए गाते हैं–

''जाति भेदों पर ध्यान न देंगे - ऊंचे
इस देश में जनम लेने पर
ब्राह्मण हो या अन्य जाति वाले
सब एक हैं-बराबर के हैं॥''

आगे वे कहते हैं कि–

''नीच परैयर जातिवाला भी
हमारे साथ रहनेवाला भाई होता है।''

नए समाज के निर्माण के लिए हमें क्या करना होगा। इस पर भारती लिखते हैं कि–

''तीस करोड़ जनता का यह संघ
सबके लिए समता का यह संघ
अतुलनीय एक समाज है,
यह संसार के लिए नया होगा-जीवित रहे
भारत समाज जीवित रहे॥''

(भारती की कविताएं, पृ. 160)

भारती जी सामाजिक अन्याय और अत्याचार तथा शोषण के विरुद्ध बुलंद आवाज उठाते हैं, युद्ध का नगाड़ा बजाते हैं। ऐसी हालत में वे क्रांतिकारिता का एक नए विधान की स्थापना करने के लिए छटपटाते हैं–

''व्यक्ति मानव के लिए खाना नहीं हो
सारे जगत् का नाश हम करेंगे॥''

भारती ने लघु अवधि में कई राष्ट्रीय गीत और लघु काव्यों की रचना की। भारती देश के राष्ट्रीय आंदोलन के सक्रिय भागीदार थे। वीर स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने स्वार्थ रहित होकर उन्होंने देश और देशवासियों की सेवा की। हिंदी कवियों की तरह उन्होंने भी भारत का गौरव गान और विशेष रूप से हमारे पूर्वजों के ज्ञान और दर्शन की महत्ता का विशेष गुणगान किया है।

उनकी कविताओं में प्रमुख रूप से हम तीन बातें देख सकते हैं–

1. दासता पर दुःख, क्षोभ और स्वतंत्रता की उत्कट कामना।

2. आत्मगौरव, स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास को जगाने के लिए प्राचीन भारत और उसकी सांस्कृतिक समृद्धि का गौरव गान।

3. नई परिस्थितियों, नए विचारों तथा बदलते जीवन-मूल्यों का निर्माण।

भारती ने सरल बोलचाल की भाषा को अपनाया, इस कारण वे तमिलनाडु के लोकप्रिय राष्ट्रकवि बन गए। भारती ने गौतम बुद्ध, ईसा मसीह, गुरुनानक आदि पर स्वतंत्र रूप से कविताएं लिखी हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने लोगों को गर्व और आत्मसम्मान के साथ जीने का संदेश दिया। भारत माता के प्रति उनके मन में असीम श्रद्धा और प्रेम का भाव था। उनकी इस कविता को पढ़कर हमारे मन में भी मातृभूमि के प्रति प्रेम का भाव उजागर होता है–

''उज्ज्वल हिमगिरि शृंग हमारा
विश्वभर में यह है न्यारा
सुधामयी गंगा हमारी
इसका न कोई सानी रे।''

उन्होंने भावात्मक एकता, राष्ट्रीय अखंडता और नवयुग की चेतना का शंखनाद किया था–

''एक मां की कोख से ही जन्मे हम,
अरे, विदेशियों हम अभिन्न हैं
मनमुटाव से होता क्या
हम भाई-भाई ही रहेंगे
और कहेंगे 'वंदे मातरम्'!

इस प्रकार भारती ने भारतीय जनजागरण में अपनी ऐतिहासिक भूमिका बखूबी निभाई है। उनमें तो अखंड भारत की परिकल्पना थी। राष्ट्रोत्थान उनका शुभसंकल्प रहा है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि भारती की कविताओं में राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता का सुंदर समावेश है। उनकी हर कविता में आजादी की तीव्र पिपासा गंभीर स्वर में अभिव्यक्त है। गांधीजी के अहिंसा और प्रेम तथा त्याग की भावना उनकी कविताओं में गूंजती है। विश्वभर में व्याप्त सभी प्रकार की क्रूरताओं, अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की। उन्होंने पुरुष और नारी दोनों की समान अधिकार से युक्त जीवन बिताने के लिए प्रेरित किया।

स्वयं भारती के शब्दों में–

''कर्ण के साथ दान भी खत्म हुआ, उत्तम
कवि कंबन के साथ (तमिल) काव्य भी समाप्त हुआ॥''

हमें दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि भारतीजी स्वतंत्र भारत को देखने के लिए आज हमारे बीच नहीं हैं, परंतु गांधीजी के समान उन्होंने भी अपने देश के लिए अपने को समर्पित कर दिया।

सहायक ग्रंथ :

1. *राष्ट्र का अमूल्य धरोहर महाकवि सुब्रह्मण्य भारती,* लेखक : प्रो. के.वी. कृष्णन, संपादक नीला नटराजन।
2. *आधुनिक तमिल काव्य और सुब्रह्मण्य भारती,* लेखक : डॉ. एन. शेषन
3. *राष्ट्रीय काव्य विमर्श* - संपादक : डॉ. इंदरराज बैद
4. *भारत के स्वतंत्रता संग्राम में तमिलनाडु का योगदान,* लेखक : टी.एस. राजु शर्मा

□

भारती का गद्य साहित्य

कुमार निर्मलेन्दु, पी. के. बालसुब्रह्मण्यन्, एन. सुंदरम्, रमा लक्ष्मीनरसिंहन्

गद्यकार भारती/कुमार निर्मलेन्दु

1910 ई. में ब्रिटिश सरकार के संशोधित प्रेस विधेयक के कारण तमाम देशभक्तिपूर्ण पत्र-पत्रिकाएं बंद हो गईं। भारती के संपादन में छपनेवाली पत्रिकाओं के बंद हो जाने के कारण वे बेरोजगार हो गए, लेकिन धनाभाव के बावजूद 1910 से 1913 ई. के कालखंड को उन्होंने अपने रचनात्मक लेखन का महत्त्वपूर्ण समय बना दिया।

श्री अरविंद ने उन्हें वैदिक ऋषियों के रहस्यवादी गीतों और प्राचीन संस्कृत ग्रंथों की ओर प्रवृत्त किया। अनुवाद के रूप में वेद ऋषिकालीन कविता उनका पहला प्रयास था। उन्होंने 'वैदिक ऋषियों की कविता' की एक लंबी परिचयात्मक भूमिका भी लिखी। यह 'परिचयात्मक भूमिका' गद्य के क्षेत्र में एक उपलब्धि बन गई। उसके बाद उन्होंने पतंजलि के 'योगसूत्र' और 'श्रीमद्भगवद्गीता' का अनुवाद किया। पतंजलि के 'समाधि पथ' के भारती के अनुवाद को अरविंद ने बहुत श्रेष्ठ माना। उनके द्वारा किया गया गीता का अनुवाद भी अद्वितीय है।

तमिल में गद्य-गीत लिखने की प्रथा भारती ने ही सबसे पहले चलायी थी। 'ज्ञानरथम्' में उन्होंने भारत की तत्कालीन सामाजिक स्थिति और आदर्श समाज में तारतम्य दिखाया है।

उन्होंने अपनी एक लघुकथा 'लोमड़ी और कुत्ता' में लिखा है—एक शिकारी के पास कई तरह के शिकारी कुत्ते थे। उनमें से एक का नाम था—बहादुर। एक दिन बहादुर की मुलाकात एक लोमड़ी से हुई। बहादुर ने लोमड़ी को सगर्व बताया कि उसका मालिक एक संपन्न शिकारी है, जो उसे अच्छे ढंग से रखता है और भरपूर भोजन देता है।

लोमड़ी जंगल में रहती थी, जहां उसे यथेष्ट भोजन नहीं मिल पाता था। स्वभावतः उसको बहादुर से ईर्ष्या हुई। उसने बहादुर से कहा कि वह जंगली जानवरों को ढूंढ़ने में शिकारी की मदद करे। बहादुर को उस पर दया आ गई और वह उसको शिकारी के पास ले जाने के लिए तैयार हो गया। अचानक, लोमड़ी ने बहादुर की गर्दन पर एक बड़ा-सा निशान देखकर उसके बारे में जानना चाहा। तब बहादुर ने बताया कि जब वह घर पर रहता है, तब चांदी की जंजीर से बंधा रहता है। यह उसी जंजीर के निशान हैं।

अब लोमड़ी को महसूस हुआ कि बहादुर स्वतंत्र नहीं है, बल्कि वह शिकारी का दास है। लोमड़ी ने बंधनों में बंधे रहने के लिए बहादुर की भर्त्सना की और वह वापस घने जंगल की ओर

चली गई। चाहे भूखे रहना पड़े या दुःख उठाना पड़े, उसको अपनी स्वतंतत्रा से समझौता मंजूर नहीं था।

इस लघुकथा में भारती की स्वातंत्र्य-चेतना व्यक्त हुई है। सच पूछा जाए तो उनकी महत्ता इसमें है कि उन्होंने न केवल भाषा को एक नई शक्ति, नया रूप एवं नया सौष्ठव प्रदान किया, बल्कि लोगों की चिंतनशैली में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। खास बात यह है कि भारत के गौरवशाली अतीत पर उन्हें गर्व था, पर अतीत की बुराइयों का खंडन करने से भी वह नहीं चूकते थे। यद्यपि वे अध्यात्मवादी थे, तथापि जीवन के प्रति निराशा फैलानेवाली तथाकथित दार्शनिकता के विरोधी थे।

कुल मिलाकर, सुब्रह्मण्य भारती भारत की स्वतंत्रता और समाजिक समानता की मशाल लेकर चलनेवाले मां भारती के एक अनन्य साधक थे।

•••

कथाकार भारती/पी.के. बालसुब्रह्मण्यन्

डॉ. चिदंबरनाथ सुब्रह्मण्य भारती को तमिल की आधुनिक कहानीकारों का पथप्रदर्शक मानते हैं। वे उन्हें शुक्रतारा मानते हैं जिन्होंने परवर्ती कथाकारों को एक नया मार्ग सुझाया। उनकी स्वर्णकुमारी जैसी कहानियों के आधार पर परवर्ती कथा साहित्य की श्रीवृद्धि हुई। वेदनायकम पिल्लै, य. वे. सु. अय्यर, स्वामी वेदाचलम आदि ने उनका अनुकरण करके अपनी कहानियां लिखीं।

सुब्रह्मण्य भारती कविता को पंडितों के कारागार से छुड़ाकर जनसामान्य तक पहुंचाने में सफल हुए और कहानी को भी सरल शैली में लिखकर जनसामान्य का समर्थन पा सके।

भारतेंदु ने जैसे बांग्ला के नाटकों को हिंदी में अनुदित किया वैसे भारती ने भी कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानियों का अनुवाद तमिल में किया। आजकल यह कहानी संग्रह उपलब्ध नहीं होता। प्रसंगवश यह कहना पड़ता है कि भारती की कविताओं का प्रचार व प्रसार जितने प्रबल रूप में हुआ उतने न उनके निबंधों का हुआ न कहानियों का। इसका प्रमाण यह है कि भारती की कविताओं के बीसों संस्करण निकले हैं, लेकिन निबंध व कहानियों के दूसरे-तीसरे संस्करण भी निकल नहीं पाए।

भारती की कहानियों के संग्रह का जो प्रकाशन सन् 1977 को 'पूंपुहार प्रकाशन' मद्रास-1 की ओर से जो निकला है उसमें 'ज्ञानरथ' (दार्शनिक एवं विचारप्रधान काल्पनिक यात्रा) के साथ चालीस कहानियों का प्रकाशन हुआ है।

भारती ने पंचतंत्र कहानियों का अनुकरण करके नवतंत्र कहानियां लिखी हैं, चंद्रिका की कथा, स्वर्णकुमारी आदि लंबी कहानियां लिखी हैं तो अन्य छोटी-मोटी कहानियां भी। विषयवस्तु की दृष्टि से उनमें विविधता है। कुछ कहानियां मजेदार हैं। उनके द्वारा तत्कालीन विदेशी शासन, भारतीय समाज, धार्मिक ढोंग आदि पर भी व्यंग्य किया गया है। कुछ कहानियां सुधारवादी होती हैं तो कुछ ज्ञानवर्धक।

कथावस्तु की दृष्टि से भारती की कहानियां भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ कहानियां पौराणिक होती हैं। उदाहरण 'देवविकटम' लेकिन अधिकांश कहानियां सामाजिक होती हैं। 'नवतंत्र कहानियां' पंचतंत्र की कहानियों के प्रस्तुतीकरण में भारती ने अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। 'वेदारण्यम' के विवेक शास्त्री अपने पुत्रों को व्यावहारिक ज्ञान दिलाने के लिए नवतंत्र कहानियां कहते हैं। तीनों पुत्र संस्कृत का गंभीर अध्ययन कर चुके थे। एक वेदांत का ज्ञाता था तो दूसरा

व्याकरण का और तीसरा तर्कशास्त्र का। लौकिक व्यवहार के सिद्धांतों को समझाने के लिए पिता पुत्र से नवतंत्र कहानियां कहने लगे।

इसकी अंतर्कथाएं एक-एक सीख देती हैं–

(1) एक गधे के संगीताभ्यास की कथा से यह समझाया गया जो निष्फल कार्य में लगता है, वह अवश्य कठिन यातनाएं भोगेगा।

(2) एक श्रेष्ठी की कथा से, जो यह कहकर अपमानित किया कि ब्राह्मण लड़का व्यापार करना नहीं जानता, यह समझाया गया कि हर कोई सब काम कर सकते हैं और परिश्रम और लगन की मात्र जरूरत है।

(3) 'एक सर्पकुमारी गुलाबी' की कहानी से यह समझाया गया कि गधे के समान मूर्ख सदा दूसरों की बातों में आकर शीघ्र धोखा खाते हैं।

(4) वीरवर्मसिंह की कथा से यह पाठ सिखाया गया कि शत्रु के यहां आने वाला भेड़िया होता है और उस पर विश्वास करना आत्महत्या के बराबर होगा।

(5) सिपाही तिण्णन की कथा से समझाया गया है कि भगवद्भक्ति से अप्रतीक्षित फल हर एक को मिलेगा, बशर्ते कि उसके प्रति लगन व निष्ठा के साथ सतत प्रयत्नशील रहे।

(6) ब्राह्मण-पुत्र के शास्त्राध्यन की कथा से इशारे से समझाया है कि साधारण सूक्तियां भी समय पर काम आएंगी।

(7) सियारिन नल्लदंगा की कहानी से समझाया है कि जो व्यवहारकुशल है, वे भयंकर शत्रुओं को हरा सकते हैं।

इनके अलावा कई और जीवनोपयोगी बातें भी इस कहानी में स्थान-स्थान पर प्राप्त होती हैं। उदाहरण : कार्यपूर्ति से पहले घने मित्र से भी कोई बात नहीं कहनी चाहिए; जो स्त्रियों का अपमान करते हैं, वे मनुष्यों में पशु होते हैं। अविवेकी की भगवद्भक्ति किसी काम की नहीं होती है। (भारती की कहानियां, पृ. 117)

भारती की कहानियों में 'चंद्रिका की कहानी' काफी लंबी कहानी है। इसमें विशालाक्षी नामक बालविधवा के पुनर्विवाह के प्रयत्नों का वर्णन है। उसकी सहायता 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका के संपादक श्री जी सुब्रह्मण्य अय्यर और राजमहेंद्र पुरम् के विख्यात समाज सुधारक ने की थी। उसमें एक संन्यासी से विशालाक्षी का पुनर्विवाह करके भारती ने समाज को दर्शाया है कि पवित्र मन से जो कार्य किया जाता है, यह अवश्य सराहनीय होता है।

'स्वर्णकुमारी' कहानी में नायिका 'मनोरंजन' से इसलिए विवाह करने से इनकार करती है कि वह देशभक्त बालगंगाधर तिलक के विरुद्ध षड्यंत्र करता था और मातृभूमि के प्रति प्रेम नहीं करता। भारती की राष्ट्रीयता स्वर्णकुमारी के अंतिम पत्र से प्रकट होती है।

'आरिल औरु पंगु' या 'छह भागों में एक' की कहानी भी देशप्रेम से भरी हुई कहानी है। इसमें नायक गोविंदराज ब्रह्मचर्यव्रत अपनाकर राष्ट्र की सेवा में लग जाता है। उसकी प्रेयसी नायिका मीनांबाल एक पुलिस इंस्पेक्टर से शादी नहीं करना चाहती थी, इसलिए कुछ हरे पत्ते खाकर ज्वरग्रस्त होती है। गोविंदराज संन्यासी होकर घूमते-घामते बंगाल पहुंचा तो पता चला कि मीनांबाल मृतप्राय होकर काशी पहुंची तो नायक भी काशी पहुंचता है और उससे शादी कर लेता है। इस कहानी के

द्वारा भारती राष्ट्र की सेवा पर ही जोर नहीं डालते, लेकिन दलितोद्धार व हरिजन सेवा का उपदेश भी देते हैं जो हमारी जनसंख्या के छह भागों में एक होते हैं।

'चिन्न शंकरन' की कथा भी एक लंबी कहानी है, जो तात्कालीन जमींदारों के दरबार का खोखलापन दर्शाती है। विशेषतः चिन्न शंकरन की कविता का जो अर्थ बताया जाता है, वह सचमुच व्यंग्यात्मक है।

भारती की मजेदार कहानियों में सर्वप्रसिद्ध है 'पोल पांव की लात' की कथा। एक फलवाला अपना पील पांव दिखाकर लड़कों को मारने की धमकी देता था। लड़के भागते थे। एक छोटे लड़के ने एक दिन चुनौती दी। पील पांव की लात पाकर वह सबको यही कहकर लात खाने का निमंत्रण देता था कि पोल पांव की लात सुखद है, दुःखदायी नहीं। इसका गूढ़ार्थ है कि अंग्रेज शासन की दमन नीति से वे न डरकर एक बार भोंगे तो मालूम होगा कि अंग्रेजों की गीदड़ भभकियां निरर्थक होती हैं।

इसी तरह मिर्च फल स्वामी और कदली फल स्वामी की कथा से भारती समझाते हैं कि पारस्परिक कलह से बुराई ही होगी। 'अंधेरे' की कहानी यह सीख देती है कि प्रयत्न करते रहें तो चट्टान रास्ता देगी। इसी तरह कई ऐसी छोटी-मोटी कहानियां हैं, जो अमूल्य उपदेश ही नहीं देतीं, स्वतंत्रता व जीवन के मार्ग भी दर्शाती हैं।

तमिल के कहानी-क्षेत्र में भारती की देन क्या है? पहला यह है कि भारती ने सिर्फ साहित्यिक दृष्टि से कहानी नहीं लिखी। हो सकता है कि आधुनिक कहानी कला की कसौटी पर उनकी कहानियां खरी नहीं उतरेंगी लेकिन उनकी कहानियों का अपना विशिष्ट स्थान अवश्य रहता है। तात्कालीन राजनैतिक स्थिति को लोगों को समझाने में उनकी कहानियां सफल हुई हैं। 'कौओ का पार्लियामेंट' इसका प्रमाण है, जो भारती के समय के भारतीय कौंसिलों का मजाक उड़ाता है। भाषा की दृष्टि से भारती पर विचार करें। भारती के समय तमिल भाषा पंडितों की कैद में थी। भारती ने जैसे कविता की भाषा को सरल बनाया और उसे अनुभूति प्रधान बनाई, वैसे कहानी की भाषा को भी सरल बना दिया।

भारती की कहानी-कला की विशेषता उनकी अभिव्यक्ति कुशलता पर आधारित है। उनकी कहानियों का विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि उनकी कहानियों में कविता सा आनंद छिपा है तो अपूर्व कल्पना भी। भारती स्वभाव से सरल व स्पष्टवादी थे। इसलिए उनकी कहानियों में घुमाव-फिराव, छिपाव-दुराव आदि अवगुण नहीं दीखते। अपने मन में जो कुछ भी विचार उठते थे, उनको प्रभावात्मक ढंग से सरल भाषा में अपने समय की प्रचलित भाषा में प्रस्तुत किया। सिर्फ मनोरंजन के लिए उन्होंने कहानियां नहीं लिखीं। भारती की कहानियों में व्यंग्य की अद्‌भुत छटा दर्शनीय है। एक उदाहरण देखें : 'छह भागों में एक' कहानी में मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज की धार्मिक शिक्षा की खिल्ली उड़ायी गई है। क्रिश्चियन पादरी एक विचित्र जंतु है। जब वे यह साबित करते हैं कि हिंदू धर्म और सभ्यता पर भक्ति एवं श्रद्धा रखना मूर्खता है तो परोक्ष रूप से युवकों के मन में यह धारणा स्थापित करते हैं कि ईसाई धर्म भी अंधविश्वास पर आधारित है।

उनकी कहानियों की अंतःसलिला है - उनकी राष्ट्रीयता और देशोद्धार की भावना, जो भारती की कहानियों में पैठते हैं, उनको अवश्य कई सूक्तियां मिलेंगी। साहित्यिक आलोचना में जब एक

आलोचक समझता है कि उसने सब पहलुओं पर विचार करके पूर्णता की प्राप्ति कर ली, तब वह एक महान पाप करता है, जिसकी क्षमा नहीं होती। उपरोक्त तत्त्व को जाननेवाला यह निबंधकार कैसे साहस कर सकता है कि भारती की कहानियों का समग्र विवेचन कर लिया है?
जय भारती! जय भारती!

•••

निबंधकार भारती/एन. सुंदरम्

भारती के समकालीन निबंधकारों की श्रेणी में 'दामोदरम् पिल्लै', 'ऊ. वे. स्वामीनाथ अय्यर', 'ति. रू. वी. क.', 'मरे मलै अडिगल' आदि लेखकों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। महाकवि भारती के पूर्व अधिकतर निबंधों की रचना प्राचीन साहित्य के आधार पर ही हुई। सर्वप्रथम समाज, देश, स्वतंत्रता, स्त्रियों के अधिकार, अछूतोद्धार, भक्ति, दर्शन, कलाएं आदि विविध विषयों पर स्वतंत्र चिंतन करके निबंधों के माध्यम से जन साधारण को इस दिशा में विचारमंथन करने के लिए विवश करने के कार्य में साहसपूर्ण कदम उठाने वाले एकमात्र लेखक भारती ही रहे।

यह सच है कि भारती पहले कवि हैं और बाद में गद्य लेखक! भारती के ललित निबंधों में स्वच्छ विचार, समाज को दिशा प्रदान करना, भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप, क्रांतिकारी विचारधारा आदि प्रमुख हैं। निबंधों की भाषा जन-साधारण की है, संस्कृत शब्दावली से युक्त है। वे चलती व सरल भाषा में लिखकर रूढ़िग्रस्त पंडितों के लिए प्रश्न चिह्न के रूप में बनते रहे। 'ऊ. वे. स्वामीनाथ अय्यर', 'चिदंबरम् पिल्लै', 'मरे मलै अडिगल' आदि लेखक इस सरल शैली पर समझौता करने के लिए तैयार नहीं रहे पर भारती ने उन सब की उपेक्षा कर दी। वे भारतेंदु हरिश्चंद्र की तरह जनता के अति निकट पहुंचना चाहते थे। पर वे सजग रहे कि निबंध विचार प्रधान होना चाहिए।

सुब्रह्मण्य भारती बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। समाज और वातावरण की कोई भी अच्छाई व बुराई उनके भावुक हृदय पर सीधे प्रभाव डालती थी। भारती को सफल गद्य लेखक के रूप में उनके निबंधों के माध्यम से देख सकते हैं। स्वच्छ विचार समाज को मार्गदर्शन, भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप, क्रांतिकारी विचारधारा आदि हम भारती के ललित निबंधों में ही देख सकते हैं।

1909 से 1920 तक की अवधि में ही भारती के निबंध प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने 'स्वदेशमित्रन्', 'इंडिया' आदि पत्रिका के संपादक, सह-संपादक की हैसियत से, साथ ही स्वतंत्र लेखक की हैसियत से कई निबंध लिखे हैं। उनके उपलब्ध निबंधों को चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—आध्यात्मिक निबंध-27, कलाओं पर-27, स्त्री स्वतंत्रता-18, स्त्री शिक्षा व समाज पर आधारित-35, कुल निबंध-107।

आध्यात्मिक तत्त्वों से संबंधित निबंधों में हम भारती को शक्ति के उपासक के रूप में देखते हैं। भारती कहते हैं, ''तुम्हारी वंदनीय देवताओं में स्त्री रूप और कुछ नहीं हैं, वे सब तुम्हारी पत्नी, मां और बहन के ही प्रतिबिंब हैं।'' और एक स्थान पर वे कहते हैं, ''शिव तुम, शक्ति तुम्हारी पत्नी। विष्णु तुम लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी। ब्रह्मा तुम, सरस्वती तुम्हारी पत्नी।''

भारती का दृढ़ विचार है कि परमात्मा और पराशक्ति को अलग-अलग देखना गलत है। निर्गुण ब्रह्म को, सगुण बनाकर, स्त्री रूप में उपासना करना ही नवशक्ति मार्ग है। वहीं राम कृष्ण की मां काली है। चिदंबरम रहस्य पर भारती के विचार द्रष्टव्य हैं। अन्योक्ति के माध्यम से वे समझाते

हैं कि आसमान में विचरने वाले बाज पक्षी के सदृश विषय वासनाओं में फंसे बिना परमात्मा को प्राप्त करने के लिए ज्ञान चक्षुओं से देखो। वही स्वतंत्र चिंतन है, वहीं चिदंबरम है।

अपनी विचारधारा को प्रकट करते समय भारती प्रचलित संस्कृत शब्द तथा पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करने में कभी नहीं हिचकते। इस कारण मणिप्रवाल शैली नहीं बनी, परंतु मणिकांचन योग से सुंदर शैली बनी है। भारती का अटूट विश्वास है कि कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। उन्हें पुनर्जन्म पर विश्वास है। सहिष्णुता व धर्म के अन्य सिद्धांतों पर भारती अपनी श्रद्धा दिखाते हैं। वे ईसाई, इस्लाम, बौद्ध धर्मों के तत्त्वों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

वेद एवं पुराणों पर भारती के विचार ध्यान देने योग्य हैं। भारती कहते हैं–वेद, उपनिषद्, पुराण आदि के भावों का सभी राष्ट्र-भाषाओं में अनुवाद करना चाहिए। इस विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए अंत में कहते हैं–''हिंदुओं जागो, राजनीतिक फूट के शिकार मत हो जाओ। वेद तत्त्व को समझों, वही जीने का सही मार्ग है। भारती को अधिकांश लोग तमिल का उन्नायक मात्र समझते हैं। उनको संकुचित विचारधारा का चिंतक समझना भ्रामक है। तमिल की श्रीवृद्धि के साथ ही वे भारतीय कलाओं पर अपनी पूरी आस्था व श्रद्धा दिखाते हैं। 'पंचतंत्र' का उद्धरण देते हुए कहते हैं–''पिताजी का खोदा हुआ कुआं कहकर मूर्ख लोग नमकीन पानी का सेवन करते हैं। भारती के कहने का मतलब यह है कि प्राचीनता का अंधानुकरण है, उसमें अच्छाई दिखे, तो उसे अपनाना और स्वीकारना चाहिए। ध्यान व मंत्रों की शक्ति पर उन्हें अटूट कथोपकथनों आदि के माध्यम से समझाते हैं। भारती केरल, बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, आंध्र, कर्नाटक आदि राज्यों की संस्कृति व आचार अनुष्ठानों से परिचित हैं। उनकी उत्कृष्टता को भारती अपने निबंधों में समझाते हैं। भारती संगीत के पुजारी हैं। रस के मर्मज्ञ हैं। ताल-ज्ञान की जानकारी रखने वाले हैं। प्रायः सभी वाद्यों से परिचित हैं। संक्षेप में कहें तो भारती कला के मर्मज्ञ हैं। मंदिरों व मूर्ति-पूजा पर उन्हें पूरी श्रद्धा है। उनकी मान्यता है कि बस्ती की एकता मंदिरों से ही हो सकती है।

स्त्री के वे पक्षपाती हैं, स्त्री स्वतंत्रता के वे पुजारी हैं, विधवा-विवाह के समर्थक हैं। एक स्थान पर वे गांधीजी का भी खंडन करते हैं। पुरुषों के पुनर्विवाह पर वे अपने विचार को प्रकट करते हुए कहते हैं कि पुरुषों को पुनर्विवाह करने से रोकना गलत है। ऐसा करने पर वे नहीं मानेंगे। विधवा-विवाह के नाम पर पुरुष विधवाओं की संख्या बढ़ाना वे नहीं चाहते। इस पर गांधीजी की मान्यता को खंडन करते हुए कहते हैं कि स्त्री और पुरुषों को किसी भी उम्र में शादी करने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति पर उन्हें बहुत गर्व है। वे कहते हैं कि हमें भारतीय संस्कृति पर गर्व का अनुभव होना चाहिए। बाहर हम इसी संस्कृति के कारण ही पूजे जाते हैं। इस संस्कृति की रक्षा करना हमारा धर्म है। वर्णाश्रम धर्म पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि कर्म से ही आदमी उच्च या नीच बनता है। जन्म से कोई भी नीच नहीं बनता। हरिजनों के उद्धार के लिए भारती ने कई निबंध लिखे हैं। दहेज पर भारती के विचार अनुकरण योग्य है। वे पुरुषों से कहते हैं कि स्त्रियां तुम्हें धन देकर खरीदना चाहती हैं। तुम बिक्री के माल बन गए हो। यह तुम्हारे पौरुष पर कलंक है। दहेज पर भारती ने पुरुषों को ललकारा है। स्त्रियों से कहते हैं कि तुम ऐसे पुरुष से विवाह के

बंधन में कभी नहीं बँधो, जो भावी जीवन बिताने के लिए तुमसे धन की सहायता मांगता है। ऐसे पुरुषों से विवाह करने की अपेक्षा जीवन भर अविवाहित ही रहना अच्छा है।

भारती एकपत्नी-व्रत पर जोर देते हैं। वे साफ शब्दों में कहते हैं कि हरेक को अपने-अपने आचार अनुष्ठान का पालन करना चाहिए। तमिल के माध्यम से सिखाना ही वे उचित समझते हैं। वे अंग्रेजी से घृणा नहीं करते। अंग्रेजी को विदेशी भाषा के रूप में सीखने के वे पक्षपाती हैं, पर माध्यम की दृष्टि से देखें तो भारती मातृभाषा को ही इसके लिए उचित मानते हैं। भारती संस्कृत भाषा के प्रचार के पक्षपाती हैं। सबको संस्कृति सीखने के लिए आह्वान करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा पर भारती के विचार ध्यान देने योग्य हैं। वे कहते हैं भारत की शिक्षा, भारतीय संस्कृति पर आधारित होनी चाहिए। शिक्षा पर इस देश की संस्कृति की छाप होनी चाहिए। विदेशी-शिक्षा प्रणाली हमारे लिए हितकर नहीं है। जिस देश की शिक्षा संस्कृति पर आधारित न हो, वह देश श्मशान के सदृश है। भारतीय शिक्षा-पद्धति भारतीय संस्कृति के आधार पर होने से राष्ट्रीयता की भावना बढ़ेगी, तभी हरेक अपने को पूरे अर्थ में भारतीय समझेगा। इस प्रकार भारती सभी विषयों में महात्मा गांधी व रवींद्रनाथ ठाकुर के अग्रणी रहे। स्वतंत्रता की विचारधारा के प्रवर्तक के रूप में भारती हमारे मार्गदर्शक रहे हैं।

•••

भारती के गद्य साहित्य से चुने रत्न/रमा लक्ष्मीनरसिंहन्

सुब्रह्मण्य भारती साहित्य की हर विद्या–कहानी, निबंध, अनुवाद, समीक्षा तथा पदों के रचयिता रहे। लघु कहानी में कर्मयोगी की प्रवृत्ति को दिखाया है कि वह कोई काम अधूरा नहीं छोड़ता। यही सोचना है कि अपने लिए न सही उससे दूसरों को अवश्य लाभ हो सकता है। 'अंधकार' में एक राजा द्वारा मां के दिए मंत्र 'करोगी' 'करोगी' का पालन कर कैद गुफा में से बच निकलने का वृत्तांत है। यहां मातृभक्ति का उल्लेख है। 'उज्जैनी' तथा 'मिर्ची फल सन्यासी' में स्त्री जाति के उत्थान का संदेश है। उनके निबंध को पांच श्रेणियों में रखा जाता–

1. दर्शन, 2. कामधेनु, 3. सत्य, 4. ॐ शक्ति और 5. महिलाएं।

दर्शन : भक्ति की पूर्णता का वर्णन, नर-नारी का स्थान स्पष्ट किया गया है। मनुष्य को पशुत्व की स्थिति से ऊपर उठाकर दैवी स्थिति तक ले जाने के लिए निर्मित दिव्य पाठशालाएं हैं– मंदिर। पाखंडी, पुजारियों तथा धर्म के नाम पर कलह पैदा कर फूट डालने की कोशिश करने वाले अंधविश्वास के प्रभाव में रहनेवाले ऐसे व्यक्तियों से सतर्क रहने का संदेश दे रहे हैं। मनुष्य जब तक शक्तिहीन, असहाय लोगों पर शोषण करेगा तब तक कलियुग चलेगा। पूर्ण इच्छा के साथ ध्यान करते हुए मन में उठनेवाले नकारात्मक चिंतन को दूर रखने पर इष्ट सिद्धि अवश्य साध्य है, शिक्षित वर्ग भी शकुन, नक्षर, काल, समय देखकर अंधविश्वास में डूबे हैं जिसको तोड़ने की आवश्यकता है। तभी प्रगति के पथ पर आगे बढ़ सकते हैं।

कामधेनु : जीवन को समृद्ध बनाने के लिए आवश्यक है–दृढ़ विश्वास, धर्म का पालन, सही मार्ग पर चलना आदि। यही गुण कामधेनु की भांति जीवन में वांछित फल देता है। इसको समझने के लिए यहां कुछ उदाहरण भी दिया है। शिवाजी के विश्वास से बना महाराष्ट्र। रामानुज के प्रयास से स्थापित हुआ वैष्णव संप्रदाय। यहूदियों के ईसामसीह को सूली पर चढ़ाने के बावजूद

पनपा ईसाई धर्म। मक्का से मदीना भागकर लुका-छिपी करते हजरत मोहम्मद ने इस्लाम धर्म को स्थापित किया।

सत्य : इतिहास जिस सत्य का साक्षी है उसी का उल्लेख भारती यहां कर रहे हैं। दुष्यंत महाराज के पुत्र भरत ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक एक ही छत्रछाया में राज्य का निर्माण किया जो कि भारत देश है। आस-पास की जलधाराएं गंगा में मिलकर गंगा नदी ही कहलाती है। भारत देश में आकर बसने के बाद पीढ़ी दर पीढ़ी रहनेवाले ईसाई, फारसी, मुसलमान, जो भी अपनी इष्ट देवता की उपासना करने के बावजूद भारतभूमि में जन्म लेकर इसी की शरण में रहनेवाले हैं तो उनकी गणना भारतीय जाति के अंतर्गत करना है, इसको हम तोड़ नहीं सकते।

ॐ शक्ति : इस खंड में उद्यम की विशेषता, पौराणिक काल में रचित वेद, उपनिषद् पुराण आदि का आज प्रचलन में रहनेवाली सरल भाषा में अनुवाद करने की आवश्यकता पर जिक्र किया है। एक साथ मिलकर कृषि ठीक प्रकार से कर अन्न बनाने के उपाय को ढूंढने के बजाय ईर्ष्या, स्वार्थ तथा अनाड़ीपन से युक्त व्यक्ति एक-दूसरे के गले काटने का मार्ग ढूंढ़ रहा है। ईसाई, इस्लाम व बौद्ध धर्मों से भी उदाहरण देते हैं।

नारी : इस भाग में नारी के साथ हो रहा शोषण, विश्व में नारी की स्थिति, तामिलनाडु में स्त्री के विवाह संबंधी नियमों में परिवर्तन लाना, विधवाओं के पुनर्विवाह के पक्ष में कहना तथा नारी के उत्थान के लिए उठानेवाले कदमों का उल्लेख है।

अनुवाद : 'भारती को अंग्रेजी भाषा में भी समान अधिकार था। वैदिक स्तृति, श्रीमद्भगवद् गीता तथा पतंजलि योग सूत्र का अनुवाद किया। नम्माल्वार के तमिल स्तुति का अंग्रेजी अनुवाद किया। कुलसेकर आळवार, चेराराजा व संत के तमिल स्तुति का अंग्रेजी में अनुवाद किया।

समीक्षा : अगमे पुरम तथा कांग्रेस में भाषण की समीक्षा की।

लेख : उन्होंने तमिल तथा अंग्रेजी के लेख (तमिल अनुवाद के साथ) दिए हैं, उनके द्वारा लिखे अंग्रेजी लेख राष्ट्रीय चिंतन में शामिल रहे हैं। इससे अंग्रेजी भाषा में उनके पांडित्य का आभास होता है।

□

सुब्रह्मण्य भारती की तीन कविताएं

अनुवाद : एच. बालसुब्रह्मण्यम

काणि* भर भूमि चाहिए

काणि भर भूमि चाहिए
मां पराशक्ति! मुझे
काणि भर भूमि चाहिए।

इस काणि-खंड के मध्य में
बना दो मां, मेरे लिए एक रंग महल
सुभग स्तंभ, सुरम्य अटारियों से युक्त
प्रासाद वह चमके ज्योत्स्ना सम।

काणि-खंड में कूप के पार्श्व में हो
मधुर जल पूरित नारियल के दसेक वृक्ष
जिनके पत्तों से छनकर बिखरे
मुक्ता-बिंदु सम चांदनी धरा पर
जहां से सुनाई दे कानों पर
कोयलों का सांद्र मधुर कल-कूजन
बहता रहे मलयानिल मन में मोद भरते हुए।

मिलकर गाने के लिए चाहिए इक संगिनी!
हम दोनों की प्रेम-केलि से
रचित हो मधुर-मधुर कविताएं
उस निबिड़ वनानी से
मां, चाहिए तेरा पहरा भी;

वर दो मां, पालन करूं मैं
पूरे जगतीतल का
अपनी कवित्व-शक्ति से।
(*काणि - भूखंड का एक माप-लगभग डेढ़ एकड़)

दया दिखाओ शत्रु पर भी

दया दिखाओ शत्रु पर भी, भले हृदय - तुम
दया दिखाओ शत्रु पर भी।

सघन धुएं के मध्य में रहती है आग
देखा हमने इसे जगत् में ओ भले हृदय!
देखा हमने इसे जगत् में
घोर शत्रुता के मध्य में, देव रहता है प्रेम रूप में
देव रहता है प्रेम रूप में, ओ भले हृदय!
देव रहता है प्रेम रूप में।

सीपियों के मध्य में पलता है उज्ज्वल मोती
ना जानते हो यह बात तुम, भले हृदय!
कूड़े के मध्य में पनपती है माधवी लता
और फूलती है प्रचुर मात्रा में, ओ भले हृदय!

संतुष्ट मन में जब घुस जाता है असत्य,
क्या वह मन शांत रह सकता है, भले हृदय!
विशुद्ध मधु में मिल जाए बूंद भर विष,
क्या वह कहलाएगा केवल मधु, ओ भले हृदय!

समृद्ध जीवन की योजना के बाद,
अवनाती का विचार करना,
उचित होगा क्या, ओ भले हृदय!
दूसरों का अपकर्ष सोचना स्वयं नष्ट होना है,
क्या तुमने सुना नहीं इसे, ओ भले हृदय!

युद्ध के लिए उद्यत होकर आए कौरवों की तरह
आया था वह भी भाग लेने के लिए युद्ध में,

कान्ह वह खड़ा रहा, हाथ में चाबुक के संग
अर्जुन के रथ पर, है न भले हृदय!

खाने के लिए लपकते बाघ पर भी
विजय पा सकते हो प्रेम से, ओ भले हृदय!
जब मां पराशक्ति प्रकट होती है व्याघ्र रूप में
नमन करो उसे, ओ भले हृदय, नमन करो उसे।

मैं

गगन में विचरता खगवृंद हूं मैं
धरती पर घूम रहे सारे पशु हूं मैं
वन में झूम रहे तरु समूह हूं मैं
पवन, सरिता सागर भी हूं मैं।

विस्तृत नभ में चमकते तारे हूं मैं
'दिग्दिगंत के पार व्याप्त महाशून्य हूं मैं
मिट्टी में रेंग रहे सारे कीट हूं मैं
जलाशयों के समस्त जीव हूं मैं।

कंबन से विरचित काव्य-संकुल हूं मैं
चितेरों से चित्रित सारे रूप हूं मैं
विशाल प्रकोष्ठ, दालान, अटारियां हूं मैं
उत्तुंग गोपुर के शिखर हूं मैं।

रमणियों की गीत माधुरी हूं मैं
सब कहीं उमगता आनंद हूं मैं
तलछट के लोगों के छल-प्रपंच हूं मैं
सबकी परीक्षा करते दुःख-दर्द हूं मैं।

कोटि कोटि मंत्रों का द्रष्टा हूं मैं
गतिशील वस्तुओं में संचलन हूं मैं
कोटि-कोटि तंत्रों का नियंता हूं मैं
वेदों और शास्त्रों का रचयिता हूं मैं।

कोटि-कोटि ब्रह्मांडों का सर्जक हूं मैं
ग्रहकक्ष में उनका अचूक चालक हूं मैं
हितकर अनेक शक्तियों की ऊर्जा हूं मैं
इन सभी का आदि कारण भी हूं मैं।

'मैं' नामक मिथ्या का परिचालक हूं मैं
ज्ञान रूपी गगन को मापनेवाला हूं मैं
सभी वस्तुओं के आर-पार चलता हूं मैं
चेतना की आदि ज्योति हूं मैं।

□

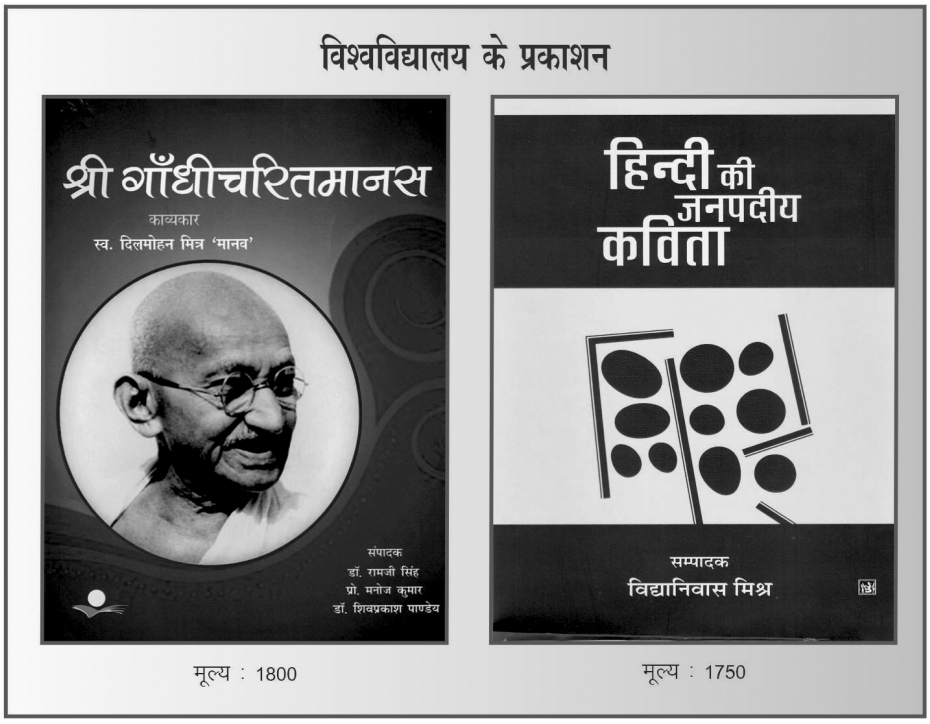

भारती का बाल साहित्य

पूर्णिमा श्रीनिवासन

साहित्य मानव के विचारों की अभिव्यक्ति का एक प्रमुख माध्यम है। साहित्य अपने ज्ञान के अमृत से समाज तथा संस्कृति दोनों को सार्थक दिशा देने का एक सशक्त पर्याय है। साहित्य के द्वारा मानव की आत्मा व बुद्धि निर्मल होती है।

बाल साहित्य शिक्षाप्रद साहित्य है, जिसका लेखन बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर किया जाया है। बाल साहित्य में रोचक, शिक्षाप्रद बाल कहानियां, बाल गीत एवं कविताएं शामिल हैं। प्रस्तुत लेख में राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती के बाल साहित्य के बारे में प्रकाश डालने का लघु प्रयास किया गया है।

तमिल भाषा में बाल साहित्य :

तमिल भाषा में बाल साहित्य बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। 'कुरुन्तोगै' नामक संघ साहित्य, 'सिरुक्कुल' आदि में बच्चों के लिए अथवा बच्चों द्वारा प्राप्त सुख के बारे में लिखा गया है। भक्ति साहित्य में, अलवारों व नयनारों ने भगवान को अपने बच्चे के रूप में मानकर गीत लिखे हैं।

'पिल्लै तमिल' नामक साहित्य में, मात्र बच्चों के लिए गीत लिखने की प्रकृति प्रारंभ हुई। इसके बाद 16वीं सदी में औवयार नामक कवयित्री ने सरल, बोध-गम्य भाषा शैली में 'आत्तिच्चुडी' (नीति परक वाक्यांश) और 'कोन्ड्रै वेन्दन' (नीति परक वाक्य) लिखीं।

इस भांति तमिल में बाल साहित्य का इतिहास संघ काल से ही शुरू हो गया। अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप 20वीं सदी में अन्य भारतीय भाषाओं की भांति, तमिल भाषा में भी पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा। इस वजह से उपन्यास, निबंध, नई कविता, गद्य कविता आदि कई साहित्य विधाओं के साथ-साथ 'बाल साहित्य' भी अलग विधा के रूप में विकसित हुआ। तब से आज तक इसका विकास निरंतर गतिशील है।

सन् 1901 में कविमणि देशिय विनायगम् पिल्लै नामक कवि ने 'मलरूम मालयुम' नामक बाल गीत कविता लिखी। सन् 1913 में कविवर सुब्रह्मण्य भारती ने 'पुदिय अत्तिच्चूडि' (नवीन नीतिपरक वाक्यांश) तथा 1915 में 'पाप्पा पाट्ट' (बाल गीत कविता) की रचना की। च. मेय्यप्पन ने 'अरिवियल

आत्तिच्चूडि' रे. मुन्नु गणेसन ने 'मुत्तुच्चूडि' और कवि सो.म. इलवरसु ने 'नीदिच्चूडि' लिखे हैं।

बाल कविता साहित्य में कविमणि देशिय विनायगम पिल्लै, सुब्रह्मण्य भारती, भारती दासन, मणिमंगलम तिरुनावुक्करसु, एन.वी. वेणुगोपाल पिल्लै, अल. वल्लियप्प आदि कवियो के नाम उल्लेखनीय हैं।

तमिल बाल साहित्य को भारती की देन :

राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती ने साहित्य की किसी भी विधा को नहीं छोड़ा, किंतु बाल साहित्य में उनकी लेखनी का चमत्कार असाधारण है। उन्होंने अपनी कई रचनाओं में नीति परक विचारों को व्यक्त किया है। उनकी 'पुदिय अत्तिच्चुड़ि' (नीति परक वाक्यांश) तथा 'पाप्पा पाट्ड' (बाल गीत कविता) नामक रचना बाल साहित्य के अंतर्गत गिनी जाती है। विशेषतः 'पाप्पा पाट्ड' प्रख्यात एवं लोकप्रिय है। यह रचना सरल, बोधगम्य भाषा, गेयता, चित्रात्मकता, प्रभावोत्पादकता, नीति, समसामायिक समस्याएं आदि से भरी हुई है।

नन्हें मन में हमारी भाषा, संस्कृति नैतिक मूल्य, देशभक्ति, विश्वबंधुत्व, आत्म विश्वास आदि गुणों को संवारने में ये गीत सफल एवं सक्षम हैं।

इस लेख में 'पाप्पा पाट्ड' एवं 'पुदिय आत्तिच्चूडि' का विश्लेषण निम्न बिंदुओं के आधार पर करने का प्रयास किया गया है–

देशभक्ति : सुब्रह्मण्य भारती सदैव स्वतंत्र भारत की कल्पना करते हैं। वे अपने देश को हर हाल में स्वतंत्र देखना चाहते हैं। अतः इसका प्रभाव उनके 'पुदिय आत्तिच्चूडि' एवं 'पाप्पा पाट्ड' में भी झलकता है।

नन्हे बच्चे के दिल व दिमाग नाजुक, स्वच्छ एवं साफ होने के कारण अच्छे संस्कारों एवं गुणों रूपी बीज को बोने का सही स्थान मानते हैं। अतः वे बच्चों से यह कहना चाहते हैं कि देश के सुधार एवं विकास के लिए देशभक्ति की भावना आवश्यक है। यही भावना देश के लोगों को एक साथ लाने में मदद करती है। उन्हें प्रेम और हर्ष के साथ-साथ एक-दूसरे की देखभाल करने की खुशी का अनुभव कराती है।

देश के लिए त्याग की भावना, मनुष्य को उत्कर्ष के शिखर पर पहुंचाती है। ''वह हृदय नहीं पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं''–यही कवि का मानना है।

अपने देश, मातृभूमि की रक्षा करना एवं पूजा करना प्रत्येक प्रजा का कर्तव्य है, कवि के शब्दों में–

''दैसत्तै कात्तल सेय'' (देश की रक्षा करो)
''भूमि इषंदिडेल'' (भूमि, देश मत खोना)
''सरित्तिरम् तेरच्चि कोक'' (इतिहास की जानकारी रखो)[1]

वे बच्चों से कहते हैं–

तमिल तिरू नाडु तन्नै
पेट्र तायेन्ड कुबिडडि पाप्पा।

(अर्थात् तमिलनाडु को अपनी मां समझकर उसकी वंदना करो)

''आन्ड्रोरगल देशमडि पाप्पा

× × ×

भेद मिल्ला हिंदुस्तानम् - इदै
देयवकेन्ड्रु कुंबिडडि पाप्पा''[2]

(अर्थात् यह अपने पूर्वज का देश है, इस हिंदुस्तान को भगवान मानकर वंदन करो)

वे कहते हैं कि, अपने देश के किसी भी भाग को खोना मत। उक्त कविता का यही अर्थ निकलता है कि क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, संप्रदायवाद आदि अराजक तत्त्व, राष्ट्रीय एकता में सबसे बड़ी बाधा आने पर वह जनता को कमजोर बनाती है। अतः इन अवरोधों को, बुराइयों को दूर करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है।

यह तभी संभव है, जब हम इन नन्हीं कलियों के हृदय को देशभक्ति रूपी पानी से सिंचित करें। तभी वे भावी जीवन में एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में, राष्ट्र हित एवं विकास के लिए एक दूसरे के कंधे से कंधा मिलाकर, भारत को पुनः सोने की चिड़िया बनाने में सक्षम होंगे। अपने शत्रुओं का विध्वंस करके सशक्त भारत बनाएंगे। भावी पीढ़ी विश्व-शांति के मार्ग पर अग्रसर होंगे।

आत्म विश्वास

''जहां चाह है, वहां राह''

''मन के हारे हार, मन के जीते जीते''

यही आत्म विश्वास की परिभाषा है। चाहे आप जितने ही विद्वान् या धनवान क्यों न हो, यदि आप में आत्म विश्वास नहीं है तो यह विद्या, धन-दौलत किसी भी काम की नहीं।

अतः यह बड़ों का चरम कर्तव्य है कि बाल हृदय में, आत्म विश्वास रूपी बीज बोएं ताकि वे अपने भावी जीवन में आनेवाले किसी भी विपत्ति का डटकर सामना करेंगे, उसमें विजय हासिल करेंगे। उन्हें यह समझाएं कि मात्र रोने से या दुःखी रहने से कुछ फायदा नहीं। इसी को कवि कहते हैं–

''रोदनम नीक्कु'' (रोना मत)
''निनैप्पदु मुडियुम्'' (धीरज रखो) (सकारात्मक सोचो)
''तुन्बम् मरंदिडु'' (दुःख को भूलो)
''सुमयिनुक्कु इकैत्तिडेल''(भार से मत डरो)
''वीरियम् पेरुक्कु'' (वीरता को अपनाओ)
''सेयवदै तुणिंदु सेय'' (धैर्य से कर्म करो)

''सिदया नेंजु कोळ'' (धैर्य धारण करो)

''एरू पोल नड'' (सर उठाके जियो)

''नुनि अलवु सेल'' (सतर्क रहना)

''तोलवियिल कलंगेल'' (हिम्मत मत हारो)[3]

अर्थात्–किसी भी हालात में आत्म विश्वास मत त्याग दो, वीरता का पोषण करो, असफलता को दूर भागाओ।

''तेम्बि अषुम कुषन्दै नोन्डि-नी
दिडम् कोण्डु पोराडु पाप्पा''

× × ×

पादगम सेयबवरै कण्डाल-नाम
भयग्कोळ्ळल आगादु पाप्पा

× × ×

तुन्बम् नेरूंडि वन्द बोदुम पाप्पा''[4]

आत्मविश्वास वास्तव में एक मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति है। आत्मविश्वास से ही विचारों की स्वाधीनता प्राप्त होती है। इसकी सहायता से महान कार्यों के संपादन में सहज ही सफलता प्राप्त होती है। अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। यही सफलता की कुंजी है।

आत्मविश्वास से हमारा मन मजबूत एवं खुश रहता है तथा हमारी क्षमता बढ़ती है। वास्तव में हमारी शिक्षा नीति अथवा शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मविश्वास प्रदान करना ही है। एकल परिवार होने के कारण आजकल के बच्चे छोटी-सी सफलता को भी स्वीकारने में असमर्थ हैं। विशेषतः परीक्षाफल घोषित करने के बाद, बच्चों में जो उदासी और हलचल मचती है, डर एवं खुदकुशी होती है, इन सबका मूल कारण आत्मविश्वास का अभाव है।

आत्मविश्वास मानव जीवन की रीढ़ की हड्डी है। बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ाने की जिम्मेदारी बड़ों की है। इसीलिए कवि कहते हैं कि किसी भी हालत में आत्मविश्वास की सहायता से सर उठाकर जिएं, बुरे का सामना डटकर करें। यही जीने का तरीका है। इसी से सफलता हासिल कर सकते हैं।

हमारी भाषा

भाषा मानव मात्र की विशेष संपत्ति है।

''कोस-कोस पर पानी बदले,
बीस-कोस पर बानी'', भाषा हमारी संस्कृति व सभ्यता का प्रतीक है, पहचान है। तमिल परंपरा की यह मान्यता रही है कि–

''स्वदेश और स्व-भाषा हमारी दो आंखें हैं।'' अतः इसका पालन-पोषण सतर्कता व सजगता से करना अनिवार्य है।

मातृभूमि और मातृभाषा, सभ्य समाज में, मां का स्थान ग्रहण करती है। इसकी महत्ता अनिर्वचनीय है। अपरिचित लोगों को आपस में जोड़ने की क्षमता रखती है।

मानव भाषा के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है। किसी व्यक्ति का संस्कार, उनकी भाषा से व्यक्त होता है। भाषा का विकास निरंतर होता है, तभी उसे जीवंत माना जाता है। भाषा का विकास सभ्यता का विकास होता है। भाषा समाज के विकास की आधारशिला है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति प्राप्त करने में भाषा अहम भूमिका निभाती है।

भाषा से स्मृति, मनन शक्ति और विचार शक्ति का विकास होता है। भाषा के माध्यम से ही पुरानी पीढ़ी, नई पीढ़ी को अपना समस्त ज्ञान विरासत के रूप में सौंपती हैं। यही कारण है कि प्रत्येक पीढ़ी, अपने विरासत में अपने भाव-विचार, अनुभव एवं आकांक्षाएं अगली पीढ़ी को सौंपते हैं। इस प्रकार मानव संस्कार आगे बढ़ता है।

अतः अपनी भाषा के प्रति श्रद्धा, सम्मान, भक्ति और गौरव की भावना रखनी चाहिए। अपनी भाषा के विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील होना चाहिए। इसी को कवि अपने शब्दों में यूं कहते हैं–

''अमिषदिनिल इनियदडि पाप्पा

× × ×

सोल्लि उयर्वु तमिल सोल्ले-अदै

तोषुदु पडित्तिडडि पाप्पा''[5]

अर्थात् तमिल की ध्वनि, अमृत से भी मीठी एवं श्रेष्ठ है। इसकी पूजा करनी चाहिए। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि भारती मात्र तमिल अथवा संस्कृत भाषा में ही दक्ष नहीं हैं, वे हिंदी, फ्रेंच, तेलुगु एवं अरबी भाषा के भी विद्वान हैं।

तभी वे कहते हैं कि तमिल भाषा, सबसे मीठी एवं श्रेष्ठ होती है। यह गर्व की बात है कि दुनिया की सबसे-पुरानी भाषा, द्रविड़ भाषाओं की जननी है, जो जीवंत है वह हमारी तमिल भाषा है। यह भारत का गौरव है, भारत की अमूल्य निधि है। इसीलिए भारती कहते हैं कि अपनी भाषा, तमिल की आराधना करें।

वे अपनी भाषा में दक्ष होने की वजह से अपने मन की बात सरल, सहज, आम जनता के शब्दों में अभिव्यक्त करने में सफल रहे। आज तमिल भाषा में ही नहीं समग्र विश्व में भी इनका नाम विख्यात है।

नैतिक मूल्य

नैतिकता से सभ्य समाज का निर्माण किया जा सकता है। यह मानव जीवन की अनमोल वस्तु है। नैतिक मूल्यों की सहायता से उचित-अनुचित को परख सकते हैं। अच्छे-बुरे का बोध प्राप्त होता है। वास्तव में नैतिकता अंतरात्मा की आवाज है। नैतिक मूल्यों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। यह मूल्य, परिवर्तनशील हैं। देश, काल के अनुरूप बदलती है।

नन्हे बच्चे, जो कच्ची मिट्टी के समान हैं, उन्हें नैतिक मूल्य नामक पानी की सहायता से सही आकार में ढ़ालना अनिवार्य है। नैतिक मूल्य सामाजिक नियंत्रण, रीति-रिवाज, रिश्ते-नाते आदि की जड़ है। किसी भी सभ्य समाज की नींव है।

सदैव सत्य बोलना, भेद-भाव को भूलना, संयम रखना, लोभ-लालच, धोखेबाजी, अहंकार, चुगली करना, दुष्टों को देखकर डर जाना आदि बुराई को त्यागना, इसी को भारती बच्चों से यूं कहते हैं–

''ईगै तिरन'' (दान करो)
''आण्मै तवरेल'' (दक्ष बनो)
''एण्णुवदु उयर्वु'' (उच्च लक्ष्य रखो)
''ऐम्पोरि आट्टिच सेय'' (इंद्रियों को काबू में रखो)
''केडुप्पदु सोर्वु'' (बुराई मत करो)
''ओयदल ओषि'' (आराम मत करो)
''मानम पोट्रू'' (स्वाभिमान रहे)
''नन्रू करूदु'' (सकारात्मक सोचो)
''यावरैयुम मदित्तु वाष'' (सब का आदर करो)[6]

''पोय सोल्लक कूडादु पप्पा
× × ×
सोम्बल मिगग्केडुदि पाप्पा-नी
डिडम कोण्डु पोराडु पाप्पा''
× × ×
पादनम सेयबवरै कण्डाल
× × ×
अवर मुगत्तिल उमिष्न्दु विडु पाप्पा''[7]

नैतिकता के पीछे सामाजिक शक्ति मानव कल्याण का श्रेष्ठ साधन है। असंतोष, अलगाव, उपद्रव, असमानता, अवसाद, संघर्ष अनिश्चितता, प्रतिस्पर्धा आदि से मुक्ति पाने के लिए नैतिक मूल्य को अपनाना लाभप्रद सिद्ध होता है।

यदि बच्चे के परिवेश में नैतिक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में हैं, तो उनका जीवन उज्ज्वल होगा। यह व्यक्ति के सर्वांगीण विकास एवं कल्याण में विशेष योगदान प्रदान करता है। नैतिक मूल्यों से मानव अपने उत्तरदायित्व के बारे में सतर्क रहता है एवं उसे संपूर्ण रूप से निभाता है। सभी से प्रेम पूर्ण व्यवहार अपनाता है।

प्रकृति

प्रकृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है। मानव, प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट देन है। डार्विन के 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' (Survival of the fittest) विकासवाद सिद्धांत के अनुसार, समय व परिवेश के गतिशील परिवर्तन के फलस्वरूप एक कोशिकीय जीव से मानव तक की यात्रा सफल रही।

डरना, भागना, छल-कपट, मारना, अपहरण करना, चोरी करना, शोषण करना, औरों पर अधिकार जमाना आदि मानव की जो प्रवृत्ति है, वह वास्तव में पशु-पक्षी, जानवर रूपी अपने पूर्वजों की देन है। मानव अपने सतत् प्रयास से, अपने को परिष्कृत कर जीवन में आगे बढ़ा।

अतः विश्व में व्याप्त स्थावर जंगम प्रकृति का अंग है। वे मानव के पूर्वज हैं। यही कारण है कि हमारे हिंदू धर्म में अपने किसी भी आराध्य का वाहन जानवर ही होता है। उसी भांति प्रत्येक मंदिर में एक स्थल वृक्ष भी होता है। इसका यही अर्थ है कि पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम, सभी स्तुत्य एवं वंदनीय हैं। उसकी देखभाल एवं रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है।

वातावरण में सुख-शांति एवं स्वच्छता प्रदान करने में पेड़-पौधों की भूमिका अमूल्य है। ताजा कोंपल, हंसते फूल, हिलती डाली और टहनी, ठंडी हवा, ये सब हम से बातें करते हैं। हमें ईश्वर का संदेश सदा-सर्वदा देते रहते हैं। परंतु हम जैसे मंदबुद्धि, संकीर्ण विचारवाले मानव उसे समझने में असमर्थ एवं असफल रहते हैं।

प्रकृति ईश्वरीय देन है, संपत्ति है। यदि हम उसकी रक्षा करेंगे तो वह हमारी रक्षा करेगी। कवि के शब्दों में :

''न्याइरू पोट्रू'' (सूर्य की पूजा करो)[8]

प्रकृति हमें सुख शांति प्रदान करती है, पालतू जानवर मानव की सेवा करते हैं, गाय से दूध मिलता है, कुत्ता घर की रक्षा करता है, घोड़ा वाहन का भार ढ़ोता है। अतः हमें उनकी रक्षा एवं सहयोग करना चाहिए। इसी को कवि बच्चों से कहते हैं–

''चिन्नज़्चिरू कुरूवि मोले - नी''[9]

''वप्पप् परवै गलै कण्डु - नी

× × ×

आदरिक्क वेणुमडि पाप्पा''[10]

स्वास्थ्य

''पहला सुख निरोगी काया'' (Healthy mind in a healthy body)

'शरीरम् देव मंदिरम्', 'शरीरमाधं खलु धर्म साधनम्' आदि कथन मनुष्य के स्वास्थ्य की महत्ता को घोषित करता है। विशेषतः कोरोना पीड़ित इस संदर्भ में यह अत्यधिक प्रासंगिक है।

हमारे पास ढेर सारी धन-दौलत हैं, पर उसका मजा लेने में यदि हमारा शरीर, सेहत हमारा साथ नहीं देती तो उस धन-दौलत से क्या फायदा है?

मात्र सुख भोगने के लिए ही नहीं, अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जीवन को आगे बढ़ाने के लिए भी स्वस्थ रहना अनिवार्य है। हमारा शरीर दृढ़ और वज्र होने से ही हम अपने शत्रुओं से अपने देश की रक्षा कर सकते हैं। अपने परिवार, बंधु और देश की देखभाल कर सकते हैं। इसीलिए भारती बच्चों से कहते हैं–

''उडलिनै उरूदि सेय'' (शरीर दृढ़ रखो)
''औडदम कुरै'' (औषध का सेवन घटाओ)
''मूप्पुक्कु इडम कोडेल'' (बुढ़ापा से बचो)
''यौवनम् कात्तल सेय'' (यौवनावस्था को बरकरार रखो)[11]

स्वस्थ शरीर, स्वस्थ्य विचार का स्रोत है। स्वास्थ्य का प्रभाव क्रियाशीलता पर पड़ता है। इसीलिए कवि कहते हैं कि सेहत का ख्याल रखना और दवाई लेने की परिस्थिति से बचना। युवा की तरह सदैव क्रियाशील रहने से बुढ़ापा को लात मार सकते हैं। ध्यान-तप करने से दिमाग शांत रहता है। हम चुस्त-दुरूस्त रहेंगे तो सब के दिल आसानी से जीत लेंगे। स्वस्थ दिमाग में ही सकारात्मक विचार का उद्भव एवं संचार होता है। आलसीपन दूर हो जाता है।

लाखों में कमाकर, करोड़ों में इलाज करने से क्या लाभ? अपने सेहत की रक्षा के लिए नियमित जीवन शैली, व्यायाम, खान-पान, आराम, सकारात्मक सोच और ईश्वरीय भक्ति, पूजा-पाठ का पालन अनिवार्य है।

अतः कविवर इसी सुनियोजित जीवन शैली की शिक्षा को अपनाने के लिए बच्चों से अपने शब्दों में यूं कहते हैं–

''ओडि विळैयाडु पाप्पा-नी
ओयां देरूक्कलागादु पाप्पा
× × ×
कालै एषुन्दकड़न पडिप्पु पिन्पु
× × ×
येन्रू वषक्कप्पडिल्सि कोळकु पाप्पा''[12]

विश्व बंधुत्व

यह समय की मांग है। विश्वभर में व्याप्त असुरक्षा अनिश्चितता को लात मारने के लिए विश्वबंधुत्व रूपी अंकुश की सख्त जरूरत है।

समता की भावना, विश्वजन को अपने भाई-बहन मानना ही विश्वबंधुत्व की आधारशिला है। अर्थात् 'वसुधैव कुटुंबकम्' की धारणा है।

तमिल परंपरा इसी को 'युदुम ऊरे यावरूम केळिर' तथा 'ओन्ड्रे कुलम्, ओरूवने देवन' कहती है, अर्थात् ''समग्र विश्व अपना है, सभी अपने मित्र-बंधु हैं।'' तथा ''एक ही कुल है, एक ही ईश्वर है।''

इस वैश्विक सामाजिक दृष्टिकोण को अपनाएं तो आपसी भेद-भाव, वैर-भाव, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद अलगाववाद, भाषावाद, सांप्रदायिकता आदि कुंठित संकीर्ण भाव से बच सकते हैं। सांसारिक राग-द्वेष, लोभ-लालच, आपा-धापी, तनाव, कुंठा आदि पतनशील प्रवृत्तियों को त्यागें और उदार चिंतन को अपनाएं तो विश्वशांति का कुंज बन जाएगा।

भारती यही पक्ष लेते हैं कि जाति नाम की कोई वस्तु नहीं है। सब समान हैं, प्रेम पूर्ण व्यवहार करने वाले ही श्रेष्ठ हैं। ऊंच-नीच का भेदभाव वास्तव में पाप रूपी नरक को खोलता है। भावी भारत का यह स्वच्छ चिंतन संवारने का आह्वान कवि यूं करते हैं–

''जादिगल इल्लैयडि पाप्पा-कुल

× × ×

निरय उडयवरकळ मेलोर''[13]

वे यह भी कहते हैं कि एकता में बल है, अतः साथ रहना व साथ खेलना है। कवि के शब्दों में–

''कूडि तोषि़ल सेय'' (साथ मिलकर काम करो)

''ओट्रूमै वालिमयाम'' (एकता में बल है)[14]

''कूडि विलैयाडु पाप्पा''[15]

अतः सभी धर्म, जाति, देश, संस्कृति आदि को सहिष्णुता एवं संयम भाव से देखना, अपनापन एवं आत्मीयता से सब के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना, समृद्ध, उत्कृष्ट एवं सुखी-शांतिमय जीवन की बुनियाद है।

हमें अपने नन्हें बच्चों के दिलो-दिमाग में यही बीज बोना है कि एकता में बल है, वही सफलता का राज है। उन्हें यह समझाना है कि भारत में व्याप्त विभिन्न भाषा, धर्म, संस्कृति, भौगोलिक असमानता आदि तमाम भेदभाव के बावजूद हम सब में भारतीयता की भावना अक्षुण्ण है, अर्थात् हम भारतीय, अनेकता में एकता को निभाते हैं। इसी कारण हम मजबूत देश की नींव डाल सकते हैं।

निष्कर्षत : भारती की कविताओं से हम जान सकते हैं कि विश्वबंधुत्व एवं देशभक्ति की भावना ही उनके प्राण हैं। वे बच्चों के मन में वे ही बीज बोना चाहते हैं, जिससे भावी नागरिक के रूप में अपने आपको सफल एवं श्रेष्ठ सिद्ध कर पाएंगे। आज वे हमारे बीच में नहीं हैं, तो भी हम देखते हैं कि आज की युवा पीढ़ी उनके सपनों को साकार कर रही हैं।

संदर्भ-सूची :

1. भारती, पुदिय अत्तिच्चूडि. भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 210
2. भारती, पाप्पा पाट्ड. भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 212

3. भारती, पुदिय अत्तिच्चूडि, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 210, 211
4. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 212
5. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 213
6. भारती, पुदिय अत्तिच्चूडि, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 209, 210, 211
7. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 212, 213
8. भारती, पुदिय अत्तिच्चूडि, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ,* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 210
9. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 211, 212
10. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 212
11. भारती, पुदिय अत्तिच्चूडि, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 209, 210
12. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 211, 212
13. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 211, 212
14. भारती, पाप्पा पाट्ड, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 211, 212
15. भारती, पुदिय अत्तिच्चूडि, भारतियार कवितैनाल. *भारदम पोट्रूम भारदियार कविदैवाळ.* चेन्नई : लियो बुक पब्लिशर्स. पृ. 209, 210

□

सुब्रह्मण्य भारती की पत्रकारिता

कृपाशंकर चौबे

तमिल के महान कवि सुब्रह्मण्य भारती ख्यातिलब्ध पत्रकार भी थे। सुब्रह्मण्य भारती ने 1904 में मद्रास से प्रकाशित तमिल दैनिक 'स्वदेशमित्रन्' के उपसंपादक के रूप में पत्रकारिता में प्रवेश किया। 'स्वदेशमित्रन्' तमिल का पहला राजनीतिक समाचार-पत्र था। वह पहले साप्ताहिक के रूप में 1882 में निकला था। 1888 में वह सप्ताह में दो बार निकलने लगा। 1899 में वह दैनिक हो गया। उसके संस्थापक जी. सुब्रह्मण्य अय्यर थे, जिनके बारे में सुब्रह्मण्य भारती ने कहा है—तमिल प्रदेश में नव जागृति के कर्ता।[1] 'स्वदेशमित्रन्' में काम करने के दौरान सुब्रह्मण्य भारती अगस्त 1905 में मद्रास से ही निकलनेवाली तमिल मासिक पत्रिका 'चक्रवर्तिनी' के संपादक बन गए। वहां वे अगस्त 1906 तक यानी 13 महीने संपादक रहे। सुब्रह्मण्य भारती मद्रास से ही प्रकाशित तमिल साप्ताहिक 'इंडिया' के अप्रैल 1906 में संपादक बन गए। 'इंडिया' डिमाई आकार में निकलनेवाला 16 पृष्ठों का अखबार था। वह प्रत्येक शनिवार को निकलता था। प्रथमतः कार्टून चित्र प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित करने का श्रेय 'इंडिया' को ही मिला।[2] कई राजनीतिक कार्टून 'इंडिया' में छपे। 'इंडिया' पत्रिका में छपे एक कार्टून में दिखाया गया था कि मद्रास की जनता विदेशी वस्तुरूपी राक्षस का संहार कर रही है।[3] 1909 में ऋषि अरविंद घोष जब जेल से रिहा हुए तो ईस्ट इंडिया कंपनी को सर्प के रूप में और अरविंद को तेजयुक्त व्यक्ति के रूप में दर्शानेवाला कार्टून इंडिया ने छापा।[4] इंडिया ने एक कार्टून में लोमड़ी और कौआ का चित्र छापा। उसमें कर्जन को लोमड़ी दर्शाया गया, जो कौआ बने मार्ले से लोमड़ी कहती है—गीत सुनाओ।[5] देश के नेताओं के नजरबंद करने पर भी इंडिया ने कार्टून छापा।[6] इंडिया के 18 दिसंबर, 1909 के अंक में 'गांधी' नाम की गाय का कार्टून छापा; जिसमें उनके दक्षिण अफ्रीका के रंग-भेद विरोधी आंदोलन को दर्शाया गया था।[7]

सुब्रह्मण्य भारती उसमें हर हफ्ते 'टॉपिक ऑफ द वीक' स्तंभ लिखते थे। कभी शक्तिदासन के नाम से तो कभी शैलीदासन के नाम से, कभी देशभक्तन के नाम से तो कभी वेदांती के नाम से। सुब्रह्मण्य भारती ने 'इंडिया' समाचार पत्र का ध्येय रखा था—स्वतंत्रता, समानता और मैत्री भावना। इस ध्येय की पूर्ति के लिए वे 'इंडिया' में लगातार लिखते रहे। स्वतंत्रता के प्रश्न पर सुब्रह्मण्य भारती ने कांग्रेस से भी जी-जान से जुटने का आह्वान किया था। उन्होंने 'इंडिया' के 07 जुलाई, 1906 के अंक में लिखा था, ''विदेशी सरकार से बार-बार

अनुनय-विनय न करें, जो कांग्रेस के न्यायपूर्ण निवेदनों पर ध्यान नहीं देती। उसके बदले भारतीयों के उद्धार के कार्यक्रमों में जी-जान से जुट जाएं।''[8] 21 अगस्त, 1908 को सरकार का आदेश पाकर 'इंडिया' के मद्रास कार्यालय की तलाशी और सुब्रह्मण्य भारती को कैद करने पुलिस पहुंची तो गिरफ्तारी से बचने के लिए वे पांडिचेरी चले गए। उसके बाद पांडिचेरी से ही 'इंडिया' पत्रिका निकालने का निश्चय हुआ।[9] सुब्रह्मण्य भारती की पत्रकारिता तिलक और बंकिम के राष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित थी। भारती ने बंकिमचंद्र चटर्जी के गीत 'वंदे मातरम्' का तमिल अनुवाद किया था और उस पर टिप्पणी भी लिखी, जो 'चक्रवर्तिनी' के नवंबर 1905 के अंक में प्रकाशित हुई थी। बाद में वह 'स्वदेशमित्रन्' के 28 दिसंबर, 1905 के अंक में भी छपी। 'वंदे मातरम्' गीत के अनुवाद के साथ दी गई टिप्पणी में भारती ने लिखा था, ''अब बंगाल के हर हिंदू द्वारा साम गान की भांति इतनी श्रद्धा के साथ गाया जानेवाला 'वंदे मातरम्' नामक दिव्य गीत जब 25 वर्ष पूर्व बंकिमचंद्र ने अपने उपन्यास 'आनंद मठ' में प्रकाशित किया था तो संभवतः वे यह जानते थे कि पच्चीस वर्ष के अंदर ही यह दिव्य गीत बंगाल की जनता की जुबान पर रहेगा।''[10]

लेकिन उसी सुब्रह्मण्य भारती को जब खबर मिली कि बंगाल के कुछ नेता बंगाल के विभाजन को रद्द करने के लिए सरकार को अर्जी भेजनेवाले हैं तो उसका विरोध करते हुए उन्होंने 'इंडिया' के 29 सितंबर 1906 के अंक में लिखा, ''मान लीजिए कि अब मार्ले शायद बंगाल के विभाजन को रद्द कर देगा। फिर ये लोग स्वदेशी आंदोलन को कैसे आगे बढ़ाएंगे? आरंभ में ही प्रांत के विभाजन के इस अन्यायपूर्ण कार्य के लिए बदला लेने के रूप में हम स्वदेशी वीरता को अपनानेवाले हैं, ऐसा बंगालियों ने कहा था। स्वदेशी प्रयासों से हमें कितनी ही शक्तियां उत्पन्न हुई हैं, इसलिए आगे कभी भी प्रांत के विभाजन को रद्द करें या न करें; हम स्वदेशी वीरता को त्यागेंगे नहीं। बंगाल के नेता इस पर जरा सोचें और आगे सरकार प्रांतीय विभाजन के संबंध में कुछ भी करे, हमें तो स्वदेशीयता ही चारा है, यह सोचकर रह जाना ही अच्छा है। अगर हम दृढ़ चित्त एवं पौरुष के साथ व्यवहार करें तो क्यों प्रांतीय विभाजन जैसी एक ही शिकायत दूर होगी? हमारी सारी शिकायतें सूर्य के सामने ओस की बूंदों की भांति गायब हो जाएंगी।''[11] इस टिप्पणी से स्पष्ट है कि स्वदेशी के प्रश्न पर किसी तरह की नरमी सुब्रह्मण्य भारती को स्वीकार्य नहीं थी। स्वदेशी के लिए वे दृढ़ चित्त को अपरिहार्य मानते थे। इसीलिए उन्होंने स्वदेशी आंदोलन चलानेवाले नेताओं को क्षणिक प्रसन्नता में नहीं फंसने का परामर्श भी दिया था। विपिनचंद्र पाल, भूपेंद्रो, ब्रह्मदत्त बांधाव उपाध्याय आदि नेताओं ने विदेशियों की अदालत को मानने और उसका सम्मान करने से इनकार कर दिया तो तत्संबंधी मुकदमे का संदर्भ ग्रहण करते हुए सुब्रह्मण्य भारती ने 'इंडिया' के 21 जुलाई, 1906 के अंक में लिखा था, ''इस मुकदमे में जीत मिलेगी या हार, इसका अनुमान इस समय करना संभव नहीं है। संभवतः इसमें भी एसम्र्सदन कंपनी के लोगों के अपमानित हो जाने पर हम सबको बड़ी तृप्ति मिलेगी, इसमें संदेह नहीं है। मगर मुकदमे की जीत में हमारे बंगाली बंधुओं को प्राप्त होनेवाला उत्साह हमें नहीं होता है, इसे स्पष्ट कर देना ठीक होगा; क्योंकि इस प्रकार का अल्प-संतोष या क्षणिक

प्रसन्नता मुख्य दोषों को जरा छिपा देती है। अतः इस प्रकार के अल्प संतोष को रोकना नेताओं का कर्तव्य है।''[12] इस टिप्पणी से पत्रकारिता को यही सीख मिलती है कि नेताओं को उनके कर्तव्य की याद दिलाना भी संपादक का काम है। कर्तव्य पालन में स्वदेशी आंदोलन के उग्र होने तक के समर्थक थे–सुब्रह्मण्य भारती। बंगाल में बम, पिस्तौल, रिवॉल्वर, गोलियों का प्रयोग कर कुछ गोरों के प्राण लेने की घटनाएं घटीं तो सुब्रह्मण्य भारती ने 'इंडिया' के 8 जनवरी, 1910 के अंक में उसे न्यायसंगत ठहराते हुए लिखा था, ''भारत देश में एक नई चेतना ईश्वर की कृपा से देश के हित में उत्पन्न हुई। यह चेतना अभी हाल में बहुत ही विकसित हो रही है। उसे कई गोरी बकरियां चरते हुए नाश करने पर तुली हैं। मगर पौधों का खार उन गोरी बकरियों के पेट में जलन पैदा कर देता है। कुछ बकरियों की सांस फूलती है और वे भागने पर मजबूर हो जाती हैं। कुछ मर भी जाती हैं। ये सब ईश्वर का विधान ही है।''[13]

स्वदेशी आंदोलन को दबाए जाने पर सुब्रह्मण्य भारती उसके विरोध में मुखर हो जाते थे। मई, 1907 में पंजाब में दमन नीति चलाई गई तो भारती ने 'इंडिया' के 11 मई 1907 के अंक में पहले घटनाक्रम की जानकारी देते हुए लिखा था, ''लाला हंसराज, गुरुदास राम आदि नेताओं तथा सम्माननीय व्यक्तियों को कैद किया गया। लाखों रुपये की जमानत देने को सहमत होने पर भी जमानत पर उन्हें छोड़ने से सरकार ने साफ इनकार कर दिया। लाला लाजपत राय से एक मजिस्ट्रेट बड़ी बेइज्जती के साथ पेश आया और आम सभा में अध्यक्ष बनकर भाषण देने की इजाजत उन्हें नहीं दी। आदेश का उल्लंघन कर सभा का आयोजन होने पर घुड़सवारों के द्वारा भीड़ पर बंदूक चलाने का इंतजाम किया जाएगा, ऐसी सूचना है।''[14] इतनी सूचना देने के बाद जनता के प्रतिरोध के बढ़ने की ओर संकेत करते हुए सुब्रह्मण्य भारती ने लिखा था, ''भयंकर सूचनाओं के तार-पर-तार पंजाब से आते रहते हैं। एक तार में सूचना है कि हंसराज के अलावा अन्य अठासी लोगों को जेल में ढकेल दिया गया है। जनता चुप नहीं है। यूरोपीय लोगों के निवासों में घुसकर, उन्हें लूटकर, पीटकर तथा मकानों पर धावा बोलकर लोग अपना गुस्सा उतार रहे हैं, ऐसा हम जानते हैं। इसलिए पंजाब में जनता और सरकार दोनों एक-दूसरे के सामने भिड़ने लगे हैं। विश्वास है कि अधिकारीगण जल्दी साफ दिल से शांति की मांग करने लगेंगे। अन्यथा चौक की आग जंगल की आग में फैल जाने का डर है।''[15] 'पंजाबी' नामक उग्र विचारों की पत्रिका पर जब मुकदमा दायर किया गया और उसके संपादक और प्रकाशक दोनों को निचली अदालत द्वारा क्रमशः 6 मास और दो वर्ष की जेल की सजा दी गई तो उन दोनों ने सेशन कोर्ट में अपील दायर की, जिसने दंड की अवधि छह मास कर दी। उसके बाद हाईकोर्ट में उनके अपील करने की खबर सुनते ही सुब्रह्मण्य भारती ने उसका विरोध करते हुए 'इंडिया' के 23 मार्च, 1907 के अंक में लिखा, ''हमें लगता है कि हाईकोर्ट में दंड और भी कम कर दिया जाएगा। इस प्रकार सरकार की दया से हमारे देशभक्त शिरोमणि लाला जसवंत राय (प्रकाशक) तथा आडवाणी (संपादक) का दंड कम कर दिया जाएगा। इस पर सोचने से हमें थोड़ी सी तसल्ली अवश्य मिलती है, मगर हमारा नया आंदोलन इन छोटी-सी कृपाओं की वजह से जरा-सा

कम होगा, यह सोचकर हम दुःखी हैं, क्योंकि शासक हिंसात्मक तरीकों को जितना अधिक अपनाते हैं, उतना ही लोगों का उत्साह बढ़ता जाएगा, यह हमारा पक्का विश्वास है।''[16]

इस तरह जो भी अनौचित्यपूर्ण लगता था, उसका सुब्रह्मण्य भारती साफ-साफ विरोध करते थे, किंतु जो औचित्यपूर्ण होता था, उसका खुलकर पक्ष-समर्थन करते थे। लाला ताजपत राय के देश निकाले जाने की खबर पर टिप्पणी करते हुए सुब्रह्मण्य भारती ने 'इंडिया' के 18 मई, 1907 के अंक में सरकार को चेतावनी देते हुए कहा था, ''आम सभाओं को रोकना, पाठशालाओं को धमकी देना, जनता के नेताओं को देश निष्कासित करना आदि अत्याचारी एवं क्रूर व्यवहारों का अनुसरण करना सरकार के लिए बड़ी आफत उत्पन्न करनेवाला सिद्ध होगा। शांति के मार्ग में इच्छा रखनेवाली जनता को हिंसा के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करना क्या सरकार के हित में होगा?''[17]

महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ जिस तरह संघर्ष कर रहे थे, वही काम भारत में सुब्रह्मण्य भारती जैसे पत्रकार कर रहे थे। एक अंग्रेज द्वारा एक भारतीय को नाहक थप्पड़ मारने के मामले में चले मुकदमे के संबंध में 'इंडिया' के 7 जुलाई, 1907 के अंक में 'मिस्टर चार्टरटन को मिला दंड' शीर्षक टिप्पणी में सुब्रह्मण्य भारती ने लिखा था, ''पाठकों को स्मरण होगा कि मद्रास के चित्रकला महाविद्यालय के प्राचार्य मिस्टर चार्टरटन जब बाइसाइकिल चला रहे थे, तब असावधानी से गाड़ी चलाने की वजह से गाड़ीवान की खूब पिटाई की और गाड़ी के अंदर बैठे व्यक्ति का भी अपमान किया था। यह मुकदमा कचहरी में दायर किया गया था। मामला जिला मजिस्ट्रेट के सामने सुनवाई के लिए आया था और मिस्टर चार्टरटन पर तीन रुपये का जुर्माना लगाया गया। इस व्यक्ति के कार्य पर सोचने से हमें घृणा होती है। इतनी ऊंची शिक्षा, बुद्धि और यश प्राप्त वह व्यक्ति अपनी गोरी चमड़ी के घमंड के कारण कितना निकृष्ट कार्य कर बैठा? अगर गाड़ी में बैठा हुआ व्यक्ति गोरा रहा होता तो मिस्टर चार्टरटन न गाड़ीवान को पीटता और न उसमें बैठे व्यक्ति को गाली देता। एक काले रंग का व्यक्ति साइकिल पर सवार हुए एक गोरे देवता को देखकर भय से किनारे न हो सका, जिसने क्रोध को जन्म दिया और मिस्टर चार्टरटन को इस प्रकार खराब व्यवहार करने को बाध्य कर दिया। हमें नहीं लगता कि हम लोग इस प्रकार के व्यवहार को कई दिनों तक बर्दाश्त करते रहेंगे। हमें विश्वास है कि सरकार इस संबंध में आगे सचेत रहेगी।''[18]

इसी तरह 'चक्रवर्तिनी' के जुलाई 1906 के अंक में 'ट्रेन में एक भारतीय नारी को तंग करनेवाला गोरा व्यक्ति' शीर्षक टिप्पणी में सुब्रह्मण्य भारती ने लिखा था—''बम्बई निवासी ढिल्लोन नामक एक यूरोपीय द्वारा ट्रेन की प्रथम श्रेणी के डिब्बे में ही एक भारतीय नारी को तंग करने के बारे में हमने पहले ही लिखा था। इस महीने की 21 वीं तारीख को पूना के मजिस्ट्रेट के सामने इस मुकदमे की सुनवाई हुई। तब उस ढिल्लोन को मजिस्ट्रेट ने 200 रुपये के जुर्माने का दंड दिया। दंड का पैसा न चुकाने पर दो महीने के कारावास की सजा का आदेश मजिस्ट्रेट ने दिया। ढिल्लोन ने जुर्माने का पैसा चुका दिया। ढिल्लोन द्वारा किए गए इस अक्षम्य अपराध को देखते हुए उसको

दिया गया दंड अत्यल्प है।[19] यह ध्यान देने योग्य है कि रंगभेद करनेवाली उस न्यायिक व्यवस्था की आलोचना करने का साहस सुब्रह्मण्य भारती रखते थे।

मदुरै में मई 1907 के शुरू में जब 'स्वदेशी सभा' चल रही थी, एक पुलिस दरोगा ने बीच में आकर उसे चलने से रोका। उनकी बदतमीजी और दुर्व्यवहार के बारे में 'स्वदेशमित्रन्' में प्रकाशित एक पत्र को पढ़कर सुब्रह्मण्य भारती ने 'इंडिया' के 9 मई, 1907 के अंक में 'मदुरै में पुलिस का अत्याचार' शीर्षक टिप्पणी में हिम्मत के साथ ब्रिटिश पुलिस का प्रतिरोध करने का आह्वान करते हुए लिखा था–'लोगो! आप ही इस भूमि के स्वामी हैं। सरकार में कार्य करनेवाले आप से वेतन लेकर आपके लिए काम करनेवाले सेवक हैं। अगर कोई सरकार सही ढंग से कार्य न करे तो उसे बदलने की शक्ति आपके पास ही है। आप अपनी स्वतंत्रता और हकों को जानकर कानून माननेवालों में दखल देनेवालों का जरा भी पक्षपात न दिखाकर किसी प्रकार से दबा दीजिए। पूरी हिम्मत के साथ लड़नेवालों की पुलिस कुछ न कर सकेगी। मानसिक बल से युक्त लोगों के पास भूत-प्रेत भी न फटक सकेगा।''[20] इस तरह भारती देशवासियों में हिम्मत भरते थे।

स्वाधीनता की चेतना से संबंधित छोटी-छोटी घटनाओं पर भी सुब्रह्मण्य भारती की नजर रहती थी। गोदावरी जिले के काकीनाड़ा में अठारह वर्ष के एक छात्र ने जिला सर्जन मेजर कैम्पामक गोरे को सुनाकर 'वंदे मातरम्' का नारा लगाया तो उस गोरे डॉक्टर ने उस छात्र की जमकर पिटाई कर उसे घायल कर दिया। उस घटना पर सुब्रह्मण्य भारती ने 'इंडिया' के 8 जून, 1907 के अंक में 'काकिनाड़ा में छोटी-सी गड़बड़ी' शीर्षक खबर में लिखा–''लड़के के शरीर से खून बहने लगा। पिटाई से संज्ञाशून्य होकर जमीन पर गिर पड़े उस लड़के को खींचते हुए पुलिस थाने ले गई। उसे कैद किया गया। अस्पताल का कोई भी व्यक्ति उस लड़के से मिलने न आ सके तथा उसकी चिकित्सा न होने पाए, ऐसा आदेश भी दिया गया। यह सब सुनकर लड़के को चाहनेवाले लोग इकट्ठा होकर फिरंगियों के एक इंग्लिश क्लब गए और वहां आक्रमण किया। फिर उस भीड़ ने जगनाबिकपुर नामक जगह में स्थित एक गिरिजाघर पर धावा बोलकर उसे नष्ट कर दिया। इसके बाद कुछ फिरंगियों के घरों को तोड़-फोड़ की। इस पर जिला मजिस्ट्रेट कुछ पुलिसवालों के साथ बाहर आए तो उन्हें भी भीड़ ने घायल कर दिया। सारा काकिनाड़ा शहर फिरंगियों पर अपना गुस्सा उतार रहा था। बहुत बड़े उपद्रव की संभावना दिखती है।''[21]

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध और स्वाधीनता के पक्ष में सुब्रह्मण्य भारती की मुखरता का एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य है। उनकी पत्रकारीय संवेदना पंजाब के लाला लाजपत राय से जुड़ी तो बंगाल के विपिनचंद्र पाल और मध्य भारत के तिलक से। इन पर उन्होंने महत्त्वपूर्ण पत्रकारीय लेखन किया। सुब्रह्मण्य भारती स्त्री प्रश्नों को लेकर भी संवेदनशील थे। उनकी वह संवेदनशीलता 'चक्रवर्तिनी' में देखी जा सकती है। 'चक्रवर्तिनी' स्त्री विषयक पत्रिका थी जिसका संपादन भारती करते थे। संपादकीय पृष्ठ में 'चक्रवर्तिनी' शीर्षक के नीचे पत्रिका के उद्देश्य की घोषणा एक दोहे में इस प्रकार की जाती थी–''नारी की बुद्धि का विकास होगा

तभी देश का गौरव बढ़ेगा। नारी उत्थान से संसार का उत्थान होगा।'' स्त्री-प्रश्नों के अलावा जाति-भेद भी भारती की चिंता का विषय था। 'चक्रवर्तिनी' के अगस्त, 1906 के अंक में भारती ने 'राजा राममोहन राय' शीर्षक लेख लिखा था। लेख के प्रारंभ में भारती ने लिखा था, ''इस देश की उन्नति के लिए परिश्रम करनेवाले सर्वप्रथम महान व्यक्ति राजा राममोहन राय हैं। किंतु भगवान बुद्ध, शंकराचार्य, ईसा मसीह जैसे महानों की ऊंचाई को राजा राममोहन राय स्पर्श नहीं कर पाए। जातिभेद के बंधनों को तोड़कर बाहर जाने पर भी मृत्यु के समय उनकी छाती पर ब्राह्मणों का जनेऊ विद्यमान था। इस देश की रक्षा के निमित्त एक पूर्णवीर पुरुष को भेजने में भगवान की कृपा नहीं थी।''[22] सुब्रह्मण्य भारती ने जाति के प्रश्न पर नवजागरण के अग्रदूत को भी नहीं बख्शा तो अंदाजा लगाया जा सकता है कि अपने विचारों पर भारती कितने दृढ़ रहनेवाले व्यक्ति थे। वे स्वयं ब्राह्मण थे, किंतु अस्पृश्यता निवारण को उन्होंने अपनी पत्रकारिता के उद्देश्य में शामिल किया था।

'इंडिया' पत्रिका के संपादन काल में ही सुब्रह्मण्य भारती ने 3 नवंबर, 1907 को पांडिचेरी से प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक 'बाल भारती', 1908 में प्रकाशित अंग्रेजी मासिक 'बाल भारत' और पांडिचेरी से ही 7 सितंबर, 1909 को निकले सांध्य दैनिक 'विजय' का संपादन भी किया। सुब्रह्मण्य भारती ने 'बाल भारती' में खुद तो धार्मिक लेख और संपादकीय टिप्पणियां लिखी ही, सिस्टर निवेदिता और विपिनचंद्र पाल के कई निबंध भी प्रकाशित किए। 'विजय' के कुल 160 अंक प्रकाशित हुए। उसमें तमिल में ध्येय वाक्य छपा रहता था 'स्वातंत्रम् समत्वम् सहोदरत्व'। चार पृष्ठोंवाले उस समाचार-पत्र का प्रकाशन रविवार और अन्य अवकाश दिवसों पर नहीं होता था।[23] सुब्रह्मण्य भारती की पुत्री एस विजय भारती ने लिखा है, ''भारती के जीवन के सबसे लाभदायक वे दस वर्ष थे जो उन्होंने पांडिचेरी में बिताए। कवि और दार्शनिक सुब्रह्मण्य भारती ने अत्यंत कठिन समय में काफी प्रगति की। ऐसा लगता है कि तत्कालीन विदेशी भूमि पांडिचेरी में इस भारतीय कवि का एक दार्शनिक और संत के रूप में विकास हुआ।''[24] पांडिचेरी में 'इंडिया' पत्रिका के संपादन काल में सुब्रह्मण्य भारती की रचनाएं 'स्वदेशमित्रन्' में भी प्रकाशित होती रहीं।[25] ऋषि अरविंद घोष की पत्रिका 'कर्मयोगी' और संगोन धिन्नस्वामी नायडु की पत्रिका 'सूर्योदय' को भी भारती का संपादकीय और रचनात्मक संस्पर्श मिला था। 'कर्मयोगी' के तमिल संस्करण में सुब्रह्मण्य भारती की कविताएं, आध्यात्मिक निबंध, श्रीमद्भगवद् गीता का तमिल अनुवाद और सामयिक टिप्पणियां प्रकाशित हुईं। इसी तरह साप्ताहिक 'सूर्योदय' के 13 फरवरी 1910 के अंक में सुब्रह्मण्य भारती के हस्ताक्षर के साथ 'तमिलभाषियों के लिए अंतिम प्रार्थना' शीर्षक लेख छपा था, जिसमें राजनीति में हिंसा को नहीं अपनाने का आह्वान किया गया था।

जब भारती पांडिचेरी से मद्रास लौटे तब एक बार फिर 'स्वदेशमित्रन्' से जुड़े। वहां मौलिक लेखन के अलावा वे अंग्रेजी में प्राप्त सामग्री का तमिल में अनुवाद कर छापते थे। अंग्रेजी के भाव भंग किए बिना, मनोरंजक ढंग से उसे तमिल भाषियों को बतलाने के लिए भारती ने

अनेक तमिल शब्दों की सृष्टि की। तभी उन्हें तमिल की गंभीरता और उसका माधुर्य स्पष्ट रूप से समझ में आया। सुब्रह्मण्य भारती हिंदी के भी हिमायती थे। 'इंडिया' में वे एक पृष्ठ हिंदी को देते थे और उस पृष्ठ पर अंग्रेजी में हिंदी पेज और तमिल में हिंदी भाषा पृष्ठ लिखा होता था। उस पृष्ठ में तीन कॉलम हिंदी के लिए नियत थे। 'इंडिया' के 15 दिसंबर, 1906 के अंक में सुब्रह्मण्य भारती ने देवनागरी लिपि में महाराणा प्रताप की जीवनी प्रकाशित की और लिखा– ''हिंदी सीखने की इच्छा न रखने पर भी इस जीवनी को ध्यान से पढ़ने की प्रार्थना करते हैं।'' उसी टिप्पणी में भारती ने यह भी लिखा था, ''तीस करोड़ लोगों में से आठ करोड़ से अधिक लोग हिंदी बोलते हैं। महाराष्ट्रवासी, बंगाली आदि लोग हिंदी आसानी से समझ लेते हैं। तमिलभाषी, तेलुगु भाषी थोड़ा-सा परिश्रम करेंगे तो हिंदी सीख सकते हैं।''[26] 1907 में नागपुर से 'हिंदी केसरी' के प्रकाशन की खबर पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए सुब्रह्मण्य भारती ने 'इंडिया' के 9 फरवरी, 1907 के अंक में लिखा, ''तिलक महर्षि की सच्ची बातों को महाराष्ट्रवासी ही नहीं, सभी भारतवासी अपनाकर हिंदी सीखकर लाभान्वित होना चाहिए। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर हम यह प्रयत्न कर रहे हैं। तिलक महर्षि की 'केसरी' पत्रिका से हिंदी में व्यक्त उनके विचारों को 'इंडिया' में तमिल रूपांतर करने से हमारे पाठकों को लाभ भी होगा। मराठी ज्ञान नहीं होने के कारण तिलक के विचारों को हम 'इंडिया' में नहीं दे पा रहे थे, परंतु हिंदी का ज्ञान इस पत्रिका के संपादक को होने के कारण 'हिंदी केसरी' अर्थात् 15 मार्च से तिलक के विचारों को रूपांतर करके दिया जाएगा।''[27] बनारस में कुछ वर्ष रहने के कारण सुब्रह्मण्य भारती को हिंदी का अच्छा ज्ञान हो गया था और उन्होंने 'हिंदी केसरी' की सामग्री का तमिल में अनुवाद कर उसे 'इंडिया' में लगातार प्रकाशित किया।

संदर्भ :

1. सुंदरम्, डॉ. एन. (1995). *सुब्रह्मण्य भारती.* लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान. पृ. 124
2. वही, पृ. 116
3. पद्मनाभन्, रा.अ. (1987). *सुब्रह्मण्य भारती.* दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट. पृ. 21
4. वही, पृ. 32
5. वही, पृ. 33
6. वही
7. वही, पृ. 35
8. सुंदरम्, डॉ. एन. (1995). *सुब्रह्मण्य भारती.* लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान. पृ. 116
9. वही, पृ. 118
10. रघुनाथन्, टी.एम.सी. (1997). *सुब्रह्मण्य भारती* युग और चिंतन. दिल्ली : साहित्य अकादेमी. पृ. 44
11. वही, पृ. 157
12. वही, पृ. 158
13. वही, पृ. 176
14. वही, पृ. 162

15. वही, पृ. 162
16. वही, पृ. 159
17. वही, पृ. 163
18. वही, पृ. 59
19. वही, पृ. 60
20. वही, पृ. 160
21. वही, पृ. 161
22. वही, पृ. 53
23. श्रीधर, विजय दत्त. (2010). *भारतीय पत्रकारिता कोश.* खंड दो, दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. 622
24. भारती, एस. विजय. (2004). *आधुनिक भारत के निर्माता सी. सुब्रह्मण्य भारती.* दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार. पृ. 17
25. वही, पृ. 14
26. सुंदरम्, डॉ. एन. (1995). *सुब्रह्मण्य भारती.* लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान. पृ. 79
27. वही, पृ. 80

□

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

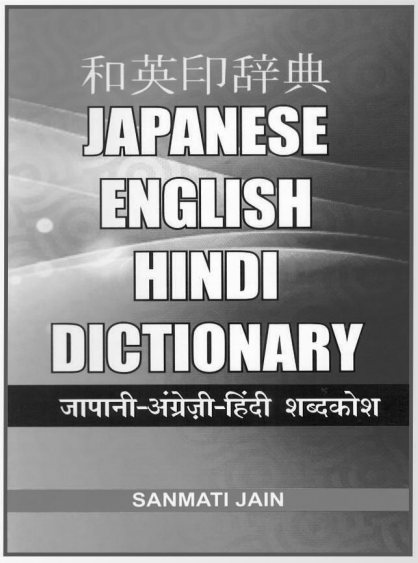

मूल्य : 595

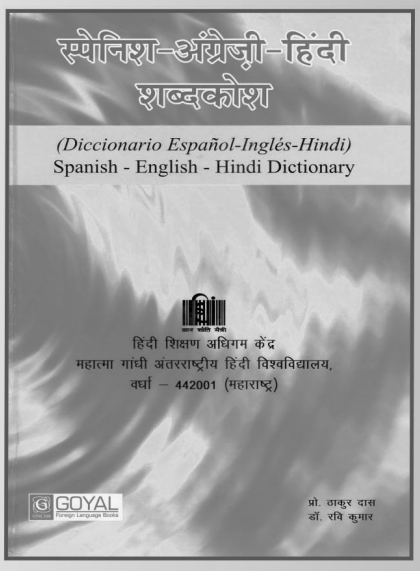

मूल्य : 550

स्वाधीनता और स्वाधिकार की उद्दाम आकांक्षा

प्रतापराव कदम

तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती को कवि बायरन और माखनलाल चतुर्वेदी के बरक्स रखा जाता है, इसकी अनेक वजहें हैं, एक तो यह कि इन्होंने साहित्य की मानवतावादी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए नए मार्ग, नए मतवाद की आधारशिला रखी, जो जनवादी, नए समाज व्यवस्था के निर्माण के विचारों से लबरेज थी। इन्होंने अपने वक्त की आवाज को न केवल सुना, बल्कि उसे दिशा देने का भी प्रयास किया, लोक-साहित्य का निर्वहन किया, गिरि-शिखरों की बात नहीं की बल्कि लोक-जीवन से जुड़े। माखनलाल चतुर्वेदी ने लेखक, कवि के लोक-दायित्व, जिसे सामाजिक सरोकार भी कहते हैं, के संबंध में लिखा है—"लोक जीवन की उथल-पुथल और राग-द्वेष को अगर समय की बैलगाड़ी में से कवि नहीं उठा सका तो केवल महासागरों पर लिखकर और गिरि-शिखरों के गुण गाकर क्या होगा?" तीनों कवि-लेखक, बायरन, सुब्रह्मण्य भारती और माखनलाल चतुर्वेदी अलग-अलग ढंग-आधार, विशेषताओं के कारण रेखांकित किए जाते हैं, पर तीनों क्रांतिचेतना के वाहक, स्वछंद भाव-प्रवाह के प्रवर्तक, मौलिक चिंतक, जिन्होंने काल्पनिक कुहासे को चीरकर जनसम्मत साहित्य की रचना की। शृंगारिक, कोमलकांत पदावली, अलंकारिक भाषा, चमत्कार, कृत्रिम भाव-रोपण के बजाय सीधी, सच्ची निर्व्याजय लेखन शैली के मार्फत अपनी बात कही।

दुःख भी जोड़ता है, इसके मार्फत भी ये तीनों कवि जुड़ते हैं। मां की उपेक्षा के शिकार बायरन हुए तो सुब्रह्मण्य भारती पर से मां का साया बचपन से ही छीन गया था, पिता चिन्नस्वामी को उनका जितना ख्याल रखना चाहिए था, उन्होंने नहीं रखा। माखनलाल चतुर्वेदी का निर्भीक लेखन, राष्ट्रवाद से ओत-प्रेात लेखन सुब्रह्मण्य भारती को उनसे जोड़ता है। माखनलाल जी की तरह ही उन्हें भी एकाधिक बार जेल जाना पड़ा। स्वावलंबन, आत्माभिमान, राष्ट्रीयता, इस धरातल पर माखनलाल चतुर्वेदी के बरक्स वे खड़े होते हैं। कवि बायरन का जीवनकाल भी सुब्रह्मण्य भारती की तरह कम रहा। भारती जी का जन्म 11 दिसंबर 1882 को हुआ और उनके सार्थक अर्थपूर्ण जीवन का अंत 12 सिंतबर, 1921 को हुआ तो बायरन का जन्म 22 जनवरी, 1788 को हुआ और 19 अप्रैल, 1824 को यूनान में उनकी मृत्यु हुई। महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि आपने कितना जीवन जिया, महत्त्वपूर्ण यह कि आपने कैसा जीवन जिया - सार्थक या निर्रथक। महत्त्वपूर्ण जन्म और मृत्यु की तिथियां नहीं

होतीं। महत्त्वपूर्ण उसके बीच जिया गया जीवन होता है। तीनों कवियों ने दासता से मुक्ति के लिए, अपने लेखन से मशाल जलाई। तीनों ने जीवन के प्रत्येक क्षण को उसकी संपूर्ण अर्थवत्ता में ग्रहण किया। बायरन ने कविता के अलावा उल्लेखनीय गद्य-लेखन भी किया, यही बात माखनलाल चतुर्वेदी और सुब्रह्मण्य भारती पर भी लागू होती है। प्रसंगवश मुझे बायरन, माखनलाल चतुर्वेदी की याद आ गई, इसलिए भी कि अपनी मिट्टी की सुगंध तीनों रचनाकारों में है और माटी का कर्ज चुकाने की जुनून भी। सुब्रह्मण्य भारती की एक गद्यकृति का भावार्थ है–

धरती माता सजीव है, उसका श्वास ही भू पर चलती हवा है।
वायु ही प्राण है, उसका नाशक भी वही है।
वायु ही उसका प्राण है, इसीलिए प्राणों का नाश नहीं होता; क्षुद्र प्राण विराट प्राण में मिल जाता है।

प्राणपोषक वायु की अभ्यर्थना में कवि कहता है–

वायु तेरा अभिनंदन है
मकरंद रस को लिए मनमोहक गंध के साथ तू आ।
पत्तों और जलतड़ागों को स्पर्श करते हुए हमें प्राण रस में शराबोर कर दे।
वायु तेरा अभिनंदन है।

तेरे प्रचंड वेग से हमारी प्राणाग्नि स्थिर होकर जलती रहे–

क्षीण होकर तू उसे बुझा न दे।
पैशाचिक रूप में तू उसे मिटा न दे।
सुलय के साथ तू अनंत काल तक धीरे-धीरे बहती रह।
हम तेरा गायन करते हैं।
तेरे मंगल की हम कामना करते हैं।
चींटी को देख, कितनी छोटी है। उसमें हाथ-पैर-मुंह पेट सभी अवयव मानों नापतोल कर रखे गए हों। किसने रखा था? महाशक्ति ने। ये सब अवयव सीधे कार्य-निर्वाह करते हैं।

चींटी भोजन करती, विश्राम करती है, विवाह रचती है, शिशुओं को जन्म देती है, कभी दौड़ती है तो कभी कुछ खोजती है, लड़ती है और देशरक्षण भी करती

है। इन सब का आधार वायु ही है।
माता महाशक्ति इसी वायु को लेकर प्राणक्रीड़ा करती है।
इस वायु का गीत हम गा रहे हैं। ज्ञान में बनी रहती है।
हृदय में वह स्पंदन है।
वह प्राण में प्राण है तो शरीर में शक्ति
बाह्य जगत् में इसकी गति से अनभिज्ञ कौन है?
अभिज्ञ कौन है?

भारतीजी के इस गद्यांश को किसी राष्ट्र-विशेष की परिधि में कैसे बांध सकते हैं? एक व्याख्या तो इस गद्यांश की 'क्षिति जल पावक गगन समीरा' पंच तत्त्व को लेकर हो सकती

है, जीवन जिन तत्त्वों से मिलकर बना है, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। धरती, पृथ्वी उतनी ही सजीव है जितना कोई भी प्राणी। हवा, स्पंदन सांस उसका जीवन है, जीवन होने का संकेत है, प्राण पोषक है हवा, इसी से छोटे से जीवन को विराट फलक मिल जाता है। उतनी ही जरूरी है अग्नि, कल-कल जल सी गति का नाम ही जीवन है, संकीर्णता से परे आकाश-सा विस्तार ही तो पर्याय है जीवन का। एक छोटी-सी चींटी में भी यह सब अवयव है, इन सबका आधार यही है। अब इन पंचतत्त्वों को कहां किसी परिधि में बांध सकते हैं। विश्व के किसी भी मानव को केंद्र में रखें यह गद्यांश उसके संदर्भ में भी अपनी बात कहने लगेगा। जैसे एक भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' को आप एक परिधि में नहीं बांध सकते वैसे ही, पुष्प यानी युवा-पीढ़ी तमाम रीतिकालीन लटके-झटके, सामंतवादी टोटके, कर्मकांडी दुराग्रह, राजा-रजवाड़ों के प्रति समर्पण को नकारता, उन पर पांव धरता वह उस रास्ते को अंगीकार करता है जो कर्म पथ की ओर जाता है, यह चाह तो हर देश के युवा की हो सकती है, किसी एक राष्ट्र के युवा की नहीं। बिलासपुर जेल में माखनलाल चतुर्वेदी जी ने यह कविता लिखी–

'चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूथा जाऊं, चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं, चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊं, चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठराऊं, मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर तुम देना फेंक, मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ पर जावें वीर अनेक।'

विश्व के किसी भी राष्ट्र, देश के युवा, जो रीतिकालीन लटके-झटके, कर्मकांडी बंधनों से मुक्ति, सामंतवादी कठधरों से मुक्ति, राज-रजवाड़ों के प्रति समर्पण को नकार, कर्मपथ-कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होगा, वहां माखनलाल जी की 'पुष्प की अभिलाषा' साकार होगी। वही बात भारती जी के इस गद्यांश के बारे में भी कही जा सकती है। गद्यांश पर गौर करें तो भारती जी मनुष्यता के पक्षधर जिसका लक्ष्य जनवादी तत्त्वों की सृष्टि करना। गद्यांश में शोषित, दलित, हिकारत का शिकार मनुष्य के दुःख-दैन्य, पीड़ा-विषाद का चित्रण है। यह चित्रण कुछ वर्ग, जाति, धर्म, रंग-नस्ल तक ही सीमित नहीं बल्कि देश, प्रदेश की सीमाओं का अतिक्रमण कर समूची मानव-जाति को समेटता है, गद्यांश में चींटी का जिक्र है–''चींटी को देख, कितनी छोटी है। उसमें हाथ-पैर, पेट सभी अवयव मानो नाप-तोलकर रखे गए हों। किसने रखा था? महाशक्ति ने। ये सब अवयव सीधे कार्य-निर्वाह करते हैं। चींटी भोजन करती है, विश्राम करती है, विवाह रचती है, शिशुओं को जन्म देती है, कभी दौड़ती है तो कभी कुछ खोजती है, लड़ती है और देश-रक्षण भी करती है।'' चींटी यानी सब से उपेक्षित सीमांत, वह भी वैसे ही जीवन जीता है जैसे कोई भी, वह भी वैसे ही अधिकारों के लिए लड़ता है, अपनी जमीन-जीवन के लिए जैसे हर किसी को लड़ना-जीना चाहिए। चींटी को यह सब किसने दिया? किसके सिखाने से चींटी यह सब करती है, भारती जी जिसे महाशक्ति कहते हैं, वह तो कबीर का साहेब ही है–

मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहेब तेरा बहिरा है?
चींटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहेब सुनता है।

तो जो साहेब, जो महाशक्ति उसे बनाती-बचाती, वही अपने लिए, अपनी जमीन के

लिए लड़ना भी सिखाती है। सुब्रह्मण्य भारती की कविता 'मुरशु' (डंका) भी तो इसी बात को आगे बढ़ाती है–

हे डंके तुम ऐसी ध्वनि करो कि विजय की घोषणा आठों दिशाओं में जाए। तुम्हारी चोट की झंकार में माता शक्ति की जयध्वनि सदा ही गुंजरित होती रहे। समाज में चारों वर्ण एक समान है। इन चारों में से यदि एक भी कम हो जाए तो सब काम बिगड़ जाएगा। मनुष्य वर्ग ही नष्ट हो जाएगा।

कुटुंब में वस्तुओं का संग्रह पिता करता है। अन्य काम संभालती माता कुटंब चलाती है। पुत्र सेवा करता है। क्या ये सभी एक कुटुंब के नहीं हैं? हम देखते हैं कि सब एक होकर कुटुंब चलाते हैं।

जाति का कटु वर्गीकरण हमें नहीं चाहिए। यह संसार प्रेम से पलता है, जो लोग दैव की अनेकता मानते हैं, वे शत्रुता की आग प्रज्ज्वलित करते हैं। ईश्वर एक है और सब में समाया हुआ है।

हमारे घर में एक सफेद रंग की बिल्ली पलती है। उसके कई बच्चे एक ही मां से उत्पन्न होने के बावजूद अलग-अलग रंग के हैं। उनमें से एक मटमैला है, एक काजल-सा काला। एक बच्चा सांप के रंग का है और एक दूध-सा सफेद। रंग चाहे जो हो, क्या वे बच्चे सभी एक समान नहीं हैं? क्या यह कहा जा सकता है कि अमुक रंग अच्छा है और अमुक रंग बुरा? रंग बदलता है, इसलिए यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य भी बदले। विचार और कार्य सबके एक हैं–

'यह मानना चाहिए। हे डंके! तुम्हारी ध्वनि में यह उद्घोषित हो कि इस संसार के सभी निवासी समान हैं। अपनी ध्वनि से यह घोषित करो कि मिथ्या जातिवाद तोड़ा जाए। इस संसार के सब लोग भाई-भाई के समान हैं। यहां स्थान बहुत है, फिर क्यों मतभेद या झगड़ा-फसाद हो? डंका यानी स्वयं सुब्रह्मण्य भारती, डंका यानी समस्त लेखक बिरादरी। कवि स्वयं सहित सबसे आह्वान करते हैं कि स्त्री सदैव श्रेष्ठ है, चार वर्णों में सभी बराबर कोई बड़ा-छोटा, प्रभु या हीन नहीं, पारिवारिकता सबका जीवन आधार है। जाति, धर्म, नस्ल, रंग के आधार पर भेदभाव गलत ही नहीं, खतरनाक भी है। भारती जी बिल्ली का उदाहरण देते हैं कि उसके कई बच्चे हैं, अलग-अलग रंग के, वह सबसे एक-सा व्यवहार करती है, रंग-भले ही अलग हो, पर मनुष्यता का एक ही रंग है, एक ही विचार है, एक ही कार्य है, संसार में प्रेम ही शाश्वत है, सब इसी संसार के निवासी हैं, सब भाई-भाई हैं, जातिवाद मिथ्याधारक है, फिर काहे का टकराव, काहे का झगड़ा, काहे का मनमुटाव। अब इस भारती को आप कैसे किसी संकीर्ण कटघरे में खड़ा कर सकते हैं या बांध सकते हैं। स्वतंत्र चेतना संपन्न लेखक परतंत्रता की, गुलामी की, पर-आश्रय की बेड़ियां कभी पसंद ही नहीं करता, बल्कि उसके खिलाफ हुंकार भरता है। भारती जी ने भी परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े, जातिवाद की बेड़ियों में जकड़े, ऊंच-नीच के भेद-भाव में उलझे राष्ट्रवादियों को जाग्रत किया कि कई तरह की यह जो गुलामी है, यह जो अंग्रेजों की गुलामी है, जो उनके जातियों में बंटे रहने के कारण, जो उनके धर्म के नाम पर एक-दूसरे से टकराने के कारण, जो एक-दूसरे से छीना-झपटी के कारण और आपस में ही उलझे रहने के कारण और मजबूत होती जाएगी। 'सुतन्निर दाहम' (स्वतंत्रता की प्यास) कविता में भारती जी कहते हैं–''कब बुझेगी

हमारी स्वतंत्रता की प्यास? हमारा दासता के प्रति मोह कब नष्ट होगा? हमारी मां के हाथ की हथकड़ियां कब टूटेगी? हमारे कष्ट कब मिटकर निरे स्वप्नवत् बनेंगे?''

जाहिर है, जिस राष्ट्रवाद की पैरवी सुब्रह्मण्य भारती करते हैं, जिसके लिए वे हुंकार भरते हैं, वहां सब बराबर है, स्त्री भी मार्गदर्शक, पथ-प्रदर्शक है, जाति-धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं है। अपनी रचना 'भारत समुदायम'(भारतीय समुदाय) में वे इस बात को और ज्यादा स्पष्ट करते हैं– ''मनुष्य का आहार अगर मनुष्य छीन ले तो यह क्रम क्या आगे चल सकेगा? मनुष्य को तड़पते देखकर मनुष्य-चुपचाप देखा करें तो ऐसी जिंदगी क्या आगे चल सकेगी? अनंत, उपजाऊ जमीन और सुविस्तृत खेतों से परिपूर्ण हमारा देश है। अपरिमित फल, मूल, कंद आदि देनेवाला यह देश है। हम नियम बनाएंगे और सदा उसकी रक्षा करेंगे। यदि कभी किसी एक व्यक्ति के लिए भी आहार न होगा तो हम संसार को मिटा देंगे।'' तो यह भारती जी का राष्ट्रवाद के भूख के खिलाफ तेवर है। राष्ट्र ध्वज की कल्पना भी सुब्रह्मण्य भारती ने अपनी कविता के मार्फत पहले-पहल की, झंडा अस्तित्व में बाद में आया, झंडा बाद में फहराया, उनकी 'तायिन मणिक्कोडि (माता का झंडा)' कविता राष्ट्रीय झंडे के महात्म्य का गायन ही तो है–'माता का उत्तम झंडा देखो।' नत-शिर हो हम उसकी अभ्यर्थना करें और उसका यशोगान करें।

ऊंचा सा एक स्तंभ है, शिखर पर रेशम चमक रहा है, फहरा रहा है झंडा, जिसमें अत्यंत सुंदरता के साथ 'वंदे मातरम्' लिखा है।

क्या उसको रेशम का कपड़ा ही माने?

उसके एक पार्श्व में इंद्र का वज्र है, दूसरी ओर हमारी मुस्लिमों का द्वितीया का चाँद है, बीच में माता का मंत्र 'वंदे मातरम्' दिखाई पड़ता है। उसके महत्त्व को आंकने की शक्ति किसमें है? कहीं भी देखने में दुर्लभ वीरों का समूह खंभे के नीचे खड़ा है, देखो वे विश्वसनीय वीर अपने अमूल्य प्राण देकर भी झंडे की रक्षा करेंगे? उन लोगों का पंक्तिबद्ध खड़ा रहना-क्या यह उत्तम दृश्य आनंदमय नहीं है? सब एक साथ होकर उस झंडे की रक्षा कर रहे हैं, देखो! उनका एकाग्र वीरत्व सदा बना रहे। समर्थ लोगों से प्रशंसित भारत देवी की ध्वजा बनी रहें। राष्ट्र के प्रति यह छटपहाट माखनलाल चतुर्वेदी की कविता में भी इसी तरह से है। बायरन के रचना संसार से भी यह झांकता है–

Are not the mountains, Waves and skies, apart
of me and of my soul, as I of them?
Is not the love of these deep in my heart with a pure passion?

बायरन खुद को आईने के सामने खड़ा करते हैं, मानो खुद से ही प्रश्न करते हैं कि क्या ये पर्वत, ये लहरें और आकाश उसके शरीर के, उसकी आत्मा के हिस्से नहीं है, वह तो उनका अंग है, इन सबसे उसे गहरा लगाव है, प्रेम के स्तर का। पर्वत भी अपने हैं, पर्वतवासी भी, लहरें भी अपनी हैं, उन पर नाव खैनेवाले नाविक भी, आकाश भी अपना है। इसे नापने वाले पक्षी भी, उनके उदात्त राष्ट्र प्रेम में ये सब भी शामिल हैं, जो स्थानीय नहीं हो सकता, वह राष्ट्रीय भी नहीं हो सकता। सुब्रह्मण्य भारती जी की एक कविता 'तमिलनाडु' को संबोधित है–

तमिलनाडु! यह नाम कान में पड़ते ही मन हिल उठता है मानो कोई मधुर गीत सुन।

पितृभूमि कहकर, सांस लेकर संबोधन करते ही प्राण शक्ति से भर उठते हैं। कावेरी, पालारू, मोरूने के प्रवाह से सजी देश की देह। नील सागर के तट पर खड़ी कुमारी तपस्विनी के अंतरीप से माल्यवंत गिरि तक गौरव की गाथाएं हैं, कंबन तथा शिलप्पदिकारम् जैसे गुणियों के रचे काव्यरत्नों की मालाएं भूषण हैं।

बाघ और मछली की लांछनयुक्त पताका श्रीलंका, फिलीपींस और जावा तक फहरी। अंधकार भेदी का लिंग-रण के बांके भट इसी धूल में लोट-लोट कर बड़े हुए थे ज्ञान, बनिज, संस्कृति के वाहक यहीं के चीन, मलाया, ब्रह्मदेश तक फैल गए थे।

सुब्रह्मण्य भारती के रचना-संसार में देश-प्रदेश, देशवासी, खेतिहर मजदूर, काश्तकार, लेखक-कवि, शिल्पकार, वन-वन में विचरण करनेवाले प्राणी, वनवासी, नदियां, पठार, पहाड़, गौरव गाथाएं, संगी-साथी, इतिहास, वर्तमान और आनेवाले समय की आहट अलग से पहचानी जा सकती है। किसी भी देश के ज्ञानी, संस्कृति-वाहक, बनिज ही उस देश की असली पहचान होते हैं। कहा गया है न–''राजा केवल अपने देश में सम्मान पाता है पर ज्ञानी, साहित्यकार, लेखक का सम्मान दूर तक होता है।'' आज के संदर्भ में इससे सहमति असहमति हो सकती है। सुब्रह्मण्य भारती, भगवान कृष्ण के उपासक थे। जब-जब जीवन की आपा-धापी से वे ऊब जाते, जब-जब गोरी सरकार से लोहा लेते, वे पस्त-हिम्मत से जाते, वे अपने आराध्य का द्वार ही खटखटाते, बकलम सुब्रह्मण्य भारती–''जिस तरह पलकें आंखों की रक्षा करती है, उसी तरह कृष्ण भी हमारे संरक्षक हैं। कभी साथी तो कभी मंत्री, कभी गुरु तो कभी मार्गदर्शक बनकर वे सदा हमारी सहायता करते हैं।''

हमारे देश को सुब्रह्मण्य भारती की रचनाओं के मार्फत ज्यादा अच्छी तरह से पहचाना जा सकता है। किसी भी देश को उसके निवासियों, उस देश को गढ़ने वाले मनीषियों, वहां के लेखकों, किसान, मजदूरों, नदी, पहाड़ों के बिना नहीं जाना जा सकता। भारती जी का राष्ट्रवाद व्यापक संदर्भ को समेटता है। हम एक आंख बंद कर कैसे सब देख सकते हैं, जबकि दो-आंखें भी इसके लिए नाकाफी हैं–''स्वागत नवीन भारत स्वागत। नवजन्म प्राप्त हे पुराचीन भारत, स्वागत। हे तीस कोटि जनता की साझी निधि, स्वागत। हे जग के अचरज, हे अनुपम सब विधि, स्वागत। अब कौर किसी के मुंह का झपटे तो?'' अब और किसी दबते को कोई डपटे तो? भाई के दुःख असहाय हाय भर-भर तकना/जीवन अब तक जैसा था वैसा रह सकता/अब निपट असंभव है, रूत बदली-बदली है/यह भूमि रम्य उद्यानों से संवर चली है/इन आदिगंत खेतों से भरी-पूरी धरती/अनगिनत अन्न-फल औषधियों से घर भरती/बारहों मास फल लगते रहते सुविधागत/हे पुनर्जात भारत स्वागत। अब कहीं कोई भी भूखा रह न जाए–ऐसा विधान कर दो, कर दो पक्का उपाय/उस नवनिधान की रक्षा का यह भूख-जगह/मेटो! हम सब धरती के शासक हैं युगपत! भारत नवीन तेरा स्वागत।

□

भारती के साहित्य की स्त्री संवेदना

के. वत्सला 'किरण'

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती तमिल साहित्य-क्षेत्र में एक पथ-प्रदर्शक हैं। अपनी प्रेरणादायक कविताओं के माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता का आह्वान, सामाजिक कुरीतियां जैसे जाति-पांति, स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार आदि का खंडन किया तथा नारी-मुक्ति की आवाज को बुलंद किया। अपनी कविताओं की सादगी के कारण वे शिक्षित तथा अशिक्षित लोगों के बीच समान रूप से लोकप्रिय हुए।

स्त्री और पुरुष समाज के दो अनिवार्य अंग होते हुए भी शुरू से ही स्त्री को समाज में पुरुष से कम दर्जा ही दिया जाता था, लेकिन बाद में उनकी स्वतंत्रता छीनी गई और उनके साथ गुलामों का सा व्यवहार होने लगा। 18वीं, 19वीं शताब्दियों में राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, महा गोविंद रानडे, रामकृष्ण, विवेकानंद, रामलिंग अडिगळार आदि ने नारी-मुक्ति के लिए प्रयत्न किया। इन लोगों ने सुब्रह्मण्य भारती को बहुत प्रभावित किया। भारती का जमाना विश्व भर में नारी-मुक्ति की भावना के जागरण का समय था।

स्वामी विवेकानंदजी की शिष्या सिस्टर निवेदिता से भारती को बहुत प्रेरणा मिली। निवेदिता जी ने नारी मुक्ति के लिए बहुत काम किया है। राष्ट्रीय कांग्रेस की मीटिंग में मुलाकात हुई, तो निवेदिता जी ने भारती से पूछा कि क्यों अपनी पत्नी को साथ नहीं लाये? भारती ने उत्तर दिया कि हमारी प्रथा के अनुसार इस तरह के सार्वजनिक स्थानों में स्त्रियों का आना मना है। तब निवेदिता जी ने कहा–''समाज के आधे लोग जब तक दूसरे आधे को गुलाम बनाए रखेंगे, तब तक उस समाज को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी।'' उन्होंने आगे कहा कि पत्नी का बाएं हाथ पकड़ें और शरीर के बाएं हिस्से में स्थित हृदय में उसे देवता मानें।

भारती पर इन शब्दों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। भारती भारत को जंजीरों में जकड़ी अपनी माता, दुःखी भारतमाता के रूप में देखने लगे, जिनकी बेड़ियां तोड़ना अनिवार्य है। तमिल में लिखी उनकी नारी-मुक्ति की ओजपूर्ण कविताएं विश्व भर की अनेक भाषाओं में अनूदित हुई हैं।

भारती के समय में भारतीय संस्कृति के अनुसार पति की अनुपस्थिति में पत्नी का घर से बाहर निकलना मना था। उसे आंखें मूंदकर पति तथा ससुराल के बड़ों के आदेशों का पालन करना था। बाल्यावस्था में ही लड़की की शादी होती थी और बालिग होने से पहले ही बच्चों को जन्म देती थी। चाहे घर हो या बाहर, उसे अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का अधिकार नहीं था। पति या

ससुराल के अन्य सदस्यों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों को उसे मौन रूप से सहना पड़ता था। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक समाज या परिवार में नारी की यही दशा थी।

ऐसे समय में भारती ने अपनी कविताओं के द्वारा नारी-मुक्ति के संबंध में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया। उनकी राय में नारी सशक्तीकरण के द्वारा ही एक राष्ट्र का विकास संभव है। भारती ने हमारे पौराणिक ग्रंथों एवं वेदों का उदाहरण देकर यह बात स्पष्ट की कि जहां नारी का सम्मान होता है, वहीं देवता का वास होता है–''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।''

उन्होंने बाल-विवाह का सख्त विरोध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। उस जमाने में भारतीय समाज में विधवा की दशा बड़ी दयनीय थी। भारती ने सती प्रथा का भी विरोध किया। उन्होंने यह साफ बताया कि वेदों में इन बातों का समर्थन नहीं है।

''अटुप्पदुं पेण्कळुक्कु पटिप्पेदर्कु''

(चूल्हा जलानेवाली नारी को शिक्षा की क्या आवश्यकता है?)

भारती ने इस कथन का विरोध किया और नारी-शिक्षा का समर्थन किया। भारती ने कहा कि स्त्रियों को भी समाज में पुरुषों के बराबर हक देना है। उन्हें भी राजनीति में भाग लेने तथा उच्च पदों पर अलंकृत करने का अधिकार देना है। अपनी कविताएं- 'पेण्गळ विटुतलै' (नारी-मुक्ति), 'पुदुमैप्पेण' (नव युग की नारी), 'पेण्मै वाष्ग' (नारीत्व की जय हो), 'विटुतलैक्कु मगळिर्' (स्वतंत्रता के लिए नारियां), 'इन्नुं ओरु मुर्ै' (और एक बार), 'नेञ्जिर्कु नीतियुं' (मन को नीत) आदि में उन्होंने अपनी नारी संबंधी चेतना को अभिव्यक्त किया। उन्होंने केवल कथनी में ही नहीं, करनी में भी अपने इन विचारों को कियान्वित किया। अपनी पत्नी चेल्लम्मा तथा दोनों बेटियों को घर की चारदिवारियों से बाहर निकलने की प्रेरणा दी। अपनी पत्नी के हाथ में हाथ डालकर बाहर निकले, जो उन दिनों कल्पनातीत था।

'एन्तनेरमुं उन मैय्यइ' (हमेशा तुम्हारा प्यार) नामक कविता में भारती नारी-मुक्ति तथा समाज में उसे ऊंचा स्थान दने की बात कहते हैं।

अपनी कविता 'पुदुमैप्पेण' (नव युग की नारी) में वे अपनी कल्पना में विद्यमान नवयुग-नारी के गुणों का चित्रण करते हैं कि, ''नवरात्रि के समय सजानेवाली गुड़िया के समान रहनेवाली नारी को गुंबद के ऊपर चढ़ाया, रसोई घर में चौबीसों घंटे तप करनेवाली नारी को महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाली बनाया, घर रूपी पिंजड़े में बंद नारी को दो पंख देकर उड़ने दिया।''

पुरुष की गुलाम बनकर रहनेवाली नारी को, उसके बराबरवाली बनाया।

इस कविता में भारती तत्कालीन नारी की दशा का चित्रण करते हुए बताते हैं कि उनके नवयुग की नारी ने किस तरह नारी को उस दीन दशा से ऊपर उठाकर सम्माननीय पद दिया।

भारती कहते हैं–''आणुं पेण्णुं निगर एनक्कोळवदाल अरिवियल ओङ्गि इवैयकं तषैक्कुम।''

अर्थ–स्त्री और पुरुष को बराबर मानने से विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति होगी और इस संसार का विकास होगा।

भारती की पुदुमैप्पेण किसी भी बात में पुरुष से कम नहीं है। वह सदियों से जकड़ी बेड़ियों को तोड़कर बाहर निकलने में समर्थ है। भारती उसे शिव से उत्पन्न, मानव जाति की उद्धारक शक्ति के रूप में देखते हैं जो नए विज्ञानों का अध्ययन कर आकाश को भी अपने अधीन करेगी, संसार

भर का भ्रमण कर नए आविष्कारों और अध्ययनों की खबर लाकर भारत को एक महान देश बनाएगी। उसे नियंत्रित करनेवाले पुराने नियमों और अंधविश्वासों को धैर्य के साथ नष्ट करेगी। सिर ऊंचा करके पति के हाथ में हाथ डालकर, दृढ़ निश्चय, सीधी नजर, सीधी चाल और आत्मविश्वास से आगे बढ़ेगी। वह शिक्षा के शिखर तक पहुंचकर अपने आविष्कारों द्वारा मानव जीवन को सुगम बनानेवाले रास्ते दिखाएगी। नारी को घर के चार दीवारों के अंदर रहकर केवल पुरुष और परिवार की सेवा करने लायक समझनेवाले पुरुष वर्ग उसकी शक्ति देखकर लज्जा से सिर झुकाएंगे।

भारती ने एक ऐसे समय में नारी-मुक्ति के लिए आह्वान दिया था जब भारतीय नारी के अस्तित्त्व की कोई पहचान नहीं थी। भारती की रचनाएं, उनके गीत नारी-जागरण के आह्वान थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि नारी सशक्तीकरण के द्वारा ही एक देश की प्रगति संभव है। उनके गीतों ने नारियों को बेड़ियां तोड़कर बाहर निकलने तथा समाज में समान अधिकार के लिए आवाज उठाने के लिए प्रेरित किया। उनका मुख्य उद्देश्य नारी पर पुरुषों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों से उसे मुक्ति दिलाना था।

आज की नारी को देखने पर लगता है कि भारती ने अपनी कविता 'पुदुमैप्पेण' में जो कुछ कहा है, वह उनकी भविष्यवाणी थी। उन्होंने सालों पहले अपनी कल्पना में, सपने में जो कुछ देखा, वह आज साकार हो गया है। आज की भारतीय नारी किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नहीं है। कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स जैसी नारियां विज्ञान एवं अनुसंधान के क्षेत्र में पुरुषों से भी आगे बढ़ चुकी हैं। आज हवाई जहाज चलानेवाली, व्यापार, विज्ञान आदि क्षेत्रों में प्रथम श्रेणी में रहकर देश-विदेश में भारत का सर ऊंचा करनेवाली, फौज में काम करनेवाली नारी-रत्नों की भरमार है।

भारती आरंभ से ही नारी-मुक्ति के समर्थक थे। केवल बोलने तक सीमत न कर उन्होंने अपने परिवार से ही उन्हें लागू करना शुरू किया। भारती की राय में स्त्री-पुरुष समाज की दो आंखें हैं। समाज के आधे लोगों को शिक्षा से वंचित रखें तो दूसरा हिस्सा भी अंधकार में डूब जाएगा। उत्तर भारत की भाषाओं का ज्ञान उन्हें उत्तर में प्रचलित नारी-मुक्ति के कार्यों का समर्थक बनाया। उनके अनुसार नारी में स्वतंत्रता की भावना जगाने के लिए उसमें देश-भक्ति, स्वावलंबन, निडरता आदि भावनाएं जगानी है। अगर देश की उन्नति चाहते हैं तो पहले-पहल नारी को अपनी महानता और शक्ति से अवगत कराना है। नारी-स्वतंत्रता के लिए व्यवसाय के क्षेत्र में उसकी स्वतंत्रता, पिता की संपत्ति पर पुत्री को भी समान अधिकार, विवाह की स्वतंत्रता, विधवा-विवाह आदि पर नियम लागू होना चाहिए। देवदासी प्रथा, सती प्रथा आदि का अंत करना चाहिए। अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से भारती ने इन बातों पर जोर दिया।

'मिळकायुप्पष़ सामियार' (मिर्ची स्वामिनी) नामक कहानी में अपने आप को मिर्ची स्वामिनी नाम देनेवाली एक संन्यासिनी स्त्री-स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करती है। इस कहानी के माध्यम से नारी की स्थिति में होनेवाले तत्कालीन परिवर्तनों पर प्रकाश डाला है। अपनी कहानी द्वारा भारती ने जनता में जागरण उत्पन्न करने का प्रयास किया है।

'पेण् विटुतलै' (नारी-मुक्ति) नामक लेख में भारती ने लिखा है कि अन्य देशों में नारी को मतदान का अधिकार मिला है, जिसका मतलब है कि नारी की उन्नति का आरंभ हुआ है। उस लेख के मुख्य पात्र देववल्ली को उसके पति ने जो स्वतंत्रता दी है, उसके माध्यम से भारती कहते हैं कि

पुरुष स्त्री को स्वतंत्रता देने लगा है, जो एक अच्छा लक्षण है। इसमें पुरुष-लोग स्वयं मानते हैं कि स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा बुद्धिशाली हैं, अतः आजादी के बारे में चर्चा करने उन्हें विलायत ले जाएं तो जल्दी आजादी प्राप्त होगी। देववल्ली नामक पात्र के द्वारा वे नारी-स्वतंत्रता की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं।

भारती के अनुसार सदियों से गुलामी का जीवन जीनेवाली नारियों को शिक्षा द्वारा जागृत कर उन्हें पुरुषों के बराबर सम्मान दिलाना ही नारी मुक्ति है। 'मातरगळिन सुतन्तिरं।' (नारियों की स्वतंत्रता) नामक लेख में भारती व्यक्त करते हैं कि नारी को कोई स्वतंत्रता नहीं देगा, अगर वह स्वतंत्रता चाहती है तो उसे स्वयं वह प्राप्त करना है।

भारती की राय में हमारे पूर्वजों ने स्त्री-पुरुष पर जोर देने के लिए ही मंदिरों का निर्माण किया है। अर्धनारीश्वर की परिकल्पना इसी तत्त्व के आधार पर है। मगर स्वार्थी पुरुषों ने अपनी सुविधा के लिए अपनी इच्छा के अनुसार उसकी व्याख्या की। भारती कहते हैं कि इस स्थिति में परिवर्तन लाने पर ही देश की उन्नति संभव है। 'तमिष नाट्टिन विषिप्पू।' (तमिलनाडु का जागरण) नामक लेख में उन्होंने तमिलनाडु की नारियों को नारी-मुक्ति के लिए धर्मयुद्ध करने का आह्वान देते हैं।

'विटुतलै मुत्तम्मा' (मुक्ति-मुत्तम्मा) नामक कहानी में वेणु मुदलियार नामक व्यक्ति नारी-मुक्ति के लिए एक दल बनाता है। घरों के पुरुष लोग ही अपने घरों की स्त्रियों को उसमें शामिल होने की प्रेरणा देते हैं। भारती की राय में स्त्री ही स्त्री की मुक्ति के मार्ग में रोड़ा अटकाती है, इसलिए पहले उन्हें सुधारना चाहिए। कथा की नायिका मुत्तम्मा पूरी स्वतंत्रता के साथ कार्य करती है। इस पात्र के द्वारा भारती नारी-मुक्ति के संबंध में अपनी राय प्रकट करते हैं। भारती ने उस लेख में नारी मुक्ति के लिए आवश्यक कुछ मुख्य बातों को उल्लेख किया है। वे निम्नलिखित हैं–

1. काम करने की स्वतंत्रता : भारती के अनुसार नारी को अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी काम चुनने का अधिकार होना चाहिए। उसे राजनीति में भाग लेने तथा ऊंचे पदों को अलंकृत करने का हक देना चाहिए।

2. संपत्ति पर अधिकार : पिता की संपत्ति पर पुत्री को भी पुत्र के समान बराबर हिस्से का अधिकार होना चाहिए। नारी की पराधीनता का मूल कारण संपत्ति पर उसका अधिकार न होना ही है। 'पेण्' (नारी) नामक लेख में उन्होंने लिखा कि पति की मृत्यु के बाद उनकी संपत्ति पर उनकी विधवा पत्नी का पूरा अधिकार होना चाहिए।

3. विवाह : विवाह दो व्यक्तियों का मिलन है। रूसी प्रथा से आकर्षित होनेवाले भारती चाहते हैं कि भारत में भी शादी के रीति-रिवाजों में परिवर्तन लाना है। वे बाल-विवाह, बहुपत्नीत्व आदि का विरोध करते हैं और उनमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता पर जोर देते हैं। शादी के संबंध में लड़की की राय, विवाह विच्छेद का अधिकार आदि के बारे में 'आरंप पटिकळ्' (आरंभ की सीढ़ियों) नामक लेख में उल्लिखित है।

4. विधवा-विवाह : राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज, एनी बेसेंट का थियोसोफिकल सोसाइटी, जस्टिस रामदेव रांटे का प्रार्थना समाज आदि विधवा-विवाह के समर्थक थे। भारती की राय भी यही है कि विधवा का विवाह करना उचित है। उनके अनुसार विधवाओं के कष्टों को दूर करने

के लिए उन्हें पुनः विवाह करना चाहिए। भारती कहते हैं–''पति की मृत्यु के बाद पत्नी को दुबारा विवाह करने से रोकना नहीं चाहिए।''

उनकी राय में दूसरी शादी के वक्त जाति, धर्म, वर्ग आदि को महत्त्व नहीं देना चाहिए। उन्होंने अपनी कहानियों में तीन तरह के विधवा-विवाहों का चित्रण किया है–ब्राह्मण जाति में हुआ विवाह, हिंदुओं में ही भिन्न जातियों के बीच का विवाह तथा हिंदू-मुसलमान के बीच का विवाह। 'चंदिरिकयिन कथै' (चंद्रिका की कहानी) में विशालाक्षी नामक बाल विधवा की भाभी उसके दूसरी शादी करने की प्रार्थना करती है। 'राजपुत्तिर कन्निकैयिन कथै' (राजपुत्र कन्या की कथा) में भारती ने यह स्पष्ट किया है कि अकबर के जमाने से ही विधवा-विवाह की प्रथा थी। भारती कहते हैं कि नौजवानों को विधवाओं से प्रेम-विवाह करने के लिए तैयार होना चाहिए।

5. विवाह-विच्छेद : भारती की राय में विवाह-विच्छेद में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए, लेकिन साथ निभाना असंभव हो जाने पर विच्छेद करना ही बेहतर है। इस कार्य में भी स्त्री-पुरुषों का बराबर अधिकार होना चाहिए।।

6. बाल-विवाह : भारतीय समाज में लड़की की ऋतुमति होने से पहले विवाह कराने की प्रथा प्रचलित थी। भारती ने इसका सख्त विरोध किया। अपने लेख 'रुदिमति विवाहम्' (ऋतुमति विवाह) में भारती ने यह बात व्यक्त की है। उचित उम्र में लड़की का विवाह संपन्न होने पर वे उसकी खूब प्रशंसा करते थे। कम उम्र की लड़कियों का विवाह करानेवालों के बारे में भारती कहते हैं कि इस तरह का हृदयहीन कार्य करनेवाले एक हजार सालों तक गुलामी की बेड़ियों में जकड़कर नष्ट हो जाएंगे।

7. सती : पुराने जमाने में युद्ध में पति की वीर मृत्यु होने पर उनकी पत्नी को भी पति की लाश के साथ जलाया जाता था। यह प्रथा 17-19 शती में प्रचलित थी। उनकी संतान को पिता के साथ-साथ माता को भी खोना पड़ता था। 'तुलसी बाय एनर् राजपुत्तिर कन्निकयिन चरित्तिरं' (तुलसी बाय नामक राजपुत्र कन्या की कथा) में भारती ने अकबर के सैनिक अब्बास खान द्वारा बाल विधवा तुलसी बाई को सती से बचाने का चित्रण है। उसके बाद अकबर द्वारा सती-निरोध का कानून लागू करने का वर्णन भी है। इस कहानी के द्वारा भारती सती प्रथा के प्रति अपना विरोधी भावना व्यक्त करते हैं।

8. देवदासी प्रथा : भारतीय समाज में अति प्राचीन काल से ही देवदासी प्रथा प्रचलित थी। यह कला की वृद्धि के साथ-साथ व्यभिचार को भी बढ़ावा देता था। इसके कारण कई परिवारों का नाश हुआ है। 19वीं शती के आरंभ में शुरू हुए ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि ने नारी-जागरण द्वारा इसे दूर करने का प्रयास किया।

तमिलनाडु में 1892 में स्थापित 'मद्रास हिंदू सोशल रिफॉर्म एसोसिएशन' (Madras Hindu Social Reform Association) ने उसके सदस्यों से यह शपथ दिलाया कि चदुरकच्चेरी (देवदासियों का नाच-गान) का आयोजन नहीं करेंगे, उनमें भाग नहीं लेंगे, व्यभिचार नहीं करेंगे। इस तरह उन्होंने देवदासी प्रथा समाप्त करने की कोशिश की। 1904 में सुब्रह्मण्य भारती और उनके मित्र उस संस्था के सदस्य बन गए। भारती ने देविदासियों से शादी कर पारिवारिक जीवन बिताने का अनुरोध किया। उनकी प्रार्थना मानकर एट्टय्यपुरम् की वळ्ळिक्कण्णम्मा नामक देवदासी ने विवाह कर घर बसाया।

पांचाली शपथम्

भारती ने महाभारत की एक घटना को लेकर 'पांचाली शपथम्' (द्रौपदी का शपथ) की रचना की, जिसमें दुःशासन द्वारा पीड़ित, अपमानित, बंधित द्रौपदी इस रचना की केंद्र बिंदु है। इसके भाग : एक 1912 में तथा भाग : दो 1924 में प्रकाशित हुए। इसमें स्पष्ट अभिव्यक्त है कि पांचाली ही भारत है। पांचाली की स्वतंत्रता ही भारत की स्वतंत्रता है। इस तरह पांचाली नामक एक नारी, देश को अंग्रेजों से मुक्त करने तथा नारी-जाति को सामाजिक कुरीतियों, पारिवारिक पीड़नों से मुक्ति दिलाकर आत्म सम्मान प्रदान करने का आधार बनती है। पांचाली एक सहनशील, सबसे प्यार करने वाली तथा सुशील नारी है। पांच पतियों के होते हुए भी भरी सभा में दुःशासन उसका घोर अपमान करता है। पंडितों एवं गुरुजनों से भरी सभा में एक ने भी उसपर होने वाले अत्याचार पर उंगली नहीं उठायी। तब वह शांत नारी क्रोध ज्वाला बन कर भभक उठी। उसने घोर शपथ लिया कि जिस बाल को पकड़ कर खींचते हुए दुःशासन उसे सभा में लाया, उसी दुःशासन के रक्त से सने हाथ से ही वह अपना बाल गूंथेंगी। तमिल में एक कहावत है–''साधु मिरण्टाल काटु कोळळाद्'' (साधु को क्रोध आए तो पूरा जंगल भी उसे संभाल नहीं पाएगा) द्रौपदी के संबंध में भी यही बात सच निकली। जब नारी रौद्र रूप धारण करती है तो वह महाशक्ति बनती है और शत्रु का संहार करती है। द्रौपदी का यही क्रोध कुरुक्षेत्र युद्ध और कौरवों के नाश का कारण बना।

द्रौपदी भारतीय नारियों का प्रतीक है जो शोषण का शिकार है। वह परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी भारतमाता का प्रतीक है जो स्वतंत्रता से वंचित है। वह परंपरा के नाम से शोषित भारतीय नारी की प्रतिनिधि है। वह अच्छाई और सत्य का प्रतीक है, दैवी शक्ति का साक्षात् रूप है, जो दुष्ट निग्रह के लिए धरती पर अवतरित हुई है।

द्रौपदी की कथा के माध्यम से भारती यह दिखाना चाहते हैं कि पुराने जमाने में भारत में स्त्रियों पर कितना बड़ा अत्याचार होता था। एक महारानी की यह दशा है तो साधारण नारी का कहना क्या? अबला नारी में उसके खिलाफ आवाज उठाने की शक्ति नहीं है। वह नारी महान बुद्धिमती है। वह पूछती है कि युधिष्ठिर ने जुए में पहले अपने-आप को हारा या द्रौपदी को? यदि स्वयं को हारा तो उसे द्रौपदी को पण में रखने का अधिकार नहीं है। लेकिन सभा में उसके पक्ष में बोलने की हिम्मत किसी ने नहीं दिखाई, जिसके कारण दुष्ट कौरवों का सर्वनाश हुआ।

इस तरह भारती ने अपनी रचनाओं में नारी-मुक्ति की अनिवार्यता पर जोर दिया है। उनकी नारी-पात्र नवयुग की नारियां हैं। भारती ने नारी में जिन गुणों को देखना चाहा, उन सबका आविष्कार अपने पात्रों द्वारा उन्होंने किया। भारती की रचनाओं का अध्ययन करने पर पता चलता है कि हमेशा नारी ही उनकी रचनाओं की केंद्रबिंदु रही। नारी-मुक्ति तथा सामाजिक कुरीतियों का अंत करने के लिए अश्रांत परिश्रम करनेवाले भारती भारत का गर्व है। जिस समाज और नारी स्वतंत्रता की कल्पना की और अपनी रचनाओं में चित्रित किया, वह आज सच निकला है।

□

भारत के नवनिर्माण का स्वप्न

एम. शेषन्

सुब्रह्मण्य भारती का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सन् 1882 में हुआ और उनकी मृत्यु बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सन् 1921 में हुई। उस युग का समय औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के लिए बेहद कठिन संघर्षों और इतनी ही कठोर भावनाओं का समय था। ऐसे ही यातना और संघर्ष के कठिन समय में देखे जाते हैं, मुक्त वातावरण में जीने के सपने। इस समय का संबंध हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन में घटी दो बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का समय भी है। इनमें से पहली घटना है—उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का नवजागरण और दूसरी घटना है—देश के स्वाधीनता आंदोलन का प्रारंभ। नवजागरण के सूत्रधार और मनीषियों अथवा स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े स्वतंत्रता सेनानी तथा देश का विराट जनगण यातना और संघर्ष के बीच सपने उन्होंने भी देखे—औपनिवेशिक दासता की मुक्ति के सपने और मुक्ति के उपरांत एक नए भारत के, स्वतंत्र भारत के अपनी आकांक्षाओं और अपने सपनों के अनुरूप भारत के नवनिर्माण के सपने।

नवजागरण के मनीषियों का सपना था बीसवीं सदी में एक नए और आधुनिक भारत को ले आने का सपना। ऐसा भारत, जो मध्ययुगीन रूढ़ विचारों और विश्वासों से मुक्त एक विवेकशील वैज्ञानिक मानसवाला भारत, ऐसा भारत, जो किसी भी विचार को आंख मूंदकर मान लेने के बजाय अपने विवेक से जांचने-परखनेवाला भारत हो, जो तर्क करने और प्रश्न उठानेवाला हो, जिसकी आस्था जनतांत्रिक व्यवस्था पर हो, जिसके तहत प्रत्येक देशवासी को जीने और विकास करने के समान अवसर मिले, जिसकी बुनियाद समता और सामाजिक न्याय पर टिकी हों। जिस समय भारत के लोग शिक्षित हों, जो वैश्विक ज्ञान-विज्ञान की प्रगति से परिचित हों और दुनिया के दूसरे देशों के साथ कदम बढ़ाकर चल सकें। वे चाहते थे कि इस नए भारत में धर्म का चेहरा मानवीय हो, धर्म से जुड़े पाखंडों और भेद से परे धर्म के जिस मार्ग पर देश के सभी लोग आपसी सद्भाव के साथ चल सकें। धर्म और समाज सुधार आंदोलनों का जो एक लंबा सिलसिला नवजागरण काल में चला, उसका उद्देश्य मध्ययुगीन भारत को एक प्रबुद्ध भारत के रूप में संस्कारित करना था। विषम और विपरीत परिस्थितियों में भी सुधार आंदोलनों ने देश के अनेक भागों में अपने निशान छोड़े थे। कुछ ऐसे सकारात्मक जीवन-मूल्य और सामाजिक विचार में छनकर आए, जो आगे के समय और आगे की पीढ़ियों के लिए विरासत बने।

नवजागरण की कोख से ही भारत के स्वाधीनता आंदोलन का भी जन्म हुआ। यह स्वाधीनता आंदोलन शनैः-शनैः व्यापक और विस्तृत भी हुआ। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक इसकी जो गहमागहमी रही, उसके क्रम में दमन, शोषण और उत्पीड़न के बीच में देश की जनता और स्वाधीनता सेनानी पस्त नहीं हुए। अभूतपूर्व त्याग, बलिदान और कुर्बानियों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने प्राणों की बलि दी। इस स्वाधीनता आंदोलन से भी हमें स्वतंत्रता तथा धर्मनिरपेक्षता के मूल्य मिले। इस पूरे दौर में भी सपने देखे गए आजाद भारत का सपना, आजाद भारत को देश के व्यापक, जनसमाज की मनोकांक्षाओं के अनुरूप एक नए रूप में ढालने का सपना।

वस्तुतः ये आजादी और आजाद भारत के लिए देखे गए सपने ही थे, जिनको साकार करने के हेतु त्याग और बलिदान के प्रेरक उदाहरण सामने आए।

सुब्रह्मण्य भारती नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन के इस माहौल में ही जनमे, पले और बढ़े। इनकी तमाम सकारात्मक विरासत को सहेजे और संभाले हुए ही तमिलनाडु के काव्य मंच पर आए और आजीवन इस स्वतंत्रता संग्राम को ही अपने पूरे निहितार्थ के साथ उन्होंने अपनी कविता एवं गद्य रचनाओं में सजीव किया और अपने गंभीर विचारात्मक लेखन में भी उन्होंने उसे विशद किया। अपनी पत्रिका 'इंडिया' में उन्होंने स्वराज्य संग्राम में देश की विजय को अपनी एकमात्र अभिलाषा बताया था। भारती की स्वाधीनता की अपनी परिकल्पना थी। स्वाधीनता का अर्थ उनके लिए राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण मात्र नहीं था। वे चाहते थे कि स्वाधीनता आंदोलन साधारण जनता के आर्थिक, सामाजिक हित से जुड़े सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को साथ लेकर चले, उसमें राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ जनता की आर्थिक-सामाजिक स्वतंत्रता भी शामिल हो। वे साम्राज्यवाद के अलावा सामंतवाद और पूंजीवादी विरोधी मोर्चे पर भी चले। उनकी मान्यता थी कि यदि भारत का गरीब किसान सुखी नहीं है और आजादी को अपने दायरे में लाए बिना महज सत्ता का हस्तांतरण तक भ्रमित स्वतंत्रता का कोई मतलब नहीं है। भारती की 'अखिल और पंगु' नामक कहानी में वे कहते हैं कि ऐसी स्वतंत्रता से उसका न आना ही बेहतर होता। स्वाधीनता आंदोलन के प्रति समर्पित होते हुए भी भारती ने अपनी रचनाओं में और अपने विचारात्मक गद्य लेखन में इसकी दशा और दिशा को सुधारने के लिए बार-बार स्वाधीनता आंदोलन के कर्णधार को आग्रह किया था। उनकी आलोचना की और उनसे अपने असहमति भी व्यक्त की।

भारती के उन स्वप्नों पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट है कि उनका प्रिय सपना तो स्वाधीनता संग्राम में भारत की विजय या देश की स्वतंत्रता था। परंतु भारती के विचारों का अनुशीलन गंभीरतापूर्वक करें तो स्पष्ट है कि वे मात्र स्वतंत्र भारत के ही आंकाक्षी नहीं थे। वे एक विजनरी (visionary) कवि थे, युग द्रष्टा थे। भारत की स्वाधीनता प्रभुत्वशाली वर्गों के हितों तक ही सीमित रहे, ये स्वतंत्र भारत को जनतांत्रिक आस्थाओं वाले भारत के रूप में देखना चाहते थे। भारती स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं के वर्ग-चरित्र से भलीभांति परिचित थे, और इसी नाते वे स्वाधीनता आंदोलन को एक जनधर्मी आंदोलन के रूप में और स्वतंत्र भारत को सही अर्थों में जनतांत्रिक भारत के रूप में उभरते देखना चाहते थे।

भारती का एक सपना यह भी था कि यह स्वतंत्र और जनतांत्रिक भारत बुनियादी तौर पर धर्म के क्षेत्र में समरसता का भाव रखनेवाला भारत भी हो, वहां विविध धर्मों के लोग बिना किसी भेदभाव के समान हैसियत वाले नागरिकों के रूप में रह सकें। वे स्वाधीनता आंदोलन की राह में सांप्रदायिक विग्रहों को सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखते थे।

भारती का सपना इससे भी आगे समाजवादी भारत का था। कारण, उनका विश्वास था कि समाजवादी विचारधारा के तहत ही भारत एक स्वतंत्र जनतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष देश के रूप में प्रगति कर सकता है, अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकता है, सामाजिक विषमता, सांप्रदायिक संकीर्णता तथा अज्ञान, जड़ता और रूढ़िवाद से उबर सकता है। निष्कर्षतः यह सपना स्वतंत्र भारत से शुरू होकर समाजवादी भारत के अभ्युदय का था।

भारती ने अपने निबंधों में लिखा था कि बीसवीं शताब्दी का भारत आर्थिक संग्राम का भारत होगा जिसमें सब मिलकर आर्थिक मुक्ति की लड़ाई लड़ेंगे। वस्तुतः भारती एक सुखी, विषमता रहित, प्रगतिशील समाजवादी आस्थाओं के भारत का सपना देखना चाहते थे। अपने इस सपने को साकार करने के लिए ही रचना और विचार दोनों आयामों पर वे आजीवन प्रतिपक्षी शक्तियों से संघर्ष करते रहे। भारती ने औपनिवेशिक गुलामी में ही जन्म लिया था और औपनिवेशिक गुलामी के दौर में वे हमसे अलग हुए। अपने सपनों के भारत को अपनी मानसिक

चक्षुओं से अपने समक्ष साकार होते हुए वे देख नहीं सके। सपनों की यह वसीयत अगली पीढ़ियों को सौंपकर वे हमसे विदा हुए।

भारत सन् 1947 में स्वतंत्र हुआ। राजनीतिक आजादी तो अवश्य मिली, पर वैसी ही, जिसकी आकांक्षा भारती ने कथित अर्थात् मात्र सत्ता का हस्तांतरीकरण ही हुआ। जनता के आर्थिक-सामाजिक हित जो स्वाधीनता आंदोलन में शनैः-शनैः हाशिए पर डाल दिए गए। विश्वास के नाम पर कुछ बदलाव जरूर हुए। परंतु वह विषम राहत उसका लाभ साधारण जनता को नहीं मिल पाया। समाज का बुनियादी ढांचा बरकरार रहा, इसी का नतीजा है कि आजादी के महज दस साल के भीतर ही इससे मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हो गई। देश विदेशी ऋण के जाल में फंसता चला गया। जन आक्रोश को दबाने के लिए दमन और उत्पीड़न का सिलसिला शरू हुआ। 1976 में समूचे भारत पर थोपा गया आपातकाल इसका एक उदाहरण है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण की नई नीति के साथ देश ने आर्थिक पराधीनता के एक नए युग में प्रवेश किया, उसकी आर्थिक संप्रभुता तक दांव पर लग गई। मात्र राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरीकरण वाली स्वतंत्रता जन के तंत्र की जगह संपत्तिशालियों और बल का तंत्र राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र और संप्रभुता संपन्न, परंतु विदेशी ऋण के जाल में फंसा अपनी आर्थिक संप्रभुता को दांव पर लगाए ऋण दाताओं के इशारों पर उठता-बैठता हमारा देश अपराधियों का भयावह चक्र एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ, यह हमारे राष्ट्रीय जीवन का वह परिदृश्य है, जो आज हमारी आंखों के सामने की सच्चाई है।

भारती भारत के दीन-दुखियों और दलित जनों को सुखी देखना चाहते थे। भारती नारी-मुक्ति के लिए जीवन भर कटिबद्ध थे। स्त्री समाज आज भी असुरक्षित अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। अन्याय और अत्याचार के शिकार हैं, बलात्कारियों की हवस का शिकार हो रही हैं, ऐसी हालत में मुक्ति की बात तो कोसों दूर है। पुरुष सत्तात्मक समाज का शिकंजा उनके गर्दनों पर पहले जैसा ही कसा हुआ है। नारी आज अधिक संख्या में अशिक्षित हैं। वे सामाजिक न्याय के लिए संघर्षरत हैं। दलित आजादी के चौहत्तर साल के बाद भी दमन और उत्पीड़न का शिकर बना हुआ है। भारती ने समाजवादी भारत का सुनहरा सपना देखा था। आज भी समाज में संपत्तिशालियों का, धनकुबेरों का, बाहुबलियों का, अपराधियों का, भ्रष्टाचारी राजनेताओं का ही वर्चस्व है।

जब भारती की प्रासंगिकता एक निर्विवाद सत्य है। अपनी समूची चिंताओं, समूची रचनात्मक सरोकारों के साथ भारती आज भी हमारे बीच जवित हैं, समकालीन बने हुए हैं। भारती यदि आज जीवित रहते, यदि अपनी आंखों से अपने सपने को ध्वस्त होते देख पाते तो वे किन अहसासों से गुजर रहे होते; इसका अनुमान लगाया जा सकता है। विडंबना तो यह है कि भारती इतिहास नहीं बन पाए, बल्कि इतिहास उन्हें हमारा समकालीन बनाए हुए है।

यह स्मरण रखना होगा कि भारती का सपना हवाई सपना नहीं था। वे जीवन के घोर यथार्थ के बीच से उपजे थे। वे जनसाधारण के पक्षधर थे। जनसाधारण को सुखी-संपन्न देखने के आकांक्षी थे। आनेवाला समाज गरीबों, दलितों और जनसाधारण का जमाना होगा-यह उनकी सदिच्छा मात्र नहीं था। वे उभरते हुए जनसंघर्षों को खूब समझते थे, उनके प्रत्यक्ष साक्षी रहे हैं। वे जनजागरण को समझते थे।

आज तो भारतीय समाज का नया चेहरा देखने को मिलता है। वैश्वीकरण और उदारीकरण का मुखौटा लगाए गरीबों को उभरने नहीं देता। एक स्वेच्छाचारी बाजारतंत्र-अपसंस्कृति का उबार, भोगवादी संस्कृति का उबार, मध्यवर्ग और गरीब, असह्य, दीन-दलितों को धमकी दे रहा है। संक्षेप में, आज के त्रासद संदर्भो के साथ भारती आज भी हमारे लिए समकालीन बने हुए हैं, प्रासंगिक हैं और प्रासंगिक बने रहेंगे। आशा तो करनी चाहिए कि इतिहास फिर से करवट लेगा और भारती के सपने साकार होंगे, तभी उनका महत्त्व हमारे सामने प्रत्यक्ष होगा। □

रूसी कलाकारों की दृष्टि में भारती

सेतुकुमार
रूपांतरकार : वी.के. बालसुब्रह्मण्य

रूसी विद्वानों ने सुब्रह्मण्य भारती की अंतरराष्ट्रीयता, विप्लवादिता और समदर्शिता का पर्याप्त अनुशीलन किया है। उनमें प्रो. चेलिशेव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने भारती की कविताओं की विशिष्टता दर्शायी है। चेलिशेव बहुमुखी प्रतिभाशाली हैं। उन्होंने 'आधुनिक हिंदी कविता' (1968), 'हिंदी साहित्य' (1968), 'निराला' (1978), 'आधुनिक भारतीय साहित्य' (1981) आदि कई ग्रंथों की रचना की है और साथ ही तुलनात्मक दृष्टि से भारती की रचनाओं का अनुसंधान भी किया है।

'भारतीय साहित्य के विकास में भारती की कविता ने नया मोड़ दिया'–शीर्षक से प्रो. चेलिशेव ने अनुशीलनात्मक विचार प्रकट किये हैं। कहते हैं–''चिरनिद्रा से जागृत होकर कई कवियों ने मातृभूमि का यशोगान किया है। देश भविष्य पर भी उनकी वाणी दृष्टव्य है। देश की स्वतंत्रता के लिए अनुकरणीय सिद्धांत, अन्य देशों का मार्गदर्शन आदि पर भी उनके विचार हैं। अनेक मनीषियों ने गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम से प्रेरणा प्राप्त की है। तद्नुसार उन्होंने देशवासियों का आह्वान किया कि प्राचीन गरिमामय काल की ओर वापस चलें। वे शारीरिक परिश्रम, चरखा, प्राचीन परंपरागत सामुदायिक व ग्रामीण जीवन आदि का गुणगान करते थे। उन लोगों ने वैज्ञानिक व औद्योगिक विकास के विरोध का रुख अपनाया था। उसी समय भारतीय कविताओं में राष्ट्र के आर्थिक विकास संबंधी बातें गूंज उठीं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'भारतवाणी' कविता में यह विचार प्रकट किया है कि यदि नवीन उत्पादक-साधनों को काम में लाएंगे तो हमारा सारा शारीरिक परिश्रम व्यर्थ हो जाएगा। ''परंतु उन दिनों में ही भारती ने अपनी कविता 'भारत देश' (1990) में भारत की उतरोत्तर उन्नति के लिए गंभीर व दृढ़ योजना प्रस्तुत की। इस प्रकार स्फूर्तिप्रद और जोशीली वाणी किसी भी भारतीय कवि ने प्रकट नहीं की थी। कुछ उदाहरण हैं पद (अनुवाद)–

जो बंग देश से होकर सागर में गिरते,
उन जल-मार्गों का मुख पश्चिम को मोड़ेंगे।
उस जल से ही मध्य देश में अधिक अन्न उपजाएंगे।
खोज लिया जाएगा, सोने की खानों को,
खोद लिया जाएगा, स्वर्ण हमारा होगा।

आठ दिशाओं में, दुनिया के हर कोने में-
सोने का अतुलित निर्यात हमारा होगा।
स्वर्ण बेचकर अपने घर में नाना वस्तु मंगाएंगे।
ऐसे यंत्र बनेंगे, कांचीपुरम बैठकर-
काशी के विद्वज्जन का संवाद सुनेंगे।
अस्त्र-शस्त्र का, कागज का उत्पादन होगा,
औद्योगिक, शैक्षणिक शालाएं निर्मित होंगी
छतरी बाड़े से खीसे से वायुयान तक-
अपने घर में ही तैयार कराएंगे हम।
कृषि के उपयोगी यंत्रों के साथ-साथ ही-
इस धरती पर वाहन भव्य बनाएंगे हम।
दुनिया को कंपित कर दें, ऐसे जलयान चलाएंगे।
मंत्र-तंत्र सीखेंगे, नभ को भी नाचेंगे।
अतल सिंधु की तल पर से होकर आएंगे।
हम उड़ान भर चंद्रलोक में चंद्रवृत का-
दर्शन करके मन को आनंदित पाएंगे[1]

प्रो. चेलिशेव ने तुलनात्मक दृष्टि से विचार करके कहा है कि भारतीय काव्य साहित्य की दृष्टि से देखें तो भारती के विचारों ने युगप्रवर्तक का काम किया है। वे कहते हैं–''भारत समुदाय की कविता अंतिम रचनाओं में से एक है। मेरी मान्यता है कि इसे उस कवि का राजनीतिक वसीयतनामा मानना चाहिए। इस पद में भारती क्रांतदर्शी होकर भविष्यत् का सुंदर चित्र खींचते हैं। भारत जब औपनिवेशिक प्रभुत्व से मुक्त होगा। उस समय की सुंदर कल्पना करके आनंदमग्न होकर कहते हैं–

तीस कोटि जन का समान अधिकार यहां की सब संयत पर,
अद्वितीय यह रूप देश का होगा जग के रंगमंच पर : तेरी जय हो।
क्षुधित दिख गया अगर कभी भी-
भारत भू का एक व्यक्ति भी-
हम विनष्ट कर देंगे, शाश्वत-
रह न सकेगा विश्व यह कभी : तेरी जय हो।

हम सब एक वंश वाले हैं।
व्यक्ति-व्यक्ति में भेद न कोई,
हम सब भारत के वासी हैं।
अंतर नहीं मूल्य के स्तर।
भाव न यहां सेव्यसेवक के
सब स्वामी हां, सब स्वामी।[2]

भारत के स्वतंत्र होने के पच्चीस वर्ष पूर्व ही भारती जी घोषणा करने लगे कि भारत स्वतंत्र हो गया और स्वेच्छा से समता का अधिकार देकर प्रजातंत्र का प्रचलन कर दिया है। इसका उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि ऐसे विचार 1947-50 के पूर्व भारतीय काव्य साहित्य में कहीं नहीं दर्शित होते। औपनिवेशिक शासन से मुक्त होने के पश्चात् ही अन्य कवि इस प्रकार के विचार प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकें। उदाहरण के रूप में रामधारी सिंह दिनकर का 'प्रजातंत्र उदय', बालकृष्ण शर्मा नवीन का 'हमारा भारत' आदि भारतीय कविताएं 1950 के आसपास रचित हैं। भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं के कवियों ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि कठोर संघर्ष व आंदोलनों से ही हम स्वतंत्रता पा सकते हैं। भारती की यही विचारधारा इन कवियों से बहुत पहले की है। इस पर भी प्रोफेसर चेलिशेव अपना मत प्रकट करते हैं–

''बीसवीं सदी के प्रारंभ में जोश से जागृत बंग कवि नजरुल इस्लाम ने आह्वान किया है कि जेल के सीखचों को हथौड़े चलाकर तोड़े, ताले तोड़ दें, तहखाने के दरवाजे खुला रख दें। हिंदी के कवि निराला जी सचेत करते हैं कि अत्याचारियों से करुणा की भीख न मांगे, द्रोही महाराजा जयसिंह को शिवाजी के माध्यम से कहते हैं कि अपनी मां की काया पर लगे अपमान के कलंक को अपने खून से तुमको मिटाना चाहिए। तभी सारे देशभक्त तुम्हें वीर मानेंगे और देश के उद्धारक मानकर तुम्हारा गुणगान करेंगे। (शिवाजी महाराज का पत्र, 1922) सन् 1908 को ही भारती 'अंग्रेजी प्रभु विंच का कथन व देशभक्त चिदंबरम का प्रत्युत्तर' शीर्षक कविता में कहते हैं–

अपने ही देश में पराधीन होकर न मिटेंगे-आगे न डरेंगे।
वंदे मातरम् मरणपर्यंत कहकर जयगान करेंगे।
क्या हम रोते रहेंगे-2 क्या हम मर्द नहीं हैं?
क्या हमारे लिए प्राण इतना प्यारा है?

आखिरी सांस तक उनका दृढ़ विचार था कि स्वतंत्रता संग्राम में अवश्य सफलता प्राप्त होगी। ये भारत माता रत्न माला कविता में घोषित करते हैं–

'धवल शंख फूंको सब जय जयकार करो
हमें न अब पीड़ा सहनी है, यह निश्चित है।
हमें प्राप्त होगी स्वतंत्रता, यह निश्चित है।'[3]

प्रो. चेलिशेव आगे कहते हैं कि भारती का दृढ़ निश्चित मत है कि स्वतंत्रता संग्राम में अवश्य विजय मिलेगी। सन् 1909 में भारती की अमर रचना 'स्वतंत्र पल्लु' कविता में स्वतंत्रता-प्राप्ति की जो कल्पना की थी, वह 1947 में सफल सिद्ध हुई। कैसी दूरदर्शिता थी भारत की। उन्होंने 'पल्लु' या जनसाधारण के गीत को शैली ने प्रजातंत्र के सारे रहस्य को भर दिया है। उनके विचार गांभीर्य का गुणगान किए बिना कैसे रह सकेंगे? भारती चाहते थे कि स्वतंत्रता प्राप्ति का अनुभव न केवल उच्च वर्गवालों को होना चाहिए, वरन् पीड़ित, दलित, शोषित वर्गवालों को भी होना चाहिए। उसी को भारती असली स्वतंत्रता मानते हैं। स्मरण रहे कि दूसरे किसी भारतीय कवि ने सन् 1909 में न भारत की स्वतंत्रता की कल्पना की थी, न उसके बारे में कोई रचना की थी। प्रस्तुत गीत में राजनैतिक स्वतंत्रता, सामूहिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता तीनों का समावेश है। इसे दर्शाने वाले पद के तीन अंश हैं–

नाचेंगे हम आनंद मगन हो नाचेंगे,
आनंद स्वराज मिला हम को, हम नाचेंगे।
दिन बीत गया है, ब्राह्मण को प्रभु कहने का,
गोरे फिरंगियों को हुजूर भी कहने का,
हमसे करके याचना हमारे ऊपर ही -
शासन करनेवालों की सेवा करने का॥

सर्वत्र यही चर्चा है अब हम हैं स्वतंत्र,
हर कंठ यही गाता है अब हम हैं स्वतंत्र।
हैं निर्विवाद भारत भू के जन-जन समान-
क्या ऊंच-नीच सब कहते हैं हम सब स्वतंत्र॥
हम शंख फूंककर जय-जय ध्वनि उच्चारेंगे-
धरणी के कोने-कोने में रब गूंजेगा हम नाचेंगे।

हम मुक्त कंठ से कृषि के वंदन गाएंगे।
उद्योगों के मस्तक पर तिलक लगाएंगे।
भक्षण करके भरपेट व्यर्थ जो रहते हैं-
उनको हम शब्द भर्त्सना भरे सुनाएंगे॥
ऊसर धरती में जल सिंचन से क्या होगा-
कोई न व्यर्थ कर्मों में समय गंवाएगा, हम नाचेंगे॥[4]

भारती ही प्रथम कवि हैं, जिन्होंने पहले पहल अक्तूबर 1917 की रूस में जो महान क्रांति हुई और जिसके फलस्वरूप सोशलिस्ट राष्ट्र रूस की स्थापना हुई, उसका स्वागत करते हुए गाया था। भारती ने सिर्फ भावावेश तक सीमित न रहकर उसके क्रांतिकारी गुण को पहचाना और सन् 1917 में उसका यश गाया था। उस कविता का नाम दिया गया 'नवीन रूस'। यही शीर्षक उसके लिए उपयुक्त था।

प्रो. चेलिशेव ने 'नवीन रूस' कविता का ऐतिहासिक महत्त्व ही नहीं, वरन् उस कविता में 'महाकाली' के प्रतीक के उपयोग की विशेषता पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है कि महाकाली पराशक्ति कृपा कटाक्ष रूस पर पड़ा है। इसी कारण से उस भाग में अद्‌भुत क्रांति हुई है। उस क्रांति को कवि ने युग क्रांति माना और एक नए युग को जन्म देने वाला लिखा है। इतना ही नहीं, कवि ने यह भी घोषित किया है कि यह क्रांति मानव इतिहास में विश्व महत्त्व के नए युग की जन्मदात्री है।

अत्याचार से भरपूर पुरानी दुनिया को मिटाकर रूसी क्रांति ने सुखमय नया जीवन प्रदान किया है। उसे कविता का रूप देकर महाकाली के भव्य रूप में भारती ने ही सर्वप्रथम चित्रित किया है। उदाहरण के लिए सन् 1924 में हिंदी कवि निराला ने 'नाचे उस पर श्याम' की कविता में क्रांति का चित्रण महाकाली के रूप में किया है। यह कविता भी स्वामी विवेकानंद की कविता 'नाच्चुक

दहाता श्यामा' की व्याख्या मात्र सिद्ध हुई है। इस रूपक का प्रयोग 1930 के बाद तीसरे दशक की कविता शैली ने व्यापक रूप में हिंदी कविता के क्षेत्र में हुआ है। रामधारी सिंह दिनकर की 'विपथगा' (1939) की कविता में क्रांति का वही रूपक बांधा गया है, जिसे भारती ने महाकाली के रूप में देखा था। लोगों की सहनशक्ति हद के बाहर पहुंचने पर भ्रष्टाचार का नग्न तांडव हर कहीं होने पर अत्याचारी तलवार को खून से रंगने के पहले ही खूनी अत्याचार के पहले भगवान का नाम लेता था। काली माता क्रांति के रूप में प्रगट हुईं। रौद्राकार में रणचंडी का रूप धारण कर काली माता प्रकट होती हैं और संसार भर में विजय का डंका बजाती हैं। उक्त चित्र को यह कविता प्रस्तुत करती है। उसमें काली माता कहती हैं कि मेरे नूपुर के बजते ही संसार भर में मेघ गर्जन सुनायी पड़ता है। मैं जहां कहीं भी पग रखूं; वहां सब जगह भूमि फट जाती है।

इस प्रकार उपमा-रूपकों की दृष्टि से भारती की राष्ट्रीय कविताओं को अन्य भारतीय भाषा की कविताओं से तुलना करके देखें तो हमें इस निर्णय पर पहुंचना पड़ता है कि तमिलनाडु में महाकवि भारती का भारतीय साहित्यकारों में अग्रगण्य स्थान है।

भारती : दो रूसी क्रांतियों के महान कवि

सन् 1905 को रूस में जार शासकों के विरोध में जो क्रांति हुई, उसके बारे में भारती ने समाचार पत्र 'इंडिया' में (1.9.1906) 'रूस के राज्य में क्रांति' शीर्षक देकर उसका यशोगान करते हुए लिखा था। यह क्रांति सन् 1917 की क्रांति पूर्वाभिनय माना जाता है। इस क्रांति की सफलता के लिए भगवान से प्रार्थना करते हुए भारती कहते हैं कि स्वाधीनता के लिए अत्याचार के, दमन के विरुद्ध लड़नेवाले हमारे रूसी मित्रों को भगवान शक्ति दें और सफलता प्रदान करें।

भारती के इस निबंध ने सोवियत विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया था। सन् 1982 में भारती जन्म शताब्दी सोवियत रूस में मनायी गई थी। 'सोवियत कल्चर' पत्रिका ने भारती को 'बौद्धिक क्रांति के महाकवि' कहकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह लिखकर उनका यशोगान किया कि भारती ने रूस के इतिहास के प्रथम दो पृष्ठों को लिपिबद्ध किया है।

अंतरराष्ट्रीय चेतना

भारती की अंतरराष्ट्रीय चेतना का उल्लेख करते हुए इटिना-एन. स्मिटनोवा नामक सोवियत लेखिका ने कहा है–उनके कुछ अंतरराष्ट्रीय घटनाओं से उद्‌भूत पद उनकी चेतना के फलस्वरूप हैं। उदाहरण के तौर पर जब जर्मन की सेना ने बेल्जियम पर आक्रमण किया, तब 'बेल्जियम का अभिनंदन' कविता उन्होंने लिखी थी। उस छोटे से राष्ट्र बेल्जियम ने द्वितीय कैसर बिलियम की सेना का सामना साहस के साथ किया था। उसी पर तरस खाकर भारती ने उक्त कविता लिखी। उनके मन में उस देश के प्रति सहानुभूति के भाव जागृत् हुए थे।

लेनिन के बारे में भारती

डॉ. विताती बी. पूर्णिक्का नामक आलोचक सोवियत क्रांति के नेता लेनिन के बारे में भारती ने जो लेखनी चलायी थी, उस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं, ''लेनिन के बारे में भारत में सर्वप्रथम कई विद्वान व संस्कृति के पुजारी प्रशंसा करते हुए लिख चुके हैं। उनमें शीर्षस्थ स्थान

प्रसिद्ध राष्ट्र भक्त, क्रांतिकारी तमिल महाकवि सुब्रह्मण्य भारती को मिलना चाहिए।''

डॉ. पूर्णिक्का और एक स्थान पर भारती के बारे में कहते हैं–''लेनिन व शासनारूढ़ उसके दलवालों के प्रति पूंजीपतियों के प्रचारकों ने, विशेषकर ब्रिटिश पूंजीपतियों ने, कई अपशब्द कहे हैं और उन्हें बदनाम करने का भरसक प्रयत्न किया है। उस समय भारती ही एकमात्र कवि थे, जो ऊंचे स्वर में रूसी क्रांति पर, उसके वास्तविक स्वरूप पर पत्रिकाओं एवं सार्वजनिक मंचों पर प्रकाश डाल रहे थे, जिसे लाखों लोग सुना करते थे।''

अपने निबंध के अंत में पूर्णिक्का ने जो विचार प्रकट किया है, वह सोवियत विद्वानों के विचार का प्रतिनिधित्व करता है। ''अप्रैल 22 को समाचार-पत्रों व सार्वजनिक सभाओं द्वारा भारत लेनिन का जन्म दिवस मनाता है। नवंबर 7 को अक्टूबर क्रांति का वार्षिकोत्सव मनाता है। उस अवसर पर अन्य नामी विद्वानों के साथ सुब्रह्मण्य भारती का नाम भी अवश्य गूंजता है। इसका कारण यह है कि लेनिन व नवीन रूस के बारे में उन्होंने ही सर्वप्रथम ठीक-ठीक बताया और उस रूस की मंगल मनोकामना की भविष्यवाणी प्रकट करते हुए, जनता से मैत्री का व्यवहार करना चाहिए, यह संदेश देनेवाले भारतीय मनीषियों में भारती का नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है।

संदर्भ :

1. सुंदरम डॉ. एन. एवं विश्वासी, डॉ. विश्वनाथ. (अनु.). *महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएं.* इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन।
2. वही
3. वही
4. वही

□

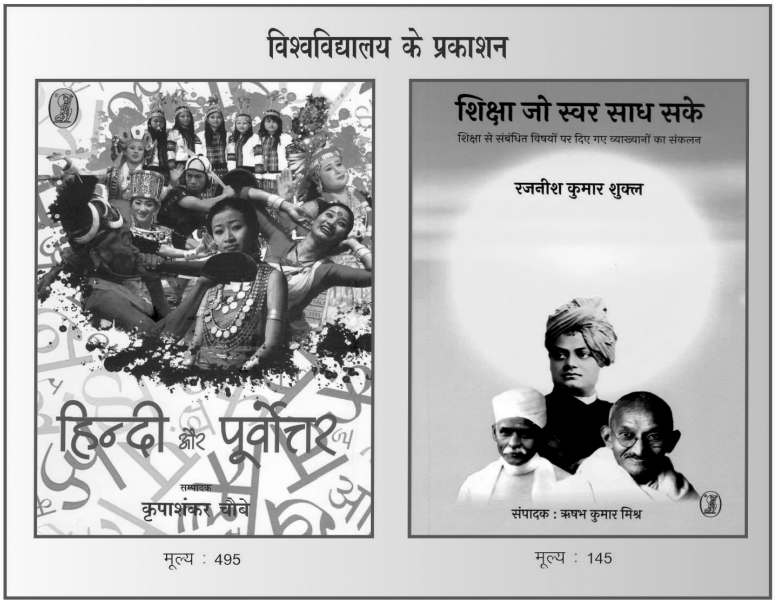

फ्रांसीसी साहित्य से भारती का संवाद

मूल : पुगझेंधी कुमारासामी
अनु. : ज्योतिष पायेङ

भारत में, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की राजनीतिक परिस्थितियों ने कई भारतीय लेखकों को औपनिवेशिक सत्ता के खिलाफ कलम चलाने के लिए प्रेरित किया। उनकी साहित्यिक प्रस्तुतियों का उद्देश्य पाठकों पर दोतरफा प्रभाव डालना था : पहला, स्वतंत्रता के बारे में उनकी जागरुकता को बढ़ाना और दूसरा, प्रमुख सामाजिक सुधार की आवश्यकता के बारे में भी जो कि स्वातंत्र्योत्तर भारत के विकास की नींव के रूप में भूमिका निभाना। ऐसा करने से, कुछ लेखकों ने अपने व्यक्तिगत विचारों को लिखा, जबकि अन्य ने अपने लेखन के माध्यम से, अपने यूरोपीय समकक्षों से प्रेरित विचारों को प्रस्तुत करने का आह्वान किया। उन्होंने अनुवाद किया, अनुरूपण किया या यहां तक कि इन विचारों को सामाजिक-राजनीतिक ढांचे की आवश्यकता के अनुसार अपनाया, जिसमें लेखन और वाचन हुआ। सुब्रह्मण्य भारती, 1920 के दशक में पांडिचेरी-प्रवास के दौरान फ्रांसीसी साहित्यिक रचनाओं से अत्यधिक प्रभावित थे। अपने कई निबंधों में उन्होंने कुछ फ्रांसीसी लेखकों के विचारों को व्यक्त किया, न केवल इसलिए कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से उन्हें महत्त्व दिया, बल्कि भारत में स्वतंत्रता आंदोलन को तेज करने के लिए इन विचारों की आवश्यकता थी। यह लेख उस संबंध पर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करता है, जो सुब्रह्मण्य भारती ने फ्रांसीसी साहित्यिक जगत् के साथ प्रगाढ़ संबंध विकसित किया था।

चिन्नास्वामी सुब्रह्मण्य भारती को 20वीं सदी के भारत के सबसे बहुमुखी साहित्यकारों में से एक माना जाता है। एक उत्साही विद्वान और तमिल भाषा के उपासक होने के बावजूद उन्होंने फ्रांसीसी सहित कई अन्य भाषाओं को सीखा। दूसरे शब्दों में, वह असाधारण रूप से बहुआयामी और बहुभाषी थे।

भारत के बाहर की दुनिया के बारे में उनकी विद्वता की जिज्ञासा के कारण उन्होंने पांडिचेरी में रहने के दौरान कई फ्रांसीसी लेखकों और विचारकों की खोज की, जिनकी उन्होंने काफी सराहना की। उनके निबंधों में, हम मानते हैं कि उनके कुछ लेखन इन फ्रांसीसी व्यक्तित्वों से प्रेरित हुए होंगे। हमें यह भी दृष्टिगोचर होता है कि उन्होंने लेखकों को उचित श्रेय देकर उनके कुछ लेखन का अनुवाद किया। उनके निबंधों में यह भी दिखाई पड़ता है कि उन्होंने कुछ फ्रांसीसी विचारकों से विचारों को ग्रहण किया था, जैसा कि और जब उनके विचार संगत थे, उस संदेश के साथ भारती अपने समय के भारतीय पाठकों को बताना चाहते थे।

इस लेख का उद्देश्य है कि फ्रांसीसी लेखकों और विचारकों का एक परिचय प्रस्तुत करना, जिनके विचार सुब्रह्मण्य भारती के निबंधों में पाए जाते हैं और फिर यह राष्ट्रीय कवि द्वारा इन विचारों को अपनाने या स्वीकार करने के कारणों की परीक्षण करना है।

फ्रांसीसी विचार एवं साहित्य से भारती का अभिग्रहण

1907 में, जब सुब्रह्मण्य भारती ने तमिल साप्ताहिक 'इंडिया' के लिए एक संपादक के रूप में काम करना शुरू किया, जिसमें उन्होंने कई निबंध, कविता और गीत प्रकाशित करते हुए पत्रिका में अपनी रचनात्मकता और विचारों को भी व्यक्त किया। उन दिनों उनके अधिकांश लेखन का स्वरूप राष्ट्रवादी और आध्यात्मिक थे और उन्होंने रूसी और फ्रांसीसी क्रांतियों की प्रशंसा करते हुए कुछ गीत प्रकाशित किए। 1908 में, जब साप्ताहिक 'इंडिया' के मालिक को अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार किया गया था, यह जानते हुए कि उन्हें भी जल्द ही गिरफ्तार किया जाएगा, भारती को मद्रास छोड़ने और पांडिचेरी में शरण लेने के लिए मजबूर किया गया था, जो तब फ्रांसीसी शासन के अधीन एक प्रदेश था।

यद्यपि उन्हें ब्रिटिश भारत से निष्कासित कर दिया गया था, लेकिन लेखन के संदर्भ में उनके जीवन की यह अवधि सबसे अधिक उर्वर थी। इसके पीछे एक कारण यह हो सकता है कि भारती के पांडिचेरी में रहने से उन्हें कई अन्य भारतीय राजनीतिक हस्तियों, जैसे श्री अरविंद के साथ-साथ फ्रांसीसी संस्कृति, सामाजिक-राजनीतिक विचारों और साहित्य को करीब से जानने का अवसर मिला। भले ही पत्रिका को ब्रिटिश भारत में प्रतिबंधित किया गया था, लेकिन भारती ने पांडिचेरी से साप्ताहिक पत्रिका 'इंडिया' का संपादन और प्रकाशन जारी रखा। पांडिचेरी से प्रकाशित 'इंडिया' के नए संस्करणों ने फ्रांसीसी राष्ट्रीय आदर्श वाक्य 'स्वधान्धिरम, समाथुवं, सोदोधाराथुवं' का तमिल में अनुवाद किया, जिसका अर्थ है—स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व।

पांडिचेरी में अपने प्रवास के दौरान भारती ने एंटोनी अरलोक नामक एक मूल फ्रांसीसी भाषी व्यक्ति की मदद से फ्रांसीसी सीखी। उन्होंने फ्रांसीसी मूल निवासियों, फ्रांसीसी संस्कृति, इतिहास और साहित्य के संबंध में पुस्तकों और वार्तालापों के माध्यम से धीरे-धीरे खोज की और उसी के लिए उत्सुकता विकसित की। उन्होंने फ्रांसीसी राष्ट्रगान को भी दिल से सीखा था और इसे वे एक फ्रांसीसी मूल के तरह गाते थे। श्री आर. गणालिंगम ने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है कि फ्रांसीसी राष्ट्रगान गाने के लिए भारती कितने भावुक थे।

भारती को फ्रांसीसी संगीत से बहुत प्रेम था। विशेष रूप से, उन्हें फ्रांसीसी राष्ट्रगान 'ला मर्सील्लैसे' (La Marseillaise) बेहद पसंद था। भारतीयार और 'पप्पा'- तिरुमती शकुंतला दोनों ने-एंटोनी अरलोक से फ्रांसीसी राष्ट्रगान सीखा।

जब भारती ने एकांत में ला मर्सील्लैसे (La Marseillaise) गाया, तो उन्होंने इसे गाते हुए अपने दाहिने पैर को बेरहमी से नीचे झुका देती, और गीत एक क्रांति भाव के साथ ध्वनित होता था, जिन्होंने उसे बाहर से सुना, उन लोगों के लिए कभी नहीं लगा कि यह एक तमिल व्यक्ति गा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कि एक यूरोपियन या एक फ्रांसीसी व्यक्ति गा रहा है। चूंकि फ्रांसीसी उच्चारण अत्यंत स्पष्ट और परिपूर्ण था (My Revered Guru, 2006)।

भारती फ्रांसीसी राष्ट्रगान से इतने प्रेरित थे कि उन्होंने तमिल में पहले दो पंक्तियों का अनुवाद 'पोर्कोलम पूनुवीरे' शीर्षक के साथ किया; जिसका तमिल में अर्थ है–'युद्ध के लिए तैयार रहें'। यह भी कहा गया है कि उन्होंने यह अनुवाद कुछ स्कूली बच्चों को दिया था, जिन्होंने इसे एक स्कूल के समारोह के दौरान मंचित नाटक में गाया था।

फ्रांस के इन सांस्कृतिक और राजनीतिक ज्ञान के अलावा, भारती ने फ्रांस की राजनीतिक घटनाओं के बारे में भी लगातार खुद का परिष्कार किया। उदाहरण के लिए, वह अपने एक निबंध 'अडंगी नाडा' शीर्षक से लिखते हैं जिसका अर्थ है–'विनम्र होना', फ्रांस में द्रेय्फुस (Dreyfus) घटना के संबंध में और बात यह है कि गलतियां गणतंत्र तक होती हैं, लेकिन यहां इसका मतलब यह नहीं है कि हम उन्हें सुधार नहीं सकते हैं। उन्होंने उल्लेख किया है कि फ्रांसीसी गणराज्य में अनियमितताएं विद्यमान थीं, जो द्रेय्फुस के घटना के माध्यम से उजागर हुई, लेकिन फ्रांस के लोग अभी भी मानते हैं कि गणतंत्र सरकार का सबसे अच्छा रूप है। इसलिए भारत के लोगों को भी सरकार चलाने की अपनी क्षमता पर विश्वास रखना चाहिए और उन्हें अंग्रेजों की इन टिप्पणियों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए, जो दावा करते हैं कि यदि भारत को पूरी तरह से उन्हें सौंप दिया जाता है तो भारतीय गलतियां करेंगे।

फ्रांस के बारे में अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक जागरुकता के अलावा, भारती ने फ्रांसीसी साहित्य और सामाजिक-राजनीतिक विचारों के बारे में अच्छी तरह से अध्ययन किया। उनके निबंधों में कई उद्धरण, अनुवाद, विभिन्न फ्रांसीसी विचारकों के विचार और साहित्यिक आंकड़े आ सकते हैं। विशेष रूप से मोंटेस्क्यू, वाल्टेयर, जीन जैक्स, रूसो, विक्टर ह्यूगो और प्राउडॉन के कार्यों को देखा जा सकता है। कई स्थानों पर भारती ने लेखक को उचित श्रेय दिया, जिनसे वह विचार अपनाया है और अन्य स्थानों पर केवल भारती के विचारों और फ्रांसीसी लेखक के लेखन के बीच एक मजबूत सादृश्यता देखी जा सकती है। ऐसे मामलों में, हम मान सकते हैं कि या तो भारती को लेखक से प्रेरणा मिली या यह एक संयोग है कि उनके विचार फ्रांसीसी लेखक के समान हैं।

मोंटेस्क्यू ने अपने प्रसिद्ध कार्य, 'द स्पिरिट ऑफ लॉज' (The Spirit of Laws), में उल्लेख किया है कि पुरोहितों में बर्बर लोगों से अधिक शक्ति होती है, क्योंकि वे इस तरह की शक्ति हासिल करने के लिए अंधविश्वास का इस्तेमाल करते हैं और जर्मनों को अपने समय का उदाहरण देते हैं। भारती ने अपने निबंध 'यारै थोजुवध' शीर्षक में, जिसका तमिल में अर्थ है–'पर्याप्त प्रार्थना करने के लिए!' पुरोहित अंधविश्वासों और अंध श्रद्धाओं का इस्तेमाल आम लोगों को धोखा देने के लिए करते हैं; इसलिए हमें उनके मध्यस्थता पर विश्वास करना बंद कर देना चाहिए और अपने तरीके से भगवान की पूजा करनी चाहिए। वह यह भी कहता है कि व्यक्ति केवल अच्छे कर्म करके भगवान की कृपा और सुरक्षा प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्ति को मंदिर जाने की भी आवश्यकता नहीं है।

यद्यपि भारती के निबंध की शुरुआत में पुरोहितों की धूर्तता की निंदा मोंटेस्क्यू के विचार को दर्शाती है, वह आगे जाकर आम लोगों को एक समाधान प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, मोंटेस्क्यू के लेखन में पुरोहितों की भूमिका के बारे में अधिक वर्णन है, जबकि भारती की निबंध का स्वरूप पथ-प्रदर्शक है।

वाल्टेयर अपनी कृति कैनडाइड, ऑर द ऑप्टिमिज्म (Candide, or the Optimism) में, एक काल्पनिक देश के बारे में बात करता है, जिसे एल डोरैडो (El Dorado) कहा जाता है, जहां स्वर्ण प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और कोई भी स्वर्ण या किसी भी भौतिक वस्तुओं को महत्त्व नहीं देता है और केवल मानवीय गुणों को महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार पाठकों को वाल्टेयर की अपेक्षानुसार एक आदर्श दुनिया के बारे में दिखाया है और इसलिए भारती भी अपने समय के पाठकों को प्रभावित करने की वही अपेक्षा रखता है।

इसी तरह, भारती अपनी छोटी कहानी 'संधीर थीवु' के बारे में एक काल्पनिक द्वीप के बारे में बात करते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ है–तमिल में चंद्रमा द्वीप। कहानी में, द्वीप पर गंगा पुतिरन नामक एक राजा का शासन है–जो अपनी बेटी चंद्रगई के लिए एक दूल्हे की तलाश में है। इस बीच, भारत में काशी के राजा का नाम विथ्या पुतिरन है, जो अपनी मां और अपने मंत्री को राजा के पास गंगा पुतिरन की बेटी काशी के राजा से शादी के लिए हाथ मांगने के लिए भेजते हैं। राजा गंगा पुतिरन, उनके मंत्री गोविंद राजन और स्थामन शिकार के लिए जाते हैं और एक पेड़ के नीचे आराम करते हैं और एक विस्तृत, लंबी बातचीत करते हैं। भारती अपनी 'विचारधारा' कहानी में इस वार्तालाप के अधिकांश कथानक के माध्यम से देश, राज्य, समानता, महिलाओं की स्वतंत्रता इत्यादि के बारे में प्रस्तुत करते हैं। इसके अलावा, वह भारत में उपनिवेश के रूप में व्याप्त दासता के बारे में बात करता है।

भारती और वाल्टेयर अपनी कहानियों में एक काल्पनिक देश निर्माण की बात करते हैं, जिसके माध्यम से वे अपनी आदर्श दुनिया को पाठक के सामने पेश करते हैं, जिससे उन्हें वास्तविक जीवन में अपनी विचारधारा का पालन करने की प्रेरणा मिलती है। हालांकि, वाल्टेयर और भारती के बीच विचार समान नहीं हैं, लेकिन काल्पनिक जगह और समय के माध्यम से संदेश को व्यक्त करने के उनके तरीके समान हैं।

रूसो, अपने प्रसिद्ध कार्य, द सोशल कॉन्ट्रैक्ट (The Social Contract) में उल्लेख करते हैं कि तीन प्रकार की सरकारें हैं, अभिजात वर्ग, राजशाही और प्रतिनिधि लोकतंत्र। वे प्रत्यक्ष लोकतंत्र और इन सरकारों का विस्तृत विवरण देते हैं। भारती ने अपने 'रद्जिया सास्थिरम' (जिसका अर्थ है–राजनीति विज्ञान) शीर्षक निबंध में इन तीनों प्रकार की सरकारों का उल्लेख किया है, जो पश्चिमी देशों में विद्यमान हैं और वे जोर देते हैं कि इस तरह के अनुशासन को स्कूल के विद्यार्थियों को सिखाया जाना चाहिए, ताकि वे भारत की राजनीतिक विकास में योगदान दे सकें।

यद्यपि, भारती के निबंध में उल्लिखित सरकार के प्रकार रूसो के रचना से सादृश्य हैं, लेकिन कोई भी पूरी तरह से स्रोत के बारे में सुनिश्चित नहीं हो सकता है, क्योंकि भारती अपने निबंध में किसी भी विदेशी लेखक को कोई श्रेय नहीं देता है। इसके अलावा, भारती ने एक ही निबंध में कई अन्य विचार प्रस्तुत किए हैं, जो भारतीय परिप्रेक्ष में प्रासंगिक प्रतीत होते हैं, जैसे कि गांवों एवं मंदिरों का विकास और निर्धनों के लिए आवासों का उपलब्ध कराना आदि।

संक्षेप में, ऐसा प्रतीत होता है कि भारती ने रूसो को पढ़ा था, लेकिन केवल कुछ विचारों को अपनाया है और अपने स्वयं के कई विचारों को जोड़े हैं, ताकि यह भारतीय सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त हों।

भारती ने मूल लेखक को उचित श्रेय देते हुए **विक्टर ह्यूगो** के लेस मिसरेबल्स (Les Misérables) से कई पंक्तियों का अनुवाद किया है। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि यद्यपि भारती ने लेखक को इसका श्रेय दिया। उन्होंने अपने अनुवाद में साहित्यिक कार्य के नाम का उल्लेख नहीं किया है और उन्होंने केवल कुछ चुने हुए हिस्सों का अनुवाद किया है, जिसमें कहानी या पात्रों के कोई निशान नहीं हैं, जो इस उपन्यास में पाए गए हैं।

इस तरह के चयन से हो सकता है कि शेष कहानी को जान-बूझकर एक तर्कसंगत दृष्टि से भारती ने महत्त्व नहीं दिया होगा। इसके अलावा, ऐसा लगता है कि उन्होंने इन हिस्सों को चयन किया है जो भारतीय परिप्रेक्ष्य में उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए 'लेस मिसरेबल्स' (Les Misérables) उपन्यास से उन्होंने एक अंश का अनुवाद किया है, जहां सामाजिक समानता पर चर्चा की जाती है और उन्होंने इसे 'समानता क्या है?' शीर्षक दिया। उन्होंने अन्य विचारों का अनुवाद नहीं किया जो उपन्यास के एक ही अध्याय में हैं। यह संभवतः इसलिए है, क्योंकि सामाजिक समानता के बारे में विचार भारतीय परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि जातिवाद और अन्य सामाजिक पदानुक्रम थे, जिनके साथ भारती खुश नहीं थे और संयोग से उन्होंने विक्टर ह्यूगो के उपन्यास में एक ही विचार पाया और तुरंत इसका अनुवाद किया।

उन्होंने उसी उपन्यास के एक और अंश का अनुवाद किया जो प्रेम के बारे में है। वास्तव में, उपन्यास में मारियस नामक एक पात्र उस महिला को एक प्रेम पत्र लिखता है, जिनसे वह प्रेम करता है। इस पत्र में मारियस प्रेम की परिभाषा देता है। भारती ने केवल प्रेम की इस परिभाषा का अनुवाद किया। भारती ने जानबूझकर उन हिस्सों को छोड़ दिया है; जो पूरी तरह से प्रशंसा और अतिशयोक्ति है, जो प्यार की वास्तविक भावना का वर्णन नहीं करते हैं।

इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि विक्टर ह्यूगो की रचनाओं से भारती का अनुवाद साहित्यिक रूप से कम, पर सामाजिक और वैचारिक रूप से अधिक प्रेरित था।

पियरे-जोसेफ प्राउडन (Pierre-Joseph Proudhon) पहले फ्रांसीसी राजनेता थे, जिन्होंने स्वयं को अराजकतावादी घोषित किया और कहा कि संपत्ति चोरी है (Property is theft)। भारती ने अपने एक निबंध सेल्वम (जिसका अर्थ तमिल में 'भाग्य' है) में प्राउडन को उद्धृत करते हुए उद्योगपति विरोधी अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। एक बार फिर भारती प्राउडन की विचारधारा से प्रेरित प्रतीत होते हैं, जो मजदूर समर्थक और पूंजीवाद विरोधी उनके चरित्र में दिखाई पड़ता है। भारती आगे प्राउडन की इस विचारधारा को अपने निबंध में विस्तारित करते हैं और इसे भारतीय संदर्भ में अपनाया है; वे कहते हैं कि गांवों में अमीर धनवान लोगों को निर्धन गरीबों की मदद कर उन्हें भोजन और आश्रय जैसी मूलभूत आवश्यकताएं प्रदान करनी चाहिए। वह आगे विचार रखते हैं कि हमें अमीर और गरीब के बीच की खाई को अधिक गहरा होने नहीं देना चाहिए, अन्यथा हम यूरोप की तरह खत्म हो सकते हैं, जहां अमीर और गरीब के बीच विशाल सामाजिक भेदभाव है।

संक्षेप में, यह कह सकते हैं कि एक विद्वान के रूप में भारती ने फ्रांसीसी साहित्य, फ्रांस के सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ के बारे में बहुत कुछ अध्ययन किया और कुछ विचारकों और लेखकों से प्रभावित हुए। उन्होंने उन लोगों के विचारों को अनुवाद, अनुरूपण या

विनियोजन हेतु चयन किया, जिनके विचारों से वह पूरी तरह सहमत थे और विशेष रूप से उन समस्याओं और विचारों से संबंधित थे, जो औपनिवेशिक भारत में मौजूद थे। यह हो सकता है कि हमारे पास राष्ट्रीय कवि की ओर से कोई स्पष्ट प्रमाण या किसी तरह की वक्तव्य नहीं है, जो यह बयां करें कि वह कुछ सामाजिक-राजनीतिक विचारकों, जैसे वाल्टेयर, जीन जैक्स रूसो, मोंटेस्क्यू और प्राउडॉन से प्रेरित थे।

संदर्भ :

1. भारती, सुब्रह्मण्य. (1981). *Bharathiyaar Katturaikal*. चेन्नई. Vanathi Pathippakam.
2. भारती, सुब्रह्मण्य. (1968). *Bharathiyaar Kavithaikal*. चेन्नई. Vanathi Pathippakam.
3. ह्युगो, विक्टर. (1862). *Les Misérables, quatrième partie, L'idylle rue plumet et l'épopée rue Saint-Denis*, Paris. J. Hetzel, Librairéediteur.
4. कनंगालिंगम, आर. (2006). *My Revered guru*. Mysore & Kumbakonam: Central Institute of Indian Languages and Bharathi National Forum.
5. मोंटेस्क्यू. (1824). *De l'esprit des lois, Tome second*, Paris, France, Chez Mme Veuve Dabo.
6. Rousseau, Jean-Jacques. (1889). *Du contrat social ou principles du droit politique*. Paris. France, Librairie des bibliophiles.

□

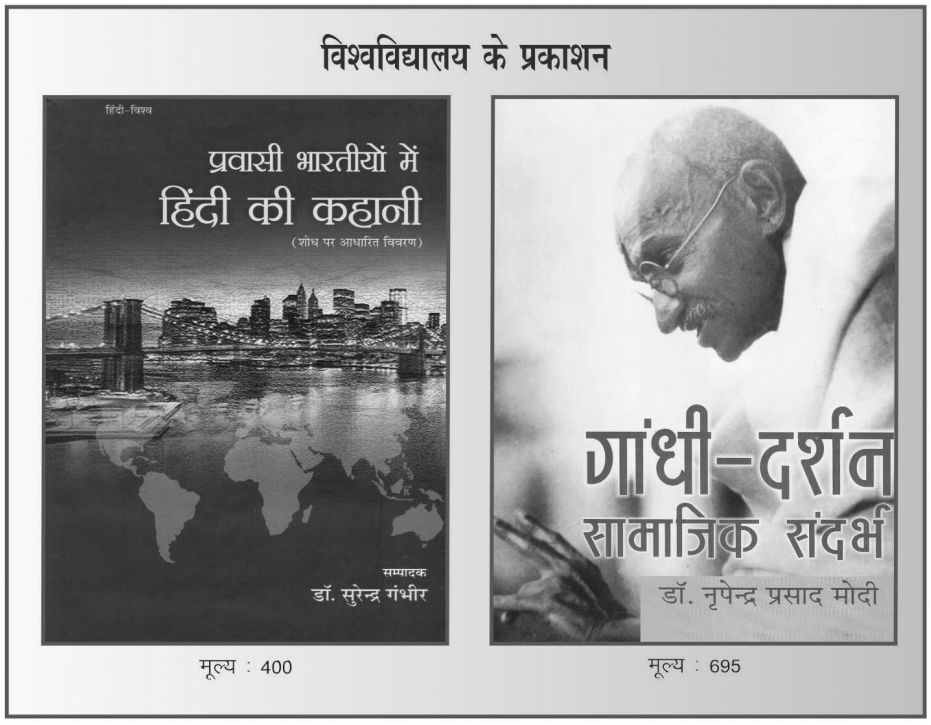

तमिल नई चाल में चलने लगी

एम. शेषन्

बीसवीं शताब्दी के भारत के तीन प्रख्यात कवियों में सुब्रह्मण्य भारती भी हैं। दक्षिण भारत में भारती, पूरब में रवींद्रनाथ टैगोर और पश्चिम में सर मुहम्मद इकबाल; इन तीनों कवियों ने अपनी प्रगतिशील कविताओं तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से संसार के उद्धार और प्रशस्ति का मार्ग दिखाया था। टैगोर, इकबाल और भारती - ये तीनों ही भारत के महाकवि माने जाते हैं। तथापि, अन्य दो कवियों की अपेक्षा कुछ विशिष्टताएं हम भारत में देखते हैं। अपने काव्यों के माध्यम से इस संसार का उद्धार करने का दृढ़ विश्वास और अटूट आस्था रखनेवाले भारती मात्र राजनीतिक मुक्ति, राष्ट्रमुक्ति हेतु कविता करनेवाले कवि नहीं थे। राजनीतिक मुक्ति के अतिरिक्त सामाजिक उद्धार, आर्थिक उन्नति, धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि मानव की सर्वांगीण मुक्ति की कामना से प्रेरित होकर वे जीवन भर क्रियाशील रहे। भारती जनसमूह की दयनीय दशा पर विशेष ध्यान देते हुए उनकी गरीबी, दरिद्रता के कारणों और उनके निवारणों के मार्गों को भी अपनी कविताओं के माध्यम से स्पष्ट रूप से विश्लेषित करते हैं। अपनी कविताओं के अतिरिक्त गद्य कृतियों के माध्यम से वे इन्हें विवेचित करते हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में भारती का चिंतन और उनकी उपलब्धियों को गहराई से देखन-समझने की आज आवश्यकता महसूस हो रही है। भारतीय चिंतन रश्मियां सिर्फ एक क्षेत्र में ही नहीं हैं, बल्कि कई क्षेत्रों में प्रकाश डालती हैं। इसे हमें स्मरण करना होगा कि युगीन भारत की गौरव गरिमा के साथ-साथ अपने युग की दयनीय दशा, हमारी अपनी न्यूनताओं पर उनका चिंतन रहा है। भावी भारत के निर्माण की दूरदर्शिता भी उनके चिंतन में प्रकट होती है। इस दृष्टि से भी हिंदी के प्रख्यात राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के समतुल्य माने जाएंगे। दोनों इस दृष्टि से समानधर्मी रहे हैं; भारती की दृष्टि ऐतिहासिक रही और विगत कालीन इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भारत को देखने-समझने की विशेषताओं से युक्त है।

टैगोर को अपने जीवन काल में उपलब्ध सुख-सुविधाएं, उपलब्ध अनुकूल परिवेश, आर्थिक समृद्धि और स्थिरता आदि अनेक अनुकूल परिवेश भारती को उपलब्ध नहीं हो सके। यह ध्यान देने की बात है कि उनके द्वारा तमिलनाडु के नवजागरण का शतरंज सदृश प्रयास वैकल्पिक माने जाएंगे।

भाषा के क्षेत्र में नवजागरण :

ब्रिटिश शासन ने जब से भारतीय मिट्टी में स्थिरता प्राप्त कर ली और अंग्रेजी भाषा शासन की भाषा बन चुकी थी तथा उसकी लोकप्रियता वेगवती होने लगी, तब से भारतीय भाषाओं का प्रयोग

कम होने लगा। वास्तव में इस प्रदेश में बल्लाल रामलिंगन स्वामी जी ने पहली बार तमिल के मन में भाषा प्रेम को जगाने का संकल्प किया। भक्ति योग में अलवार और नयनार संतों ने भक्ति और अध्यात्म के भाव के साथ-साथ तमिल भाषा प्रेम की भी संयुक्त कर इस प्रदेश में सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना की। इन भक्तों, शिरोमणियों के समस्त स्नेहगीत चाहे वह चित्रगीत हों, चाहे वैष्णव गीत हों, परशुराम हों, दोनों ही तमिल भाषा में रचित गीत ही हैं। प्रसिद्ध संत तिरु के संबंध में अपने को तमिल ज्ञान संबंध कहलाने में गौरव का अनुभव किया। संत रामलिंग के मतानुसार तमिल भाषा ही अत्यंत सफल एवं क्षमता से युक्त भाषा है।

भारती में जितना देशप्रेम है, उतना ही भाषाप्रेम भी। वह भाषा प्रेम जितना संस्कृत की ओर उन्मुख है, उससे अधिक तमिल की ओर उन्मुख है। भारती के युग में यहां अंग्रेजी को ऊंचा स्थान प्राप्त था। भारतीय भाषाएं आज की तुलना में बहुत दब गई थीं। भारती उन थोड़े से राष्ट्रभक्तों में थे, जो अंग्रेजी भाषा को अपने प्रबोधन का विषय नहीं बनाया। जिस समय लोग अंग्रेजी भाषा और उस साहित्य से अभिभूत होकर तमिल की उपेक्षा कर रहे थे, उस समय भारती ने तमिलनाडु की सांस्कृतिक विरासत का झंडा ऊंचा किया था, उन्होंने प्राचीन तमिल भाषा के गरिमामयी साहित्य के बारे में कहा कि वह जिस ऊंचाई तक पहुंच चुका, वहां तक यूरोप की भाषाओं का साहित्य नहीं पहुंचा। उनकी यह बात बिल्कुल सत्य है। भारती का यह दृष्टिकोण केवल तमिलनाडु के लिए ही नहीं, केवल उस युग के लिए ही नहीं, बल्कि समूचे भारत के लिए प्रासंगिक है। उन्होंने अपने कर्म क्षेत्र से यह सिद्ध किया कि भारतीय साहित्य में इतनी ऊर्जा है कि देश को आधुनिक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विकसित कर सके। इस प्रकार उन्होंने भारतीय जनों में आत्मविश्वास और आत्मबल को विकसित किया। जाति और भाषा का संबंध वर्तमान युग में और टूटे हैं। अतएव, तमिल भाषा के प्रति भारती का प्रेम स्वाभाविक है।

यहां भारती के पूर्व काल में तमिल भाषा की स्थिति पर थोड़ा विचार करना संगत होगा। भारती के आगमन के पूर्व पढ़े-लिखे शिक्षित व विद्वानों-पंडितों तथा जनसाधारण के मध्य गलतफहमी बनी हुई थी। जनसाधारण और पंडितों-विद्वानों के बीच का संपर्क गहरा नहीं बन पाया था। भारती ने इस गलती को क्यों महसूस किया था? अतः भाषा और साहित्य दोनों को जनसाधारण के निकट लाने एवं सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान के निमित्त उसका प्रयोग करने का बीड़ा उठाया। भारती का यह सबसे बड़ा अवदान माना जा सकता है। उन्होंने प्रसिद्ध खंड काव्य की भूमिका में लिखा था कि तमिल भाषा में नया प्लान, नया उद्वेग, नई ऊर्जा प्रदान करना मेरा उद्देश्य है।

पुस्तकालय में तलवार संभाले गंभीर चाल में चलनेवाला राजा, महाराजा और धारा प्रसिद्ध कविघन आपस में एक-दूसरे की चापलूसी किया करते थे। चापलूसी करने के बाद वे चाटुकारिता में लगे रहने लगे थे और राजा-महाराजाओं की झूठी प्रशंसा करने में अपनी काव्य प्रतिभा को व्यक्त करते थे। ऐसे में कागज पर कविता लिखकर तमिल के आत्म-सम्मान और गरिमा की सुरक्षा करने के निमित्त हमारे यहां भारती का जन्म हुआ।

13वीं शताब्दी के अंत में प्रसिद्ध चोल वंश के राजाओं के साम्राज्य का पतन हुआ था। उसके बाद तमिल प्रदेश में कहने लायक कोई महाकाव्य तमिल में एक भी नहीं रचा गया, ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

उस युग में कवियों के प्रणेता कभी तमिलनाडु में रहे, अनेक धर्मों-संप्रदायों के माननेवाले भी थे। दानी अपने पोषक को मन बदलने के निमित्त कविता करना उनका एक अभ्यास मात्र था। महेश शब्द भंडार और अलंकरण की प्रवृत्ति को काबो का मुख्य उद्देश्य मानकर चलते थे। कविता का प्राण भावनाओं के संपादन के लिए स्थान देना है। इस बात को वे एक तरह से भूल ही चुके थे। दूसरे शब्दों में कहें तो वे कभी ख्वाबों का, आत्मभावों और विचारों की परवाह नहीं करते थे। शब्दों के माध्यम से जड़ शरीर को अलंकृत कर प्रसन्न होते थे। भारती के शब्दों में–

'करण के साथ दानकर्म भी खत्म हुआ उत्तम
कवि कंचन के साथ तमिल काबू भी समाप्त हुआ'।

आगे वे लिखते हैं कि क्या इस दंडनीय दशा का परिवर्तन नहीं होना चाहिए, परिवर्तन करना होगा। इस दंडनीय दशा से कविता का उद्धार करने के निमित्त ही मैं इस संसार में अवस्थित हूं। (भारती के शब्द)

तमिल कविता रूढिवादिता के कारागार में

भारती के पूर्वकालीन एवं समकालीन कुछ श्रेष्ठ कवि भी रूढिवादी रुचि के कारागार में कविता को बंद कर रखते तथा उसी को अप्रतिम मानने में अधिक उत्साह प्रकट करते थे। इस कारण कविता की आत्मा उसकी स्वाभाविक प्रगति अवरुद्ध होने लगी। परंपरा का गुलाम बनकर केवल शब्द भंडारों में लगे रहकर अपने आश्रयदाता या दानी-गुनी जनों की स्तुति करने में बड़प्पन का अनुभव करते थे। आधुनिक काल के पांडूमित्रण नूमुंशी रघुनाथन जैसे कवियों ने अपनी व्यंग्यपूर्ण कविताओं के द्वारा इन परंपरावादी तथा रूढिवादी कवियों की खिल्ली उड़ाई थी, मजाक किया है। (पंडू में पिता की कविता कल, पृ. 34, 64) तमिल कविता निस्वान और निस्तेज हुई, उसकी बुरी हालत रही। तमिल कविता ठहराव की स्थिति से उसका उद्धार करने का श्रेय भारती को ही मिलना चाहिए।

भारती निबंध समूहों तथा पुनर्जन्म लेख आदि रचनाधर्मिता के बल पर तमिल समाज की सेवा करना चाहते थे। इस कारण आसानी से लोग समझ सकें, इस योग्य अपनी कलात्मक क्षमता का प्रयोग करना वे अपना प्रमुख धर्म मानने लगे थे। इस जगह पर हिंदी के आधुनिक कवि एवं साहित्यकार बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र जी का स्मरण हो आता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माताओं में माने जाते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं और गद्य रचनाओं के माध्यम से हिंदी प्रदेश में सही काम किया, जिसे भारती ने करना चाहा अर्थात् नवजागरण, भाषा प्रेम और संस्कृति पर उनका मुख्य उद्देश्य था। अतः जुगनू कुल हिंदी गद्य साहित्य में नई प्रवृत्ति लाने का संयुक्त प्रयास कर रहे थे, लेकिन कविता के क्षेत्र में तो वे पुरानी शैली अपनाते थे। गद्य साहित्य में युवाओं के विषयों को लाने का सहयोग भारतेंदु मंडली के लेखकों को है।

मगर कविता के क्षेत्र में वह पुरानी ब्रजभाषा का ही प्रयोग करते थे। परिभाषा उसके युग तक माध्यम रही। भारतेंदु उसके प्रभाव से अपने को मुक्त न कर पाए। अतः उनकी कविताएं ब्रजभाषा में ही रह जाती थीं। यह तो सन् उन्नीस सौ तथा उसके आसपास आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयास से ही संभव हुआ। खड़ी बोली हिंदी परिनिष्ठित को आधुनिक कविता में प्रतिष्ठित करने का श्रेय द्विवेदी जी को मिलना चाहिए। उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप श्रीधर पाठक,

मुकुटधर पांडे, अमन त्रिपाठी, मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जयशंकर प्रसाद आदि हिंदी में खड़ी बोली की कविताओं के रचनाकार भाषा के क्षेत्र में परिवर्तन लाने का कार्य सफलतापूर्वक कर सके। सारे कवि और साहित्यकार वही कार्य करने में अपना उत्साह प्रकट करते थे, जिसे भारती तमिल साहित्य में कर रहे थे। यह कहना सही होगा कि भारतेंदु और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के काव्य अर्थात् बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध में निश्चित रूप से एवं परिमार्जित खड़ी बोली हिंदी का प्रचलन होने लगा। हिंदी अपनी पुरानी चाल छोड़कर नई चाल में चलने लगी। भारती ने भी अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से तमिल में परिवर्तन/बदलाव लाने का संयुक्त कार्य किया, जिससे तमिल नई चाल में चलने लगी।

□

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

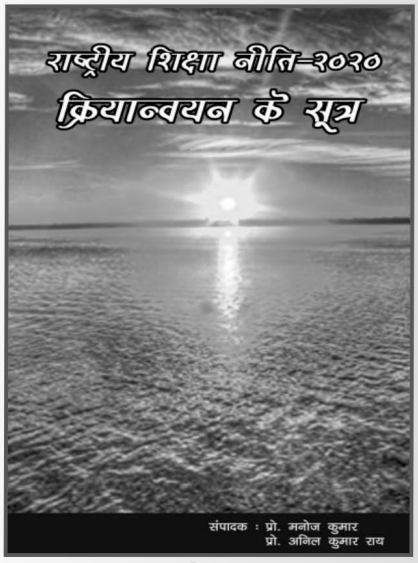

ई–बुक

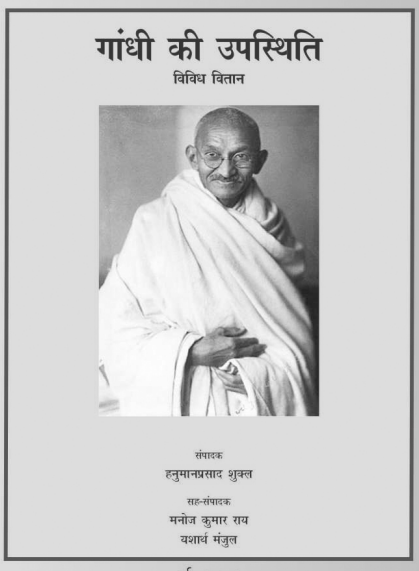

ई–बुक

हिंदी सेवा और लेखन के मेरे अनुभव

जी. गोपीनाथन

विंध्य पर्वत के पार उत्तर भारत के साथ दक्षिण भारत का सांस्कृतिक संबंध पुरा काल में संस्कृत, प्राकृत आदि के माध्यम से चलता था। मध्य काल से लेकर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक जैसे कारणों से हिंदी भाषा उत्तर-दक्षिण के बीच संपर्क सेतु बनी। तीर्थ-यात्रा, योगियों, संतों का संगम, दक्षिण में मुस्लिम सल्तनतों की स्थापना, तंजौर में मराठी राजाओं के राज्य आदि ने हिंदी को एक अखिल भारतीय माध्यम के रूप में विकसित होने में योग दिया। हिंदुस्तानी संगीत, हरि कथा, यक्षगान, राम लीला, कत्थक आदि दृश्य-श्रव्य कलाओं के प्रचार-प्रसार में भी हिंदी का प्रमुख योग रहा। तंजौर के शाहजी महाराज द्वारा लिखित यक्षगान शैली के हिंदी नाटक और केरल के महाराजा स्वाति तिरुनाल के हिंदी गीत इस सांस्कृतिक संपर्क के सुपरिणाम हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में दक्षिण अफ्रीका में काम करनेवाले गुजरात, मारवाड़, महाराष्ट्र, आंध्र और तमिलनाडु के गिरमिटिया मजदूरों और व्यापारियों के साथ बातचीत करते हुए गांधीजी ने पाया कि इन भारतीयों के बीच हिंदी ही प्रमुख संपर्क भाषा (Lingua Franca) है। उन्होंने यह भी देखा कि उनके बच्चे आपस में हिंदी में ही बात करते हैं। दक्षिण अफ्रीका में 1904 से हिंदी सिखाने का काम गांधीजी ने शुरू किया। वहां से भारत लौटने पर राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख अंग के रूप में 1918 में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना मद्रास (चेन्नई) में कर हिंदी प्रचार आंदोलन शुरू किया। गांधी को लगा कि देश-विदेश में भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय भावना के प्रतीक के रूप में हिंदी को विकसित किया जा सकता है। उनके इस हिंदी-प्रचार आंदोलन का प्रमुख परिणाम यह हुआ कि हिंदी केवल उत्तर भारत की एक प्रांतीय भाषा न रहकर, राष्ट्रीय भाषा के रूप में और राष्ट्रीय भावना, स्वदेशी एवं देशप्रेम की वाहिका भाषा के रूप में विकसित हुई। द्वीप द्वीपांतरों में भी हिंदी समितियां बनाकर हिंदी-शिक्षण, पत्रकारिता आदि शुरू करने के कारण हिंदी धीरे-धीरे विश्व भाषा के रूप में विकसित हुई। हिंदी प्रचार सभा के अनौपचारिक शिक्षण के साथ स्कूलों और कॉलेजों में भी हिंदी की शिक्षा प्रारंभ हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ केरल विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में हिंदी को स्थान मिला। सारे दक्षिण में ऐसी ही स्थितियां बनीं।

जब मैंने 1958 में हाईस्कूल की परीक्षा पास की, तब तक हमारे गांव के हिंदी प्रचारक अध्यापक बालकृष्णन आचारी के हिंदी विद्यालय में पढ़कर अनौपचारिक शिक्षा पद्धति द्वारा 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की 'राष्ट्रभाषा विशारद्' परीक्षा पास कर चुका था। बालकृष्णजी हिंदी प्रचारक

ही नहीं, स्वतंत्रता सेनानी भी थे। वे हिंदी-प्रचार को एक मिशन के रूप में चला रहे थे। जब मैंने यूनिवर्सिटी, कॉलेज, तिरुअनंतपुरम के महाविद्यालय, विश्वविद्यालय में हिंदी मुख्य विषय और भारतीय इतिहास और संस्कृति उप विषय लेकर बी.ए. में प्रवेश लिया, वहां के हमारे आचार्य डॉ. के. भास्करन नायर, पी.के. केशवनर नायर, एन.ई. विश्वनाथ अय्यर, डॉ. वी. गोविंद शेणाय, प्रो. सुकुमारन नायर, एन.ई. मुत्तुस्वामी आदि हिंदी-प्रचार आंदोलन से जुड़े हुए लोग थे। इन सब अध्यापकों के प्रभाव से हिंदी प्रचार को हम छात्र भी एक राष्ट्रीय महत्त्व का काम मानने लगे। हिंदी-प्रचार आंदोलन का और एक प्रभाव यह हुआ कि हिंदी साहित्य के अध्ययन से हिंदी में मौलिक रचनाएं करने और हिंदी तथा दक्षिणी भाषाओं के बीच अनुवाद करने की प्रेरणा कई लोगों को मिली। अपने उस छात्र जीवन में मैंने भी हिंदी में छिटपुट रचनाएं करने और प्रेमचंद जैसे हिंदी लेखकों के बारे में मलयालम में लिखना शुरू किया। 'केरल भारती', केरल ज्योति' आदि हिंदी पत्रिकाएं भी उन दिनों शुरू हो गई थीं। 1962 में मैंने बी.ए. पास किया और तद्नंतर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में एम.ए. हिंदी में दाखिला लिया। वहां के विद्वान और साहित्यकार अध्यापक हरबंशलाल शर्मा, अंबा प्रसाद सुमन, कैलाशचंद्र भाटिया, रवींद्र भ्रमर, डॉ. विश्वनाथ शुक्ल आदि से मैं काफी प्रभावित हुआ। अलीगढ़ शहर में मूर्धन्य हिंदी गीतकार नीरज जी, कुँवरपाल सिंह, नमिता सिंह आदि के संग में रहकर कुछ मौलिक और अनूदित रचनाएं प्रकाशित कीं। अलीगढ़ के विद्यार्थी जीवन के दौरान मलयालम से काफी कविताओं का अनुवाद हिंदी में किया, जो धर्मयुग, लहर, माध्यम आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। बाद में 'मलयालम की नई कविताएं' शीर्षक से एक संग्रह भी आगरा से प्रकाशित किया। 1964 में अलीगढ़ विश्वद्यिालय से एम.ए. हिंदी में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया और लाल बहादुर शास्त्री ने दीक्षांत समारोह में स्वर्ण पदक प्रदान किया तो अखबारों में समाचार बना।

1968 में केरलीय हिंदी लेखकों के हिंदी के लिए योगदान विषय पर पी-एच.डी. उपाधि मिली। कुछ दुर्लभ पांडुलिपियों और महाराजा स्वाति तिरुनाल की हिंदी रचनाओं पर काम किया था। 1973 में 'केरलीयों की हिंदी को देन' शीर्षक से एक पुस्तक राजकमल प्रकाशन ने प्रकाशित की थी। 1969 में केरल विश्वविद्यालय के कोचीन केंद्र में अनुवाद पाठ्यक्रम में पढ़ाने के लिए अंशकालीन अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया था। 'युग प्रभात' पत्रिका और नेशनल बुक ट्रस्ट आदि के लिए कुछ गद्यानुवाद करने और अनुवाद के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों पर सोचने और अध्ययन करने का भी अवसर मिला। यहां पर डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर, डॉ. रामन नायर, डॉ. रामचंद्र देव, डॉ. पी.वी. विजयन, डॉ. एम. ईश्वरी जैसे अध्यापक सहयोगी भी मिले, जिनसे साहित्य और अनुवाद आदि पर सार्थक चर्चाएं होती थीं। 1971 में कालिकट विश्वविद्यालय में नया हिंदी विभाग बना। प्राध्यापक बनकर कालिकट गया। अलीगढ़ में मेरे वरिष्ठ सहयोगी और वैष्णव भक्त के विद्वान डॉ. मालिक मुहम्मद यहां अध्यक्ष बने। बाद में डॉ. इकबाल अहमद, टी.एन. विश्वंभरन, डॉ. एम.एस. विश्वंभरन, डॉ. चंद्रिका, डॉ. हेमावती, डॉ. अच्युतन जैसे कई अध्यापक भी इस विभाग में आए। कालिकट विश्वविद्यालय जिस मलप्पुरम जिले में है, वह मालाबार का मुस्लिम बहुल जिला है। हम लोगों ने अध्ययन-अध्यापन के अलावा कई गोष्ठियां और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया, जिससे हिंदी लोगों के बीच में लोकप्रिय हुई। यहां अनुवाद, प्रयोजन मूलक हिंदी, तुलनात्मक अध्ययन, हिंदीतर भाषियों का हिंदी साहित्य जैसे विषयों पर देश में पहली बार नवीन पाठ्यक्रम

चलाया और अनेक संगोष्ठियां भी इन विषयों पर आयोजित कीं। विभाग में स्थापित अनुवादक-मंच के तत्त्वावधान में कई अनुवाद कार्यशालाएं भी आयोजित कीं, जो भाषा विभाग के विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच लोकप्रिय हुईं। कालिकट विश्वविद्यालय का यह हिंदी विभाग अब पचास वर्ष पूरा कर रहा है। केरल का यह जो उत्तरी हिस्सा है, वह 'मालाबार' कहलाता है। अरब देशों से अच्छा संबंध रहने और मैसूर के साथ ऐतिहासिक संबंधों के कारण यहां हिंदी का अच्छा माहौल रहा है। गुजराती व्यपारियों के कारण भी बोलचाल की हिंदी का यहां प्रचार रहा है। पिछले पचास वर्षों में हमारा विभाग बहुत बड़ा हिंदी उच्च अध्ययन केंद्र बन गया है। 1975 में हिंदी और मलयालम के परस्पर अनुवाद की भाषावैज्ञानिक समस्याएं विषय पर मुझे जबलपुर विश्वविद्यालय ने डी.लिट्. की उपाधि दी थी। अपने अध्ययन की भूमिका के तौर पर मैंने जो टिप्पणियां लिखी थीं, उनको मिलाकर 1985 में 'अनुवाद : सिद्धांत और प्रयोग' नामक पुस्तक इलाहाबाद के लोकभारती से प्रकाशित हुई। यह काफी लोकप्रिय बनी और यू.जी.सी. द्वारा भारतीय विश्वविद्यालयों में अनुवाद की मानक पाठ्यपुस्तक व संदर्भ ग्रंथ के रूप में मान्यता दी गई। इसे 'भारतीय अनुवाद परिषद्' ने प्रथम 'नाताली पुरस्कार' भी प्रदान किया। हिंदी और विश्व की प्रमुख भाषाओं के परस्पर अनुवाद पर एक परिसंवाद भी मैंने आयोजित किया, जो लोकभारती से 1993 में प्रकाशित हुआ। निर्मल वर्मा की कहानियों का मलयालम अनुवाद काफी लोकप्रिय रहा। शिवराम कारंत के 'मृत्यु के बाद' उपन्यास का मलयालम अनुवाद नेशनल बुक ट्रस्ट ने और पी. के. बालकृष्णन के 'अब मुझे सोने दो' उपन्यास का अनुवाद साहित्य अकादमी ने प्रकाशित किया, जिनका काफी स्वागत हुआ है। 2003 में कालिकट विश्वविद्यालय से प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के रूप में अवकाश प्राप्त किया। विश्वविद्यालय के इस कार्य-काल के बीच ही कई विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्यापन करने और भारतीय संस्कृति, अनुवाद, तुलनात्मक साहित्य आदि पर अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में आलेख प्रस्तुत करने का अवसर मिला। 1983-84 के दौरान पोलैंड के वार्सा विश्वविद्यालय में अतिथि आचार्य रहा। चेक सीमा की पहाड़ियों पर जो शीतकालीन हिंदी संभाषण कार्यशाला आयोजित की गई थी और हिंदी पोलिश का जो नाट्यप्रयोग किया गया, वह हिंदी को पोलैंड में लोकप्रिय बनाने में सहायक हुए। पेरिस के सरबोन विश्वविद्यालय केंद्र में अतिथि आचार्य के रूप में 1971 में हिंदी संरचना का अध्यापन किया। वर्ष 1997 से 2000 (तीन वर्ष) तक फिनलैंड के हेलसिंकी विश्वविद्यालय में हिंदी, मलयालम और भारतीय संस्कृति का अतिथि अध्यापक रहा। अपने अध्ययन के आधार पर फिन्निश लोकगाथा कलेवाला का जो मलयालम अनुवाद किया, वह 'समष्टि' पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित होता रहा। 1980 में यू.जी.सी. एवं सोवियत विज्ञान अकादमी के सहयोग से मास्को एवं लेनिनग्राद में रूसी एवं भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद की समस्याओं पर तीन महीने तक काम किया। इंग्लैंड, अमेरिका और मॉरीशस में हुए विश्व हिंदी सम्मेलनों में और हॉलैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रेलिया, फिनलैंड, ब्राजील और दक्षिण कोरिया में हुए अनुवाद विषयक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भी आलेख प्रस्तुत किए। सन् 1998 में हेलसिंकी विश्वविद्यालय में श्रीनारायण गुरु पर आलेख प्रस्तुत किया और उसी के आधार पर क्रांतिकारी संत श्री नारायण गुरु की कविताएं (वाणी प्रकाशन, 2000) एवं 'श्रीनारायण गुरु : आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत' (ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2019) प्रकाशित किए। यह पुस्तक अब मलयालम और अंग्रेजी में भी निकलेगी।

विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन करने और गोष्ठियों और कार्यशालाओं में भाग लेने के अनुभवों के आधार पर ही शायद भारत के पूर्व राष्ट्रपति एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलाध्यक्ष डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने वर्धा में मुझे कुलपति नियुक्त किया था। विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर को विश्व स्तरीय बनाने में और नए पाठ्यक्रम शुरू कर हिंदी को प्रौद्योगिकी और नवविकास के पथ पर ले जाने में योगदान किया। 2003 से 2008 तक पांच वर्ष महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के निर्माण और विकास के लिए लगाया। गांधी एवं शांति-अध्ययन को नई दिशा दी। अपनी प्रशासकीय व्यस्तता के बीच भी 'हंस', 'कादंबिनी', 'साहित्य अमृत', 'केरल ज्योति' आदि में कुछ लघुकथाएं प्रकाशित की थीं। 2017 में फिनलैंड के प्रवासी जीवन और भारत-फिनलैंड के सांस्कृतिक संबंध पर आधारित 'हिमयुगी चट्टानें' शीर्षक उपन्यास भी वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इसका मलयालम अनुवाद कालिकट के हरित बुक्स ने प्रकाशित किया। काव्य के संगीत पक्ष के प्रति मेरी हमेशा रुचि रही, मीरांबाई के 108 पदों का मलयालम अनुवाद 2017 में प्रकाशित हुआ, जिसमें गायन के अनुकूल मीरां के पदों का अनुसृजन किया गया है। विश्वभाषा हिंदी की उभरती दिशाओं पर लिखे गए मेरे लेख और डायरियां 'विश्वभाषा हिंदी की अस्मिता' शीर्षक से वर्धा से 2006 में प्रकाशित हुईं।

दक्षिण के हिंदी लेखकों ने मौलिक सृजन और अनुवाद के रूप में हिंदी को बहुत कुछ दिया है। उत्तर और दक्षिण के सांस्कृतिक सेतुबंधन में यह सब रचनाएं सहायक हैं। इस दिशा में थोड़ा-बहुत योगदान मैं भी देता रहा। आशा है, आगे भी कुछ ठोस योगदान दे सकूंगा।

□

विश्वविद्यालय के प्रकाशन

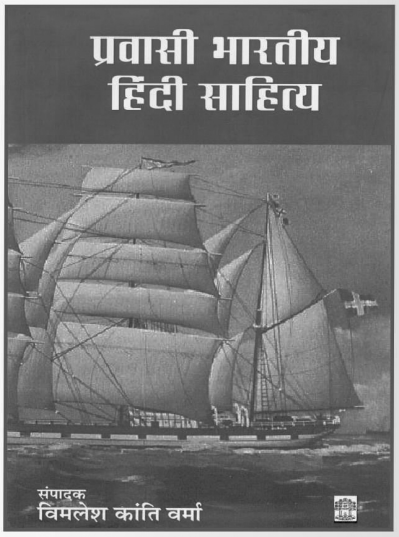

मूल्य : 750

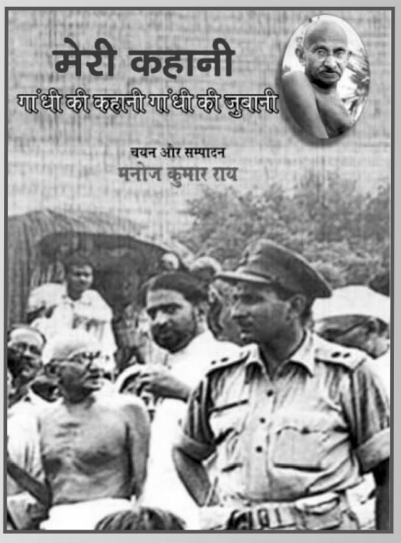

मूल्य : 595

हिंदी भाषा-समुदाय में भाषा-द्वैध (हिंदी-अवधी युग्म का साक्ष्य)

हनुमानप्रसाद शुक्ल

बीज शब्द : भाषा, बोली, द्विभाषिकता, बहुभाषिकता, भाषा-समुदाय (Speech Community), भाषा-द्वैध (Diglossia), दियालेक्त (Dialecte), पात्वा (Patois)।

परिप्रेक्ष्य/प्रस्तावना :

विश्व भर में भाषा-चिंतन अथवा भाषा-विचार की परंपरा सहस्राब्दियों पुरानी है; किंतु पिछली दो शताब्दियों में जिस भाषाविज्ञान का विकास हुआ है, वह पहले यूरो-केंद्रित रहा और फिर यूरो-अमेरिकी वर्चस्व के अधीन। भाषा/भाषाविज्ञान संबंधी अधिकांश अध्ययन भी यूरो-अमेरिकी विद्वानों द्वारा ही किए गए तो उपर्युक्त स्थिति स्वाभाविक भी मानी जाएगी। इन दो शताब्दियों में से पहली शताब्दी के अध्ययनों में औपनिवेशिक दृष्टि ही प्रभावी रही; किंतु लोकतंत्र की अनेकानेक उद्घोषणाओं के बावजूद दूसरी शताब्दी के बहुत-से अध्ययन भी वर्चस्व की मनोवृत्ति से मुक्त नहीं रह सके। यह अवश्य हुआ कि चर्चा और चिंता विश्व भर की भाषाओं की जाती रही। बिना किसी विश्वव्यापी भाषा-सर्वेक्षण के अनुमान-आधारित भाषाओं की संख्या भी बतायी जाती रही। इंटरनेशनल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ लिंग्विस्टिक्स (ब्राइट, 1992) में यह संख्या 6604 बतायी गई है। इस संख्या में भाषाएं (Languages) भी शामिल हैं और तथाकथित बोलियां (Dialects) भी। रोचक तथ्य यह है कि बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से विश्व की प्रथम 40 भाषाओं/बोलियों में से 14 भारत की हैं (द कैंब्रिज एन्साइक्लोपीडिया ऑफ लैंग्वेज, डेविड क्रिस्टल, 2010); और इनमें, अन्य भाषाओं के अलावा, हिंदी के साथ-साथ भोजपुरी और अवधी भी हैं। अब यदि हिंदी तथा भोजपुरी और अवधी सभी भाषाएं हैं तो फिर ग्रियर्सन आदि द्वारा घोषित भोजपुरी और अवधी आदि हिंदी की बोलियां कैसे होंगी? यदि नहीं होंगी तो फिर भाषा और बोली के बीच बड़े-छोटे का भेद क्या मान्य हो सकता है? और क्या स्वयं यूरोप की भाषाओं के बीच बड़े-छोटे के भेद के लिए 'भाषा' और 'बोली' की अवधारणाएं प्रयुक्त होती हैं? यदि नहीं तो शेष विश्व की भाषाओं के लिए फिर उसे कैसे वैध माना जाए? यह भी कि क्या विश्व भर की भाषाओं का विकास, रूपांतरण और संबंधों का निर्माण यूरोपीय

पद्धति से ही हुआ है; और यदि नहीं तो यूरोपीय भाषाओं के आधार पर विकसित अवधारणाओं, प्रतिमानों/ प्रतिदर्शों आदि को शेष विश्व की भाषाओं पर कैसे अध्यारोपित किया जा सकता है? इन प्रश्नों के संदर्भ में क्या ये अवधारणाएं पुनर्विचारणीय नहीं हो जातीं?

बीजभूत अवधारणाओं पर पुनर्विचार

ई. हॉगेन ने अपने चर्चित शोध-पत्र 'डायलेक्ट, लैंग्वेज, नेशन' (अमेरिकन एंथ्रोपोलोजिस्ट, 1966) में 'लैंग्वेज' और डायलेक्ट के मूल अर्थ और उसमें विकास/परिवर्तन की पर्याप्त चर्चा की है। हॉगेन ने बताया है कि लैंग्वेज और डायलेक्ट दोनों ही शब्द अंग्रेजी में फ्रेंच से आए हैं। इनमें से लैंग्वेज निश्चय ही पुराना है, जिसने तत्कालीन अंग्रेजी में प्रयुक्त टंग (Tongue) और स्पीच (Speech) को बहुत सीमा तक विस्थापित कर दिया। स्वयं फ्रेंच में यह शब्द बारहवीं शताब्दी में लैटिन लिंग्वा (Lingua) से बना, जिसका मूल लिंग्वाटिकम (Linguaticum) है। डायलेक्ट पहली बार पुनर्जागरण के दौरान प्रकट होता है, जो मूलतः ग्रीक से आयातित है। प्राचीन ग्रीस में कोई एक समीकृत अथवा एकीकृत मानक भाषा नहीं थी। इसलिए वहां 'लैंग्वेज' और 'डायलेक्ट' जैसे भेद आवश्यकता-जनित थे। 'डायलेक्ट' वहां विभिन्न क्षेत्रों के विशिष्ट भाषायी रूपों का वाचक था और उसका विशिष्ट प्रकार्यों अथवा प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाता था; जैसे कि इतिहास के लिए 'आयनिक', समूह-गान के लिए 'डॉरिक' तथा ट्रेजेडी के लिए 'एटिक'। ये भाषायी रूप भी केवल वाचिक नहीं थे; अपितु लिखित होते थे। 'ग्रीक', भाषा के अर्थ में, इन सभी विशिष्ट रूपों के लिए सामूहिक नाम था, जो स्वयं देशवाची था। इस प्रकार, 'डायलेक्ट' भाषा-विशेष के प्रकार्य-विशिष्ट रूपों का वाचक था, जिसे नाम भले ही भौगोलिक आधार पर दिया गया था, पर 'डायलेक्ट' और 'लैंग्वेज' के बीच किसी प्रकार का तात्त्विक भेद दिखाई नहीं देता। यह अलग बात है कि आगे चलकर एक एकीकृत 'ग्रीक' भाषा के मानक ने सभी पुराने रूपों को विस्थापित कर दिया, जो कि अनिवार्यतः एथेंस के मानक पर आधारित था और 'कोइने' (Koine) कहा जाता था।

इस संबंध में समस्त परवर्ती प्रयोगों के लिए ग्रीक परिस्थिति ने प्रतिदर्श का कार्य किया। 'लैंग्वेज' और 'डायलेक्ट' के अर्थ और प्रयोग में अनिश्चय और दुविधा यहीं से विकसित हुई; कालक्रम में 'लैंग्वेज' 'सुपरऑर्डिनेट' (Superordinate) हो गई और 'डायलेक्ट' 'सबॉर्डिनेट' (Subordinate)। यद्यपि फ्रेंच में इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरे पारिभाषिक शब्द 'पात्वा' (Patois) का प्रयोग विकसित हुआ, जो केवल भाषा के बोले जाने वाले रूप के लिए प्रयुक्त किया जाता था। 'दियालेक्त' (Dialecte) के लिए वहां एक 'समूची साहित्यिक परंपरा' का होना आवश्यक है। इस प्रकार 'पात्वा-दियालेक्त' का भेद भाषा के दो प्रकारों का नहीं; बल्कि दो प्रकार्यों का है, अतः और अधिक विस्तार में गए बिना, यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि पात्वा या/और दियालेक्त तथा लैंग्वेज के बीच संबंध छोटे-बड़े का नहीं, आधार-आधेय का है; और, उनमें अंतर 'प्रकार' का नहीं, 'प्रकार्य' का है। तथाकथित 'बोलियों' और 'भाषाओं' के संबंधों को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना उचित होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों के मूल में 'वाक्', अर्थात् 'बोलना' ही है; अन्य अभिलक्षण (लिखना, पढ़ना) सभ्यता और प्रौद्योगिकी के विकास से संबद्ध हैं।

भारतीय परंपरा तो भाषा को मूलतः 'वाक्' (Speech) ही मानती आयी है; यद्यपि इसका वहां अत्यंत सूक्ष्म विवेचन किया गया है, जिसका विस्तार प्रस्तुत प्रसंग में अपेक्षित नहीं है। वस्तुतः, भारत में भाषा के दो भेद प्रचलित रहे हैं–'प्राकृत' और 'संस्कृत'। 'प्राकृत' (साहित्यिक प्राकृतें नहीं) लोक-व्यवहार की भाषा होती थी और 'संस्कृत' विशिष्ट प्रयोजनों के लिए विकसित/मानकीकृत की गई 'मानक भाषा' होती थी। स्वाभाविक है कि 'संस्कृत' का आधार 'प्राकृत' भाषाएं होती थीं। देशकाल के अंतर से 'संस्कृत' भी बदलती थी और 'प्राकृत' तो बदलती ही थी। बाद की शताब्दियों में 'प्राकृत' को ही 'भाखा' कहा जाने लगा था, जिसके लिए 'भाखा बहता नीर' की उक्ति लोक-प्रचलित है। 'बोली', 'बानी', 'भाखा' सब 'प्राकृत' भाषाओं के पर्याय ही हैं और हां 'संस्कृत' भी 'भाषा' ही है। इस आधार पर 'भाषा' और 'भाषा' में अंतर केवल मानकीकरण की प्रक्रिया से आता है; अन्यथा सभी भाषाएं पारिभाषिक दृष्टि से समान ही होती हैं।

ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं को 'वर्नाक्युलर' (Vernacular), अर्थात् 'असभ्य लोगों की भाषा' कहा है। यहां तक कि गोस्वामी तुलसीदास ने जिस भाषा में 'रामचरितमानस' लिखा है, ग्रियर्सन के अनुसार वह भी 'वर्नाक्युलर' है । इससे अधिक विडंबनापूर्ण स्थापना भला क्या हो सकती है! औपनिवेशिक दुराग्रह और विकृत मनोवृत्ति ने विद्या के क्षेत्र में जो अंधेर की है, उसका यह एक नमूना है। बहरहाल, ग्रियर्सन की स्थापनाएं जो भी हों; 'रामचरितमानस' भारतीय भाषा-दृष्टि और ऊपरिलिखित संस्कृत-प्राकृत-संबंध का जीवंत अभिलेख है।

भारतीय बहुभाषिकता

भारत बहुभाषा-भाषी देश है, किंतु भारत में कितनी भाषाएं बोली जाती हैं, ठीक-ठीक कह पाना कठिन है। भाषा और बोली का हिसाब लगाना तो और भी मुश्किल है। पर जो लोग भारत की भाषा-परंपरा से अपरिचय के शिकार नहीं हैं, वे इस गणना को गैरजरूरी भी मानेंगे। भारत में औपनिवेशिक शासन से पहले भाषा कभी विभाजन, द्वेष या आपसी झगड़े का आधार नहीं रही। भाषाओं की स्थानिक/आंचलिक विशिष्टताएं तो सदैव से रही हैं; और उनमें सामर्थ्य, स्थिति, प्रयोजन एवं संपर्क से अंतर भी आते रहे हैं। कभी-कभी तो परस्पर व्याप्ति या आच्छादन (Overlaping) की स्थितियां भी आती रही हैं; किंतु उनका सहकार-संबंध और अविरोधी-भाव सदैव बना रहा है। केवल वर्तमान अथवा 1947 ई. से पहले वाले भारत के भूगोल में ही नहीं; बल्कि उसके बहुत पहले से ही, बृहत्तर भारत में भी, संचार, संपर्क, संप्रेषण अथवा संवाद के साधन के रूप में 'भाषा' कभी समस्या नहीं रही। 'भाषा' विभाजक कारक के रूप में पहली बार ब्रिटिश शासन के दौरान दिखाई पड़ती है, जिसकी दीवारें 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' द्वारा 'भाषावार' कांग्रेस प्रांतों का निर्माण करके सुदृढ़ की गईं। इसका दुष्परिणाम स्वतंत्र भारत भुगत रहा है और भाषा-नियोजन का अब तक का उपक्रम सफल नहीं हो सका है। यदि भारत के अतीत से प्रेरणा ली गई होती तो जो कठिनाइयां हैं, वे उपस्थित नहीं होतीं या उनका रूप कुछ और रहता।

बहरहाल, भारतीय बहुभाषिकता की बनावट और बुनावट यूरोप से भिन्न है। यहां मातृभाषाओं का एक विराट संजाल रहा है और उन सबके ऊपर एक अखिल भारतीय भाषा का

वितान तना हुआ पाया जाता रहा है। यह वितान कभी 'संस्कृत' के नाम से जाना गया तो कभी किसी और। प्रत्येक मातृभाषा एक ओर अपनी पार्श्ववर्तिनी मातृभाषाओं से स्नेह-सिंचित होती रही है तो दूसरी ओर इस 'राष्ट्रीय' वितान की छाया भी पाती रही है। फ्रेंच से अवधारणाएं ग्रहण करें तो 'दियालेक्त' या 'पात्वा' के भेद/विकल्पन मातृभाषाओं के ही हो सकते हैं; अखिल भारतीय या मानक भाषा के नहीं यानी 'प्राकृत' के, 'संस्कृत' के नहीं। भारत बहुभाषा-भाषी राष्ट्र है; इसका यह अर्थ नहीं कि भारत का प्रत्येक नागरिक एकाधिक भाषाओं का जानकार है, प्रयोक्ता है। हां, यह जरूर है कि भारत के प्रत्येक क्षेत्र/अंचल में एक से अधिक भाषाएं चलन में हैं और इन भाषाओं के बीच किसी-न-किसी प्रकार या स्तर का संबंध या परस्परता है। इसलिए संचार, संपर्क अथवा संवाद में कोई बाधा नहीं पहुंचती। उनमें प्रधानता-अप्रधानता अथवा भूमिकाओं का अंतर हो सकता है।

भारत बहुत पुरातन देश भी है। यहां देश-कालगत अनवरुद्ध भाषायी नैरंतर्य रहा है। भारत में न 'डार्क एज' आया और न 'रेनेसां' की आवश्यकता ही पड़ी। अनेक जनपदों, महाजनपदों, गणों, शिल्प-संघों और साम्राज्यों के रूप में वह संघटित-विघटित होता रहा है। ये सब बनते-मिटते अथवा संवर्द्धित-संकुचित होते रहे। इनकी अपनी भौगोलिक और सांस्कृतिक विशिष्टताएं थीं, जो अपने-अपने अंचल की भाषाओं में संरक्षित रहीं। साथ ही, विश्वव्यापी वाणिज्यिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संपर्क अथवा संवाद के कारण इनमें बहुत कुछ जुड़ता भी रहा। अनेकानेक वैदेशिक अवधारणाएं/परिभाषाएं/संज्ञाएं भारतीय भाषाओं के 'कोश' का हिस्सा बनती गईं; कई बार तो इस तरह कि मूल की पहचान ही कठिन हो गई। कालक्रम से इन भाषाओं में कभी-कभी नाम-रूप दोनों में परिवर्तन-संवर्द्धन होता रहा तो कभी केवल नाम या केवल रूप में; पर ये भारत के अजस्र भाषायी प्रवाह में निरंतर बनी रहीं, कभी निशेष नहीं हो गईं। एक बहुभाषिक राष्ट्र के रूप में भारत का निर्माण इन सबसे मिलकर हुआ है। लंबे समय तक धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा की भाषा के रूप में 'संस्कृत' ने इन सबको पोषित किया है। कोई भी भारतीय भाषा ऐसी नहीं है, जिसने इस अक्षय-कोष से कुछ-न-कुछ दाय न पाया हो और संस्कृत भी ऐसी नहीं है कि इनमें से सभी से कुछ-न-कुछ संचय न किया हो। यह संबंध परस्परता का है; लघुता और महत्ता का नहीं, तो भारतीय 'बहुभाषिकता' की निर्मिति इस प्रकार हुई है।

हिंदी भाषा-समुदाय

हिंदी भाषा-समुदाय विशाल है। यों हिंदी प्राचीन गणसमाजों, जनपदों/महाजनपदों और उत्तर भारतीय साम्राज्यों की अधिवासी जनता की भाषाओं के साझे उत्तराधिकार का परिणाम है, किंतु शेष भारत की आंचलिक भाषाओं से भी उसने पर्याप्त मधु-संचय किया है। यदि रूपक में कहा जाए तो 'हिंदी' की जड़ें उत्तर भारत की भाषाओं की जमीन पर फैली हुई है, जबकि उसकी शाखाएं-प्रशाखाएं समूचे भारत को आच्छादित करती हैं, अर्थात् हिंदी अपने लिए पोषक तत्त्वों का आहरण समूचे भारत से करती है। इसीलिए उसका भूगोल किसी स्थान अथवा अंचल तक सीमित नहीं है। उसके इसी स्वरूप के कारण राष्ट्रीय आंदोलन के हमारे नायकों ने उसे 'राष्ट्र-भाषा' स्वीकार किया था। सभी भारतीय भाषाएं इस 'राष्ट्र-भाषा' को संपोषित करती हैं और स्वयं उससे संपुष्टि भी पाती हैं। इसी

'संश्लिष्ट प्रक्रम' में हिंदी के मानकीकरण की प्रक्रिया का संपन्न होना संभव है। इसी तरह वह हमारे समय की 'संस्कृत' हो सकेगी अर्थात् ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा, सोच-विचार/चिंतन और अन्य प्रयोजनों (वाणिज्य, चिकित्सा, न्याय आदि) की समर्थ भाषा के रूप में स्थापित हो सकेगी तथा भारत की सामासिक संस्कृति और राष्ट्रीय गौरव का हेतु बन सकेगी। उसके इसी स्वरूप को दृष्टिगत रखते हुए, कुछ विडंबनाओं के बावजूद, मनीषी संविधान निर्माताओं ने हिंदी के विकास की दिशा का सम्यक् निर्देश इस तरह किया है–

''संघ का कर्त्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।'' (भारत का संविधान, भाग-17, अनुच्छेद-351)

हिंदी भाषा-समुदाय की विशालता पर विचार करते हैं तो हमारे सामने डेढ़ दर्जन से अधिक भाषाएं आती हैं, जिन्हें अब तक हिंदी की बोलियां कहा जाता रहा है। निस्संदेह वे हिंदी की आधार-स्वरूप हैं, पर वे सब-की-सब भाषाएं ही हैं; बोलियां नहीं। ऊपर हम अवधारणाओं के पुनर्विचार के क्रम में यह देख चुके हैं कि 'भाषा' और 'बोली' पर्याय हैं, उनमें छोटे-बड़े का भेद नहीं है। यदि कोई भेद है भी तो वह प्रकार्यगत है, न कि प्रकारगत। हिंदी और हिंदी भाषा-समुदाय की अन्य भाषाओं के संबंध पर विचार करना हो तो हमें ऊपर चर्चित फ्रेंच संदर्भ को आधार बनाना चाहिए। फ्रेंच में लैंग्वेज, दियालेक्त और पात्वा- तीन अवधारणाएं हैं। ये तीनों अवधारणाएं भाषायी विकास अथवा उतार-चढ़ाव को काफी ठीक तरह से व्याख्यायित करती हैं और इन तीनों का संबंध भाषा-प्रकार्य से है, न कि भाषा-प्रकार से। हिंदी भाषा-समुदाय के अंतर्गत आने वाली डेढ़ दर्जन से अधिक भाषाओं में से कई 'लैंग्वेज' के रूप में प्रतिष्ठित रहीं, कुछ 'दियालेक्त' के रूप में तो कुछ केवल 'पात्वा' के रूप में। उदाहरण के लिए, 'ब्रज' लगभग पांच शताब्दी तक काव्य, धर्म और व्यापार की 'भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित रही; कुछ समय तक 'दियालेक्त' के रूप में रही और कुछ समय तक 'दियालेक्त' और 'पात्वा' दोनों रूपों में। यह स्थिति लगभग तीन शताब्दियों तक अवधी की भी रही, जिसमें 'रामचरितमानस' जैसा काव्य, धर्म और दर्शन का गौरव-ग्रंथ लिखा गया। 'रामचरितमानस' की भाषा समर्थ 'लैंग्वेज' का प्रमाण है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। यह अलग बात है कि प्रयोजन और प्रकार्य की दृष्टि से इनकी एक जैसी या कुछ अलग-अलग सीमाएं रही हैं।

तो, हिंदी भी भाषा है और अवधी, ब्रज आदि तथाकथित बोलियां भी भाषाएं ही हैं; इनमें छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं है। प्रयोजन और प्रकार्य की दृष्टि से ये सभी भाषा के विविध रूपों– लैंग्वेज, दियालेक्त और पात्वा की भूमिकाएं निभाती रही हैं। हिंदी का इस संदर्भ में विकास सिर्फ लैंग्वेज के रूप में हुआ, दियालेक्त या पात्वा के रूप में नहीं। हिंदी के भी मानक रूप के अलावा

कई क्षेत्रीय या शैलीगत विकल्पन (Variation) भी पाये जाते हैं। इनमें हिंदुस्तानी, बंबइया, कलकतिया आदि अनेक रूप हैं। विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों की हिंदी के भी देश और परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप हैं। इसे चाहें तो देशांतरी हिंदी कह सकते हैं। इसकी भी दो श्रेणियां हैं–एक तो पुराने गिरमिटिया लोगों की हिंदी, जिसमें उनकी अपनी मातृभाषाओं–अवधी, भोजपुरी आदि की गहरी छाप है; दूसरी वह हिंदी, जो मानक हिंदी आधारित है। हिंदी भाषा-समुदाय इन सबसे मिलकर बनता है। वह केवल मानक हिंदी के प्रयोक्ताओं का समुदाय-भर नहीं है। यही कारण है कि हिंदी भाषा-समुदाय के लोग मानक हिंदी के साथ-साथ अपनी मातृभाषाओं का भी प्रयोग करते हैं। इसीलिए हिंदी उनके लिए 'सहयोजित मातृभाषा' या 'प्रथम भाषा' के रूप में अनिवार्यतः कार्य करती है। इस प्रकार हिंदी भाषा-समुदाय के बीच दोहरे भाषा प्रयोग की स्थिति बनती है। यह स्थिति क्या है? क्या इसे भाषा-द्वैध कह सकते हैं?

भाषा-द्वैध और हिंदी भाषा-समुदाय

सी.ए. फर्गुसन ने नवंबर 1958 में अमेरिकन एंथ्रोपोलॉजिकल एसोसिएशन की बैठक में वाशिंगटन में एक पत्र प्रस्तुत किया था, जो कुछ समय के बाद संशोधित रूप में 'वर्ड' (Vol. 15,1959, पृ. 325-40) में डायग्लॉसिया (Diglossia) शीर्षक से प्रकाशित कराया गया था। इसमें उन्होंने ऐसी परिस्थिति को व्याख्यायित करने की कोशिश की थी, जिसमें दो विशिष्ट भाषायी कोड स्पष्ट प्रकार्यात्मक पार्थक्य के साथ प्रयुक्त होते हैं। ये विशिष्ट भाषायी कोड एक ही भाषा के दो विकल्पन हो सकते हैं; दो भिन्न भाषायी मूल के हो सकते हैं अथवा मिश्रित भी हो सकते हैं। शर्त यह है कि उनमें प्रकार्यात्मक पार्थक्य सुस्पष्ट हो। फर्गुसन ने अपने अध्ययन के लिए चार भाषायी युग्म चुने–अरबी, स्विस जर्मन, हैतियन क्रियोल एवं आधुनिक ग्रीक। उन्होंने इन भाषाओं के दो रूपों में से एक को उच्च और दूसरे को निम्न कहा। अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने डायग्लॉसिया के कुछ प्रतिमान विकसित किये। ये थे–प्रकार्य, प्रतिष्ठा, साहित्यिक विरासत, अधिगम-प्रक्रिया, मानकीकरण, स्थायित्व, व्याकरण, कोश (शब्दावली), ध्वनि-व्यवस्था। अपने अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में उन्होंने डायग्लॉसिया को परिभाषित करने का यत्न भी किया।* साथ ही, इस दिशा में और अधिक अध्ययन किये जाने का आह्वान भी उन्होंने किया।

प्रायः यह माना जाता है कि डायग्लॉसिया बहुभाषिक समुदाय में ही संभव है। किंतु, गम्पर्ज (1966) ने यह स्पष्ट किया कि बहुभाषिक समुदायों के अलावा भिन्न प्रयुक्तियों, शैलियों अथवा प्रकार्यात्मक दृष्टि से पृथक् किन्हीं भाषायी विकल्पों के बीच भी डायग्लॉसिया की स्थिति हो सकती है। जे.ए. फिशमैन (1967) ने भाषा-समुदायों के बीच डायग्लॉसिया को द्विभाषिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया और चार भिन्न स्थितियों का उल्लेख किया। पहली स्थिति वह है, जहां द्विभाषिकता और डायग्लॉसिया दोनों की स्थिति रहती है। दूसरी स्थिति वह है, जब द्विभाषिकता के बिना डायग्लॉसिया पाया जाता है। तीसरी स्थिति बिना डायग्लॉसिया के द्विभाषिकता की होती है। ऐसे भी भाषायी समुदाय पाये जाते हैं, जहां न द्विभाषिकता पायी जाती है और न ही डायग्लॉसिया; यह चौथी स्थिति है। द्विभाषिकता के भी दो पक्ष माने जाते रहे हैं–प्रयोक्ता सापेक्ष और स्थिति सापेक्ष।

प्रयोक्ता सापेक्ष द्विभाषिकता व्यक्तिगत होती है और स्थिति सापेक्ष समुदायगत; किंतु यह आवश्यक नहीं है कि दोनों स्थितियां साथ-साथ हों। किसी समुदाय के द्विभाषिक हुए बिना भी उस समुदाय का कोई व्यक्ति द्विभाषिक हो सकता है। इसी प्रकार, किसी समुदाय के कुछ या किन्हीं व्यक्तियों के द्विभाषिक हो जाने से उस समुदाय का द्विभाषिक हो जाना अनिवार्य नहीं है। यहां यह ध्यातव्य है कि अब द्विभाषिक होने के लिए, ब्लूमफील्ड के शब्दों में, 'मातृभाषावत् दक्षता' अनिवार्य नहीं मानी जाती। इसका परिमाणात्मक निर्णय कठिन है, इसीलिए वाइनराइख ने इसे प्रयोक्ताओं में 'दो भाषाओं को एक के बाद दूसरे के प्रयोग के स्वभाव' के रूप में देखे जाने का आग्रह किया। व्यावहारिक स्तर पर द्विभाषिकता दो भाषाओं के व्यक्तिगत अथवा सामुदायिक स्तर पर सह-प्रयोग की स्थिति है; किंतु डायग्लॉसिया सामुदायिक स्थिति है, वैयक्तिक नहीं। 'भाषा-द्वैध' के संबंध में जो व्यावहारिक अध्ययन और उन पर आधारित सैद्धांतिक विश्लेषण किए गए हैं, उनके आधार पर कह सकते हैं कि दोनों भाषाओं में प्रकार्यगत पार्थक्य सुस्पष्ट होता है; एक अनौपचारिक होती है तो दूसरी औपचारिक; दूसरी मानकीकृत होती है तो पहली स्वतंत्र और जीवंत; पहली प्रायः मातृभाषा होती है, जिसे यत्नपूर्वक सीखना नहीं होता; पर दूसरी को सायास सीखना होता है; कभी-कभी दोनों के बीच सामाजिक स्तरीकरण भी देखने को मिलता है; शब्दावली, व्याकरण और ध्वनि-व्यवस्था का साझा भी विकल्पतः हो सकता है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 20वीं शताब्दी में वर्णनात्मक भाषाविज्ञान ने भाषाओं का एक लोकतंत्र तो विकसित किया, किंतु भाषाओं में समता के स्थान पर विषमता को ही पोषित किया। हां, भाषायी वर्चस्व की दीवारें अवश्य कुछ हद तक दरक गयीं, पर भाषाविज्ञान ने विकसित-अविकसित भाषाओं की श्रेणियां बनायीं और उनके बीच की खाई को चौड़ा और गहरा किया। संसार की अनधीत भाषाओं की संख्या हजारों में है, जबकि अधीत की कुछ सैकड़ा। अवधारणाकरण की सीमाओं को हमने देखा ही; ये तब और बढ़ जाती हैं, जब हजारों भाषाएं इसमें सम्मिलित ही न हों। अकेले भारतीय भाषाएं ही यूरोपीय भाषाविज्ञान और उसकी अवधारणाओं को प्रश्नांकित करने के लिए पर्याप्त हैं।

हिंदी भाषा-समुदाय में भाषा-द्वैध को समझने के लिए 'हिंदी' और 'अवधी' का उदाहरण देखा जा सकता है। काव्यभाषा के रूप में अवधी के प्रमाण चौदहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध से ही मिलने लगते हैं** अर्थात् फ्रेंच शब्दावली में वह 'दियालेक्त' हो गई थी और आगे चलकर रामचरितमानस जैसे गौरव-ग्रंथों में विधिवत् 'लैंग्वेज', तो चौदहवीं शताब्दी से पूर्व वह अवधी मातृभाषियों के लिए दो-एक शताब्दी से 'पात्वा' के रूप में अस्तित्वमान रही ही होगी। जबकि 'हिंदी', 'भाषा' के अर्थ में उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में पहली बार प्रयोग में दिखायी पड़ती है और काव्यभाषा के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक अर्थात् 'अवधी' काव्यभाषा से 'हिंदी' काव्यभाषा के विकसित होने में पांच शताब्दियों से अधिक का अंतर है, किंतु हिंदी के समूचे उत्तर भारत की काव्यभाषा बनने अथवा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत होने में किसी प्रकार की बाधा अनुभव नहीं की गई। उन्नीसवीं शताब्दी में आकार लेनेवाली हिंदी का आधार चाहे 'खड़ी बोली' रही हो अथवा कोई और; किंतु समूचे हिंदी भाषा-समुदाय में हिंदी को सहज स्वीकृति

प्राप्त हुई। इससे पहले 'दियालेक्त' अथवा 'लैंग्वेज' के उसके अनेक रूप विकसित हो चुके थे; नाम-रूप में अंतर भी आता रहा था, फिर भी भाषा-सातत्य बना रहा। नाम में यदि बाद में भी कोई परिवर्तन हुआ तो वह कोई और अर्थात् परायी भाषा नहीं हो गई। विशाल हिंदी भाषा-समुदाय के किसी भू-क्षेत्र विशेष में प्रचलित भाषाएं 'पात्वा' के रूप में मातृभाषा की तरह चलन में बनी रहीं। ये सभी मातृभाषाएं किसी 'दियालेक्त' अथवा 'लैंग्वेज' के कारण नष्ट भी नहीं हुईं; बल्कि एक-दूसरे का पोषण और संरक्षण करती रहीं। इसलिए आज हम जिसे हिंदी कहते हैं, उसका अपनी आधार भाषा(ओं) अथवा अपनी पूर्वजा 'दियालेक्त' या 'पात्वा' के साथ 'सबॉर्डिनेट' और 'सुपरऑर्डिनेट' का संबंध नहीं है। इसीलिए समूचे हिंदी क्षेत्र में देश और काल दोनों में भाषा-सातत्य में कभी कोई बाधा नहीं पड़ी। अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मगही, मारवाड़ी, बुंदेली आदि 'दियालेक्त' अथवा 'पात्वा' हो सकती हैं और हिंदी 'लैंग्वेज'। इनके बीच अगर कोई संबंध है तो आधार और आधेय का; छोटे और बड़े का नहीं। यही कारण है कि समूचा हिंदी क्षेत्र समय-समय पर 'लैंग्वेज' (मानक भाषा) का प्रयोजन और प्रकार्य के अनुसार निर्माण कर लेता रहा है। वैसे तत्त्वतः ये सभी भाषाएं ही हैं; जैसा ऊपर कहा गया, इनमें अंतर प्रकार्य का ही है। यदि ऐसा न होता तो उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक 'काव्यभाषा' ब्रज थी, पर बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में ही खड़ी बोली उसकी स्थानापन्न बन गई। दुनिया के भाषायी इतिहास में यह एक अनोखी घटना है। यह तथ्य इस बात का भी साक्ष्य है कि हिंदी भाषा-समुदाय की भाषाएं परस्पर अविरोधी हैं; एक मानक और बृहत्तर प्रयोजनों की भाषा के रूप में हिंदी का सहज समर्थन करती हैं, क्योंकि वे भी हिंदी ही हैं। मातृभाषा के रूप में इनका हिंदी से जो संबंध है, उस संबंध के कारण ही इनके बीच भाषा-द्वैध (Diglossia) की स्थिति बनती है, किंतु सामुदायिक स्तर पर यह द्विभाषिकता नहीं है। हिंदी भाषा-समुदाय में भाषा-द्वैध के स्वरूप को समझने के लिए मैंने अवधी-क्षेत्र के अयोध्या (फैजाबाद) जिले का सर्वेक्षण किया और पांच भिन्न प्रकार्यों के लिए पांच चरों की दृष्टि से भाषा-प्रयोक्ताओं का अभिमत प्राप्त किया, जिसे निम्नलिखित तालिकाओं (1-5 तक) में देखा जा सकता है–

तालिका -1

आप रिश्तेदारों और पड़ोसियों से बातचीत अवधी में करते हैं या हिंदी में?

	अवधी	**हिंदी**	**मिला-जुला**	
लिंग				
स्त्री	40	0	13	53
पुल्लिंग	118	7	22	147
कुल	**158**	**10**	**29**	**200**
आयु-वर्ग				
16 से 25 वर्ष	43	3	16	62
26 से 50 वर्ष	83	2	17	102
50 वर्ष से अधिक	32	2	2	36
कुल	**158**	**7**	**35**	**200**

शिक्षा				
स्नातक से कम	22	1	2	25
स्नातक	69	5	25	99
स्नातक से ऊपर	65	1	8	74
अन्य	2	0	0	2
कुल	**158**	**7**	**35**	**200**
व्यवसाय				
विद्यार्थी	49	2	22	73
शिक्षक	16	1	1	18
एडवोकेट	33	1	2	36
व्यवसायी	12	1	1	14
किसान/मजदूर	18	1	4	23
अन्य	30	1	5	36
कुल	**158**	**7**	**35**	**200**
अधिवास				
शहरी	17	0	11	28
ग्रामीण	141	7	24	172
कुल	158	7	35	200

तालिका-2

आप घरेलू कामों के लिए अवधी का प्रयोग करते हैं या हिंदी का?

	अवधी	**हिंदी**	**मिला-जुला**	
लिंग				
स्त्री	39	0	14	53
पुल्लिंग	122	10	15	147
कुल	161	10	29	200
आयु-वर्ग				
16 से 25 वर्ष	46	2	14	62
26 से 50 वर्ष	85	5	12	102
50 वर्ष से अधिक	30	3	3	36
कुल	**161**	**10**	**29**	**200**
शिक्षा				
स्नातक से कम	21	1	3	25
स्नातक	72	8	19	99
स्नातक से ऊपर	66	1	7	74

अन्य	2	0	0	2
कुल	**161**	**10**	**29**	**200**
व्यवसाय				
विद्यार्थी	51	4	18	73
शिक्षक	16	2	0	18
एडवोकेट	34	0	2	36
व्यवसायी	12	1	1	14
किसान/मजदूर	21	1	1	23
अन्य	27	2	7	36
कुल	**161**	**10**	**29**	**200**
अधिवास				
शहरी	17	3	8	28
ग्रामीण	144	7	21	172
कुल	**161**	**10**	**29**	**200**

तालिका-3

आप बाजार में अवधी का प्रयोग करते हैं या हिंदी का?

	अवधी	**हिंदी**	**मिला-जुला**	
लिंग				
स्त्री	45	1	7	53
पुल्लिंग	53	15	79	147
कुल	**98**	**16**	**86**	**200**
आयु-वर्ग				
16 से 25 वर्ष	38	5	19	62
26 से 50 वर्ष	48	6	48	102
50 वर्ष से अधिक	12	5	19	36
कुल	**98**	**16**	**86**	**200**
शिक्षा				
स्नातक से कम	9	2	14	25
स्नातक	52	10	37	99
स्नातक से ऊपर	36	4	34	74
अन्य	1	0	1	2
कुल	**98**	**16**	**86**	**200**

व्यवसाय				
विद्यार्थी	41	7	25	73
शिक्षक	7	2	9	18
एडवोकेट	13	3	20	36
व्यवसायी	5	1	8	14
किसान/मजदूर	9	1	13	23
अन्य	23	2	11	36
कुल	**98**	**16**	**86**	**200**
अधिवास				
शहरी	10	4	14	28
ग्रामीण	88	12	72	172
कुल	**98**	**16**	**86**	**200**

तालिका-4

आप व्यवसाय के लिए अवधी का प्रयोग करते हैं या हिंदी का?

	अवधी	**हिंदी**	**मिला-जुला**	
लिंग				
स्त्री	18	1	34	53
पुल्लिंग	25	11	111	147
कुल	**43**	**12**	**145**	**200**
आयु-वर्ग				
16 से 25 वर्ष	16	4	42	62
26 से 50 वर्ष	20	3	79	102
50 वर्ष से अधिक	7	5	24	36
कुल	**43**	**12**	**145**	**200**
शिक्षा				
स्नातक से कम	5	1	19	25
स्नातक	19	7	73	99
स्नातक से ऊपर	19	3	52	74
अन्य	0	1	1	2
कुल	**43**	**12**	**145**	**200**

व्यवसाय				
विद्यार्थी	18	3	52	73
शिक्षक	1	1	16	18
एडवोकेट	7	2	27	36
व्यवसायी	0	1	13	14
किसान/मजदूर	4	1	18	23
अन्य	13	4	19	36
कुल	**43**	**12**	**145**	**200**
अधिवास				
शहरी	3	1	24	28
ग्रामीण	40	11	121	172
कुल	**43**	**12**	**145**	**200**

तालिका-5

आप पढ़ाई में अवधी का प्रयोग करते हैं या हिंदी का?

	अवधी	**हिंदी**	**मिला-जुला**	
लिंग				
स्त्री	1	51	1	53
पुल्लिंग	14	43	90	147
कुल	**15**	**94**	**91**	**200**
आयु-वर्ग				
16 से 25 वर्ष	4	38	20	62
26 से 50 वर्ष	9	42	51	102
50 वर्ष से अधिक	2	14	20	36
कुल	**15**	**94**	**91**	**200**
शिक्षा				
स्नातक से कम	2	9	14	25
स्नातक	9	53	37	99
स्नातक से ऊपर	4	31	39	74
अन्य	0	1	1	2
कुल	**15**	**94**	**91**	**200**

व्यवसाय				
विद्यार्थी	4	45	24	73
शिक्षक	3	4	11	18
एडवोकेट	2	15	19	36
व्यवसायी	1	3	10	14
किसान/मजदूर	0	7	16	23
अन्य	5	20	11	36
कुल	**15**	**94**	**91**	**200**
अधिवास				
शहरी	6	3	19	28
ग्रामीण	9	91	72	172
कुल	**15**	**94**	**91**	**200**

इन पांचों तालिकाओं को देखने से सुस्पष्ट है कि अवधी भाषा-समुदाय के अधिकांश लोग अवधी को अपनी मातृभाषा के रूप में देखते-मानते हैं और अवधी भाषा-समुदाय को हिंदी भाषा-समुदाय का अभिन्न अंग समझते हैं। दोनों के बीच जैविक संबंध है। अवधी की ही तरह अन्य मातृभाषाएं भी अपने प्रयोक्ताओं के जीवन का अनिवार्य अंग हैं। उनमें देश और काल की दृष्टि से 'विकल्पन' (variation) भी पाए जाते हैं। ये भाषाएं जीवंत हैं, इसलिए हिंदी भी जीवंत है और उसके पल्लवित-पुष्पित होने की संभावनाएं भी शेष हैं।

निष्पत्ति स्वरूप कह सकते हैं कि हिंदी भाषा-समुदाय तथा हिंदी क्षेत्र की अन्य भाषाओं के बीच भाषा-द्वैध की स्थिति पाई जाती है; उसे 'द्विभाषिकता' नहीं कहा जा सकता। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि यूरोपीय अवधारणाएं भारतीय भाषाओं के संदर्भ में 'यथावत्' नहीं लागू हो सकतीं; चाहे वह भाषा-द्वैध' की ही अवधारणा क्यों न हो!

टिप्पणी :

* "Diglossia is a relatively stable language situation in which, in addition to the primary dialects of the language (which may include a standard or regional standards), there is a very divergent, highly codified (often grammatically more complex) superposed variety, the vehicle of a large and respected body of written literature, either of an earlier period or in another speech community, which is learned largely by formal education and is used for most written and formal spoken purposes, but it is not used by any sector of the community for ordinary conversation." (Ferguson, Charls A., (1959). Diglossia. Word, 15, 335)

** ''वस्तुतः प्राकृत पैंगलम् के कुछ छंदों राउलरवेल और उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण की भाषा उस

आसन्नपूर्वजा भाषा का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे अवधी विकसित हुई है।'' (त्रिपाठी, डॉ. विश्वनाथ. (1975). प्रारंभिक अवधी, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 191-92)

सहायक ग्रंथ :

पुस्तकें

1. Paulston, C.B. and G. Richard Tucker. (2003). Sociolinguistics : The Essential Readings. (Malden USA : Blackwell Publication.
2. Pride, J.B. and J. Holmes.(1972). Sociolinguistics : Selected Readings. England : Penguin Books.
3. Wardhaugh, Ronald & Fuller, J.M. (2015). An Introduction to Sociolinguistics (UK: Wiley-Blackwell)
4. Hudson. R. A. (1999). Sociolinguistics : New York : Cambridge University Press.

शोध पत्रिकाएं

1. Ferguson, Charls A. (1959). Diglossia. Word, 15, 325-340.
2. Haugen, E. (1966). Language Conflict and Language Planning : dilect, language, nation. American Anthropologist. 68, 922-35.

इन्साइक्लोपीडिया

1. Crystal, D. (2010). The Cambridge Encyclopedia of Language. Cambridge : Cambridge University Press.
2. Bright, W. (ed.) International encylopedia of linguistics (1992) New York : OUP.

□

पाठकों की प्रतिक्रिया

प्रिय प्रो. रजनीश कुमार शुक्लजी,

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका बहुवचन के विशेषांक 'भारतीय साहित्य में कश्मीर' (अंक 64-65-66 जनवरी-सितंबर, 2020) की एक प्रति प्राप्त हुई, धन्यवाद।

जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध भारत और भारतीयता का अवबोध है। कश्मीर की जो सांस्कृतिक मान्यताएं हैं, वह भारत की भी मूल सांस्कृतिक मान्यताएं हैं। सनातन धर्म की वैदिक परंपरा सहित भारतीय धर्म साधना की बौद्ध एवं जैन धर्म की समानांतर धाराओं में भी कश्मीर का विशेष महत्त्व है। प्राचीन भारत में कश्मीर शैव दर्शन का प्रमुख केंद्र था। शारदा सर्वज्ञ पीठ संपूर्ण जम्मू-कश्मीर की ज्ञान परंपरा की केंद्र बिंदु रही है।

संस्कृताचार्य व भारतीय समीक्षाशास्त्र की विद्वत विभूति आचार्य अभिनवगुप्त का कश्मीरी साहित्य परंपरा में उल्लेखनीय योगदान है। कल्हण की राजतरंगिणी, राजशेखर की काव्यमीमांसा, आदि कवयित्री लल्लेश्वरी की रचनाओं से धरती के स्वर्ग कश्मीर की समकालीन झलक दृष्टिगोचर होती है।

संपूर्ण भारतीय ज्ञान-परंपरा में जम्मू-कश्मीर का अवदान अमूल्य है। अपने इन वैशिष्ट्यों के आधार पर जम्मू-कश्मीर अनादि काल से आज तक भारत माता का शीश है। जम्मू-कश्मीर से अस्थायी और संक्रमणकालीन प्राविधानों की समाप्ति हमारी समावेशी संस्कृति को पुष्ट करने का ही उदाहरण है। आज जम्मू-कश्मीर राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़कर विकास की एक नई गाथा लिख रहा है।

मुझे आशा है कि विश्वविद्यालय द्वारा भविष्य में भी इसी प्रकार अध्येताओं एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण विषयों पर विशेषांक का प्रकाशन किया जाएगा।

सद्भावनाओं सहित,

आपका

—योगी आदित्यनाथ

मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

लोक भवन, लखनऊ-226001 (उ.प्र.)

प्रिय प्रो. शुक्ल,

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका 'बहुवचन' विशेषांक भारतीय साहित्य में कश्मीर (अंक 64-65-66 जनवरी-सितंबर, 2020) कश्मीर के सांस्कृतिक वैभव जम्मू-कश्मीर के आदि से लेकर अद्यतन इतिहास को समग्रता से समावेशित कर प्रस्तुत किया गया तथा यह अंक संस्कृत, कश्मीरी हिंदी साहित्य एवं अन्य भाषाओं में जम्मू-कश्मीर के अवदान को रेखांकित कर संकलित किया गया है, साथ-ही-साथ अखिल भारतीय स्तर पर बोली जाने वाली देश की अनेक भाषाओं में समीक्षात्मक लेख भी प्रकाशित किए गए हैं, जो जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में एक ग्रंथ के रूप में ख्याति प्राप्त करेगा।

अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका 'बहुवचन' के आगामी विशेषांक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, समाज सुधारक एवं अन्य आयामों पर आधारित भारतीयता का अरुणोदय पूर्वोत्तर (अंक 67, 68-69) का प्रकाशन भी किया रहा है। आशा है कि 'बहुवचन' के प्रकाशन से हिंदी साहित्य प्रेमियों के साथ शोधार्थियों एवं अन्य भाषाओं के साहित्य साधकों को लाभ होगा।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के इस पुनीत प्रकाशन के लिए बहुत-बहुत बधाई एवं हार्दिक शुभकामनाएं।

सस्नेह,

आपका

—आलोक कुमार राय

कुलपति

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मान्य प्रो. शुक्लजी,

बहुवचन का कश्मीर अंक मिला। यह अंक ऐतिहासिक है, इतनी विपुल सामग्री और वह भी भारतीय धर्म-संस्कृति के आधार पर एक स्थान पर उपलब्ध हो, यह दुर्लभ है। आपका लेख इस अंक की प्रेरणा ही नहीं, उसकी मूल चिंतन-भूमि की भूमिका है। अब इसे पुस्तक रूप में प्रधानमंत्रीजी, कश्मीर के राज्यपाल तथा कश्मीर की शिक्षण संस्थाओं तक अवश्य ही भिजवाना चाहिए तथा हिंदी-अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं में तथा कश्मीर के अखबारों में इसकी समीक्षा प्रकाशित हो तो इस महत्त्वपूर्ण कार्य का राष्ट्रीय महत्त्व बनेगा, जो अवश्य ही होना चाहिए।

शुभकामनाओं सहित...

—कमल किशोर गोयनका

मोबाइल : 09811052469,

ई-मेल : kkgoyanka@gmail.com

कश्मीर-अध्ययन पर यह अंक एक बेशकीमती योगदान है

बहुवचन जर्नल के कश्मीर विशेषांक 64-65-66 के 508 पृष्ठों की सामग्री से गुजरते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि कश्मीर विषय का विशेषज्ञ होने के नाते मैंने पाया कि इसमें कश्मीर के लोगों की संस्कृति, इतिहास और जीवन के कई आयामों को विस्तृत तरीके से सामने लाने का सफल प्रयास किया गया है।

अंक की प्रस्तावना कश्मीर के संस्कृत साहित्य की उचित झलकियां प्रस्तुत करती है, जो कश्मीर में हिंदू राजाओं के काल में रचा गया। कल्हण के अनुसार 3697 ईसा पूर्व से ही पंडित श्रीनगर के गोनंद शासक वंश के साथ जुड़ गए जो आज 5717 वर्ष पूर्व की बात है। यह संस्कृत साहित्य बहुत कम ही बच पाया है। समय के थपेड़ों और मानवीय प्रकृति की अनिश्चितताओं के चलते जो भी साहित्य बच पाया है। उसके आधार पर हिंदू शासनकाल के कश्मीर में रचे गए संस्कृत साहित्य की संपूर्ण निधि की गुणवत्ता के बारे में सहज अनुमान लगा सकते हैं।

आज जम्मू और कश्मीर की आधिकारिक भाषा को लेकर बहुत विवाद और संभ्रम फैला हुआ है। लगभग छह हजार साल तक संस्कृत इसकी आधिकारिक भाषा रही है। 14वीं शताब्दी के मध्य इस्लाम के आगमन के बाद कश्मीर में साभ्यतिक रूपांतरण हुआ, जिसमें फारसी ने संस्कृत का स्थान ले लिया। 19वीं शताब्दी के मध्य में दिल्ली में मुगल सल्तनत के पतन के बाद फारसी ने यह जगह उर्दू को दे दी। कश्मीर में यह सवाल मुस्लिम विद्वानों को चकराए हुए था कि कश्मीरी के लिए किस लिपि को अपनाएं। अरबी लिपि पूर्णतया अवैज्ञानिक थी और कश्मीरी संस्कृत विद्वानों द्वारा विकसित शारदा लिपि बहुसंख्यक मुस्लिमों को अस्वीकार्य थी। कश्मीरी भाषा को लिखने में अपनी तमाम त्रुटियों और अक्षमताओं के बाद भी वे लोग अरबी लिपि से अटके रहे। इसका परिणाम है कि आज तक हमारे पास कोई मानक नहीं है।

इस विशेषांक में संस्कृत भाषा एवं साहित्य में कश्मीर के योगदान पर विद्वतापूर्ण एवं गहन अंतर्दृष्टि भारतविद्या के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समकालीन विद्वान प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल द्वारा प्रस्तुत की गई है। उनके द्वारा प्रस्तुत अंतर्दृष्टि इस विषय की सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है, साथ ही इस विषय में गहन शोध करनेवाली नई पीढ़ी के अन्वेषियों के लिए आधार का कार्य करेगी। यह गहन संतुष्टि और गर्व का विषय है कि प्रो. रजनीश जी उन अग्रणी भारतीय विद्वानों में से हैं, जिन्होंने इतिहास के क्रूर हाथों से अब तक छिपे हुए कश्मीरी योगदान को विस्मृति के अंधकार से खींचकर हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उन्होंने कश्मीर के योगदान से जुड़े ज्ञान और चेतना के द्वार खोल दिए हैं, जिसका प्रयास अब तक केवल पश्चिमी विद्वान ही कर रहे थे। कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध एक ऐतिहासिक दस्तावेज की तरह रहेगा।

पत्रकार जवाहर कौल कश्मीर के इतिहास और संस्कृति में पले-बढ़े हैं। उनका आलेख कश्मीर का सांस्कृतिक संदर्भ प्रारंभिक समय से वर्तमान तक के कश्मीरी सांस्कृतिक इतिहास का फलक प्रस्तुत करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि उन्होंने कश्मीर की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में मौजूद निरंतरता को छुआ है, जिसमें कश्मीर का प्रलयकाल भी शामिल है।

रतनलाल शांत का कश्मीर की दार्शनिक प्रवृत्तियों का वर्णन अतुलनीय है, विशेषतः

चौदहवीं शताब्दी के अंत में शैव दर्शन की प्रचारक और भक्त-कवयित्री लल्लेश्वरी का उल्लेख है। लल्लेश्वरी कश्मीरी साहित्य और शैव दर्शन का प्रमुख स्तंभ हैं, जो संवाद के लिए सूक्तियों का प्रयोग करती हैं। अन्य कोई भी लल्लेश्वरी के योगदान के साथ वह न्याय नहीं कर पाता, जैसा रतनलाल ने किया है। लल्लेश्वरी कश्मीर के समस्त शैव विद्वानों की आध्यात्मिक मार्गदर्शक बनी रही है।

इस विशेषांक के प्रत्येक आलेख पर विस्तृत टिप्पणी लिखना संभव नहीं है और न ही मेरा ऐसा विचार है। तथापि कुछ आलेखों से गुजरते हुए मैंने यह महसूस किया है कि इस अंक में विविध विषयों पर विद्वतापूर्ण आलेख लिखे गए हैं। मैं यह कह सकता हूं कि कश्मीर-अध्ययन पर यह अंक एक बेशकीमती योगदान है और संस्कृति, कला और साहित्य के लगभग हर पक्ष को शामिल किए हुए है। वर्धा स्थित हिंदी विश्वविद्यालय की प्रशंसा की जानी चाहिए, जिसने इस विशाल परंतु अत्यंत आवश्यक कार्य को पूरा किया।

–काशीनाथ पंडित
ई-मेल : knp627@gmail.com
मोबाइल : 94 69 65 05 91

भाषा सांस्कृतिक विकास की सहचरी होती है

बहुवचन का विशेषांक जम्मू-कश्मीर पर केंद्रित है, उसके बहुआयामी सांस्कृतिक पहलुओं पर ध्यान जाना भी स्वाभाविक है। लेकिन अगर केवल कश्मीरी भाषा पर ही पूरा ध्यान जाता तो भी उन सब आयामों की गहराई प्रकट होती। कश्मीरी भाषा उतनी प्राचीन नहीं है जितनी कश्मीरी समाज। कश्मीरी को ईसा से कई शताब्दी पूर्व ही संस्कृत का सहारा मिला था। लेकिन अधिकतर भाषाओं के विपरीत कश्मीरी पर स्थानीय बोलियों का प्रभाव अधिक रहा, क्योंकि चारों ओर से पहाड़ियों से घिरी घाटी होने के कारण बाहर का प्रभाव धीरे-धीरे ही पड़ता था। इसलिए संस्कृत और कश्मीरी समानांतर विकसित होती रही। जिस युग में संस्कृत शासन और धर्म-दर्शन की भाषा थी, उसी दौर में कश्मीरी घाटी में लोक भाषा थी। 'राजतरंगिणी' के यशस्वी लेखक कल्हण ने अपने विनोदी स्वभाव में इसका उदाहरण दिया है। एक राजा ने एक नट रंगा को एक गांव पट्टे पर दिया, लेकिन उस समय की नौकरशाही आज की जैसी रही होगी, उन्होंने राजा के इस मौखिक आदेश को कागजों पर नहीं उतारा। रंगा गांव से नगर चक्कर लगाकर थक गया तो वह कुपित होकर राजधानी में एक बड़े अधिकारी के कार्यालय जा पहुंचा और अधिकारी के कमरे में आकर उस पर बरस पड़ा–'तुमसे इतना भी नहीं बनता कि एक वाक्य लिख लो कि हेलू नाम का गांव रंगा को देना है।' यह वाक्य कल्हण ने उसी भाषा में लिखा जो रंगा बोलता था यानी कश्मीरी। बारहवीं शताब्दी का यह कश्मीरी वाक्य बीसवीं शताब्दी की कश्मीरी से बहुत भिन्न नहीं है।

आसपास की बोलियों से शब्द ग्रहण करने के कारण कुछ पश्चिमी विद्वानों को कश्मीरी के मूल स्रोत के बारे में गलतफहमी होती रही है। ग्रियर्सन ने दावा किया कि कश्मीरी दारदी अपभ्रंश से विकसित हुई है। यह जानने का गंभीर प्रयास न करते हुए कि दरदों की बोली का मूल स्रोत क्या है, उन्होंने कश्मीर घाटी के बगल में रहनेवाले दरद जाति की बोली और कश्मीरी में कुछ समानता को देखते ही अपना वक्तव्य जारी कर दिया। अगर वे दरदिस्तान के दूसरे छोर पर पाकिस्तान पख्तून

क्षेत्र में, यानी नूरिस्तान और कलाशा क्षेत्र में जाकर अध्ययन करते तो उन्हें कश्मीरी वहीं की उपज दिखाई देती। वास्तव में कश्मीर घाटी तक सीमित नहीं रही। वह पहाड़ी दर्रों से होकर घाटी से बाहर भी अपना साम्राज्य बनाने में सफल हुई। कश्मीर घाटी से गांधार घाटी तक कश्मीरी के कई रूप दिखाई देते हैं। संस्कृत ने ब्राह्मी या देवनागरी के बदले कश्मीर में शारदा को ही लिपि के रूप में अपना लिया और कश्मीरी ने भी उसी का अनुसरण किया। संक्षेप में कश्मीरी भाषा का मूल स्रोत संस्कृत होते हुए भी इसका स्वभाव, इसके स्वरों की विशिष्टता अपने शारदा देश से ही प्राप्त हुई हैं और इसलिए कश्मीरी भाषा के अध्ययन में बहुआयामी कश्मीरी ज्ञान-परंपरा भी प्रतिबिंबित होती है।

कश्मीरी भाषा कश्मीरी समाज की आत्म अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम रही है। प्रसिद्ध कश्मीरी कवि रहमान राही कहते हैं–

बरसों से हम दोस्त रहे हैं
हमारे दो दिलों के ताल एक हैं
हमारे होठ थर्राते हैं बुदबुदाहट में भी एक जैसे
हमेशा रहेगा विश्वास तुम में
और धड़कता रहेगा मेरा दिल तुम्हारा लिए।

लेकिन बदले हुए हालात में कश्मीरी भाषा एक अवांछित बुढ़िया की तरह घर के किसी कोने में पड़ी है और हुकूमत में, बाजार में और ताकतवर लोगों के दिमागों पर आयातित अंग्रेजी और उर्दू छायी हुई हैं।

कश्मीर की कहानी उसी प्रागैतिहासिक युग से आरंभ होती है जब भारत वर्ष का उत्तरी भाग, आज का उत्तर प्रदेश, पंजाब और आसपास के पहाड़ी राज्य आकार ले रहे थे। प्राचीन समुद्र से हिमालय के प्रकट होने के साथ ही एक ओर तो एक था वहां के तल को ऊपर उछालकर एक पठार का आकार दिया, जो हिमालय के भीतर पानी के अथाह जल भंडार का रखवाला बना। वह भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण नदियों का स्रोत बना और वही इस पठार को दो महान देशों और भविष्य की दो महान सभ्यताओं के बीच मध्यस्थ देश बना दिया। तिब्बत की तराई का रुझान भारत के मैदानों की ओर ही था और यहां जन्म लेने वाली नदियां, सिंधु, ब्रह्मपुत्र और कई अन्य नदियां भारत की ओर ही बहती थीं। इसलिए भारत में विकासमान संस्कृति और सभ्यता के साथ यह क्षेत्र गहन रूप से जुड़ गया और कालांतर में तिब्बत भारतीय संस्कृति का अटूट विस्तार ही बन गया। भौगोलिक रूप से भी हजारों वर्ष पश्चात् जब राजनैतिक सीमाएं बन गई थीं, हिमालय का समस्त क्षेत्र भारतीय जन के लिए पवित्र तीर्थस्थल बन गया, मानस खंड और कैलाश पर्वत शृंखला तक कई तीर्थ पथों, चौकियों और गांवों की सुरक्षा 1947 तक जम्मू-कश्मीर राज्य ही करता रहा है। हिमालय का जन्म अकेले पर्वत के रूप में नहीं हुआ, उसके साथ कई और पर्वत शृंखलाएं भी जनमीं, जिनमें अनेक छोटे-बड़े राज्य भी स्थापित हुए। यह सिलसिला ईरान और रूस तक चला जाता था। प्रकृति ने ही कश्मीर को पश्चिम एशिया, ईरान, मध्य एशिया और यूनान जैसे देशों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान का केंद्र बनाया था।

स्वाभाविक है कि कश्मीर घाटी भले ही लंबे समय तक एक विशाल सरोवर सती सर में जलमग्न रही हो, लेकिन महासर से निकले हुए भी हजारों वर्ष बीत चुके हैं। जब गंगा, यमुना के विशाल मैदानों में वेदवाणी बह रही थी, आगम निगम के, अगम विचार आश्रमों और अरण्यों में गूंज

रहे थे, उस समय सती सर के किनारे कई जनजातियों का वास था। सती सर के ठीक साथ पहाड़ी ढ़लानों पर नाग जाति के लोग रहते थे। जीवनयापन कठिन था। इसलिए जातियों में लगातार संघर्ष और छीनाझपटी होती रहती थी। भूमि केवल पहाड़ी ढ़लानों पर ही उपलब्ध थी, शेष जलमग्न थी। इन संघर्षशील जातियों में कोई नियोजित समाज नहीं बन पा रहा था। गंगा-यमुना क्षेत्र से ऋषियों के सहयोग से जब नागों ने सती सर के अधिकांश जल को निकलने में सफलता प्राप्त की तो एक नए बहुजातीय समाज की आवश्यकता पड़ी। जिस नए समाज ने जन्म लिया, वही कश्मीर की संस्कृति की आधारशिला बन गई। इस संस्कृति में उत्तर भारत में प्रचलित आगम और निगम दोनों का ही प्रभाव नहीं था, अपितु नागों की आदिवासी मन्यताओं का भी समावेश था। आसपास रहनेवाली जनजातियों को साथ न मिलाया जाता तो आपसी विवाद और हिंसक संघर्षों का अंत करना संभव नहीं था, लेकिन टकराव के कारणों को समाप्त किए बिना आपसी सहयोग संभव नहीं हो सकता था। वैदिक आर्यों और जनजातीय नागों के बीच जो समझौता हुआ, वह कश्मीर की विशिष्ट संस्कृति का मूलाधार बना। कश्मीर में विचारों की, मान्यताओं की, दार्शनिक वादों के प्रति सहिष्णुता उसी आदिकाल के समझौते से विकसित हुई और यही कारण था कि न केवल भारत की हर दार्शनिक परंपरा, हर पूजा पद्धति, हर विश्वास को केवल स्थान ही नहीं दिया गया, अपितु समय-समय पर उनमें से इन दार्शनिक विचारों को सहर्ष अपना कर भारत से बाहर मध्य एशिया, पश्चिम एशिया, ईरान और यूरोप तक प्रसारित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। एक ओर से उत्तर में तिब्बत, चीन और मंगोलिया और दूसरी ओर पश्चिम में ईरान तक कश्मीर ने ज्ञान और दर्शन के शिक्षण के प्रमुख केंद्र के रूप में ख्याति अर्जित की।

मुस्लिम आगमन के पश्चात् सांस्कृतिक ठहराव के विरुद्ध आक्रोश के भक्ति आंदोलन में जो स्वर गूंजे वे न तो संस्कृत के थे और न ही फारसी के। वे स्वर कश्मीरी के ही थे, क्योंकि वही कश्मीरियों के मन की आवाज थी और उसी के माध्यम से वह उन लोगों तक पहुंच सकती थी, जहां उसे पहुंचना था। लल्लेश्वरी और नुंद ऋषि दोनों की विद्रोही वाणी ने कुछ समय के लिए दोनों को झकझोरा, यानी विजेता को भी और पराजित को भी।

भारत जब स्वतंत्र हुआ और जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय हुआ तो उम्मीद की गई थी कि कश्मीरी के दिन लौटे हैं, लेकिन कश्मीर को अपनी सांस्कृतिक विरासत से दूर ले जाने वाली शक्तियां पहले से ही सक्रिय हो चुकी थीं। नेशनल कॉन्फ्रेंस ने प्रस्ताव पारित कर दिया था कि राज्य की भाषा उर्दू होगी और कश्मीरी की लिपि फारसी लिपि के आधार पर विकसित की जाएगी।

कवि राही का डर साकार होने की स्थितियां तभी से विकसित होने लगीं थीं—'कभी मिले ही न होते मैं और तुम और मेरे खामोश दिल के दर्द और हंसी दफन हो जाते हमेशा के लिए।'

ऐसे में 'बहुवचन' का 'भारतीय साहित्य में कश्मीर' विशेषांक शायद उन सबको कुछ झकझोर दे जो नहीं समझते हैं कि कश्मीर में चंद सिपाहियों और निर्दोष लोगों की हत्याएं ही नहीं होती रहती है, अपितु वे अपनी उस भाषा का ही मुंह सदा के लिए बंद करने की कोशिश कर रहे हैं जिसके बिना कश्मीरियत का कोई वजूद नहीं। कश्मीर में शक्ति उपासना शैवागमों के युग

से रही है। कश्मीर की आराध्य देवी शारदा तो है ही, लोक-जीवन में भी अनेक रूपों में शक्ति, यानी नारी रूप में ही पूजा जाता है। इस संदर्भ में वीरजी सुंबली का कश्मीरा देवी का चित्रांकन चित्ताकर्षक है।

–जवाहरलाल कौल
मोबाइल : 9711361937
ई-मेल : kauljawaharlal@gmail.com

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका 'बहुवचन' समस्त विश्व को हिंदी जगत् के सर्वोत्तम साहित्य को अंतरराष्ट्रीय पटल पर लाती है। एक साहित्यकार और कंटेंट क्रिएटर के लिए गौरव की बात है कि उसकी रचना को बहुवचन में प्रकाशित किया जाए। इस बार कश्मीर पर मेरी रचना 'वे अड़तालीस घंटे' को सम्मिलित करके मुझे और मेरी जननी कश्मीर को अद्‌भुत सम्मान दिया। इस रचना को लिखना मेरी लिए जीवन की सबसे कष्टकारी यात्रा रही। आज भी उन 48 घंटों को याद करके मन सिहर जाता है। आज के आधुनिक सोशल मीडिया के दौर में हमारी व्यथा और यात्रा विश्व के लिए अकल्पनीय है। मेरी यह आशा है कि 'भारतीय साहित्य में कश्मीर' को समर्पित बहुवचन के इस अंक से कश्मीरी पंडितों की पीड़ा समस्त विश्व तक पहुंचे और हम सबको अपने घर (अपने कश्मीर) में पुनः सम्मानपूर्वक जाने का पथ प्रदर्शित हो। बहुवचन की गुणवत्ता को देखकर मेरी प्रबंधन समिति से विनती है कि इसे पुस्तक रूप में भी प्रकाशित करें। बहुवचन समस्त विश्व में हिंदी जगत् को सर्वोत्तम स्थान दिलाने में एक अग्रनीय कोशिश साबित होगी। मेरे पास शब्द नहीं हैं, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, के आदरणीय कुलपति प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल सर का, आदरणीय प्रो. कृपाशंकर चौबे और आदरणीय डॉ. अमित विश्वास का धन्यवाद करने के लिए। आज समस्त कश्मीर आपका आभारी है। आपने मुझे और हमारी गाथा को हमारी कुलदेवी मां रागनिया देवी के चरणों में स्थान देकर अतुल्य सम्मान दिया, इस गौरव के लिए समस्त कश्मीर की ओर से धन्यवाद...!

–आशीष कौल
मोबाइल : 9920423303
ई-मेल : ashishkual@gmail.com

रचनाकारों के पते

एच. बालसुब्रह्मण्यम, 76 बी, पॉकेट ए-2, मयूर विहार, फेस-3, दिल्ली-110096, 9868566763, 9312627100, haribala2@gmail.com

वी. पद्मावती : हिंदी विभागाध्यक्ष, पी.एस.जी.आर. कृष्णम्माल महिला महाविद्यालय, कोयम्बत्तूर-641004, 9843098446, hindidrpadma@gmail.com

एम. गोविंदराजन : महासचिव, भाषा संगम, 67/40 तुलाराम बाग, प्रयागराज-211006 (उ.प्र) 7010148266, mgovindrajan@gmail.com

एस. विजया : सेवानिवृत्त सहायक महा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक, चेन्नई (तमिलनाडु) 9445860309, swaminathan.vijaya060@gmail.com

रागिनी कपूर : कंपेरेटिव इंडियन लिट्रेचर पी-एच.डी. फैलो, डिपार्टमेंट ऑफ मॉडर्न इंडियन लैंग्वेज एंड लिट्रेसी स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, raginikapoor13@gmail.com

दीपिका विजयवर्गीय : सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान) 9414788414, deepikavijayvergia@gmail.com

कृष्ण कुमार सिंह : प्रोफेसर, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 9404354261, kks5260@gmail.com

अखिलेश कुमार दुबे : प्रोफेसर, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग एवं अकादमिक निदेशक, क्षेत्रीय केंद्र प्रयागराज, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 9412977064, akhileshdubey67@gmail.com

रामानुज अस्थाना : एसोशिएट प्रोफेसर, साहित्य विद्यापीठ, मकान नं. 26, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 9422823617, ramanujasthana@hindivishwa.org

ए. भवानी : मकान नं. 26, चौथी गली कृष्णापुरम कॉलनी, मदुरई-625014, 9884487560, bhawani.ak@gmail.com

एन. लावण्या : सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, एतिराज कॉलेज फॉर वुमेन, चेन्नई-600008 (तमिलनाडु), 9551781799, lavanyavarsha76@gmail.com

कुमार निर्मलेन्दु : 5/114, विराम खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उ.प्र.), 9415248712, kumarnirmalendu@gmail.com

राजलक्ष्मी कृष्णन : 11, गांधी स्ट्रीट, विरुगम्बाक्कम, चेन्नई-600092, (तमिलनाडु), 9840041576, rkrish2000@hotmail.com

रमा लक्ष्मीनरसिंहन् : पुराना नं. 3, नया नं. 7, डैनीयल स्ट्रीट, अदम्बक्कम, चेन्नई-600088, 9884450741

पूर्णिमा श्रीनिवासन : 2ए, नेल्लिप्पैट्टै क्रास स्ट्रीट, जमीन रायपेट, क्रोमपेट, चेन्नई-600044, (तमिलनाडु), 9884026296, srinidhi.srikar@gmail.com

कृपाशंकर चौबे : अधिष्ठाता, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 9836219078, drkschaubey@gmail.com

प्रतापराव कदम : 4 शकुन नगर, खंडवा-450001 (म.प्र.), 8718057089, 9424523720 pratapraokadam@yahoo.com

के. वत्सला 'किरण' : एफ.-1, विग्नेश अपार्टमेंट नं. 40, पोन्नाम्मल स्ट्रीट वादापलानी, चेन्नई-600026 (तमिलनाडु), 9840424759, 7358309713, vatchu44@gmail.com

एम. शेषन् : गुरुकृपा, 790 रामास्वामी शालेय, के.के. नगर, चेन्नई 600078, 9444763055, 04423663425

पुगझेंधी कुमारासामी : सहायक प्रोफेसर, फ्रांसीसी और फ्रैंकोफोन अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, pugazh2005@yahoo.com

ज्योतिष पायेङ : सहायक प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन विभाग, अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 9545988866 jshpayeng@gmail.com

जी. गोपीनाथन : सौपर्णिका, काक्कंचेरी, कालिकट विश्वविद्यालय, पोस्ट 673635, केरल, 9747028623, gopinathan.govindapankiker@gmail.com

हनुमानप्रसाद शुक्ल : प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 9403783977, hpshukla7@rediffmail.com